स्वर्ण जयन्ती प्रकाशन 2013

BIHAR YOGA

स्वर्णिम संग्रह 4

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

स्वर्णिम संग्रह 4



WORLD YOGA CONVENTION 2013

GANGA DARSHAN, MUNGER, BIHAR, INDIA

23rd–27th October 2013

स्वर्णिम संग्रह 4

बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों का संकलन



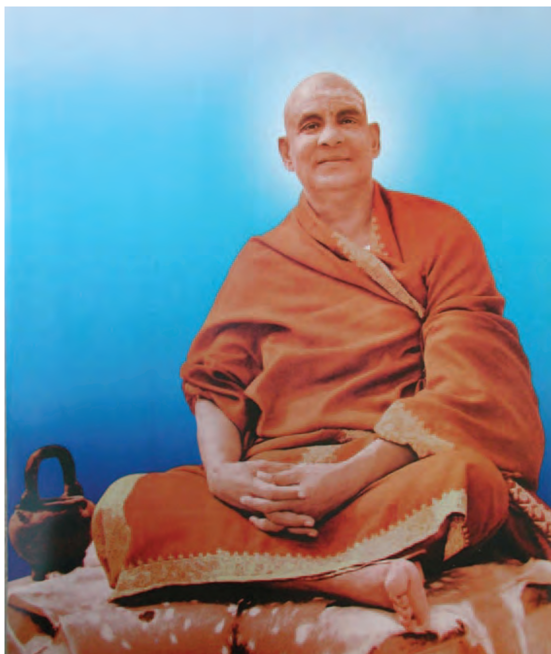
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रथम प्रकाशन 2013

ISBN: 978-93-81620-88-5

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—एजीएन ऑफसेट प्रिंटर्स,
ग्रेटर नोएडा

वेबसाइट: www.biharyoga.net
www.rikhiapeeth.net



सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी



नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दुःखी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

अजपा-जप की साधना

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल द्वारा प्रकाशन – 1964

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

अजपा-जप की साधना

श्री स्वामी सत्यानन्द जी के नौ व्याख्यानों का संग्रह

श्री स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित योग परम्परा में अजपा-जप का प्रमुख स्थान रहा है। उनकी प्रेरणा और मार्गदर्शन से देश-विदेश में हजारों-लाखों लोगों ने इस साधना को अपनाकर इसके बहुआयामी लाभों का प्रत्यक्ष अनुभव किया है।

सन् 1964 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्रमण्डल, राजनाँदगाँव द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक ने श्री स्वामीजी द्वारा निरूपित इस सरल किंतु अत्यन्त प्रभावशाली साधना पद्धति को प्रथम बार जनसाधारण के लिए सर्वसुलभ बनाया था।

– *सम्पादक*

भूमिका

पूज्य गुरुदेव की शिक्षाओं में 'अजपा-जप' का प्रमुख स्थान है। योग की यह कला पद्धति अभी तक कुछ गूढ़ सूत्रों के अन्दर दबी पड़ी थी तथा भारतवर्ष में केवल चन्द साधुओं और साधकों को ही ज्ञात थी। अजपा-जप एक ऐसी साधना है जिसका अभ्यास आज कोई भी कर सकता है, और सच तो यह है कि श्री स्वामीजी की प्रेरणा से इस देश और विदेश में आज हजारों लोग इस अति सरल योग क्रिया की साधना कर रहे हैं तथा उसके द्वारा होने वाले लाभों का प्रत्यक्ष अनुभव भी कर रहे हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल तथा बिहार योग विद्यालय, मुंगेर एवं मध्य प्रदेश योग विद्यालय, रायगढ़ द्वारा प्रारम्भ किये गये योग आन्दोलन का एक ही उद्देश्य है और वह है मानव-समाज के बीच योग विद्या का पुनरुत्थान। देश तथा विदेश में भी, योगविद्या का जिस उत्साह तथा तेजी के साथ प्रचार तथा प्रसार हो रहा है, मानवता के हित में वह एक अत्यन्त ही उत्साहवर्धक संकेत है। शीघ्र-से-शीघ्र संसार के सभी विचारवान् लोगों को यह बात स्वीकार करनी ही पड़ेगी कि आज की दु:खी तथा संतप्त मानवता के उद्धार का केवल एक ही मार्ग है–'योग'।

स्वामी सत्यव्रतानन्द सरस्वती
प्रधान सचिव
अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल आन्दोलन
राजनाँदगाँव (म. प्र.)

प्रस्तावना

अलार्क ने दत्तात्रेय से प्रश्न किया—भगवान! प्रकृति के बन्धन से कैसे संग छूटे? गुण के ऊपर निर्गुण में चित्त की स्थिति कैसे हो? ब्रह्म जो शाश्वत है, उसके साथ एकाकी भाव कैसे प्राप्त हो? यह कौन-सा योग है, जिससे मुक्ति प्राप्त होती है।

दत्तात्रेय ने पहले साधना और हठयोग के बारे में बतलाया। उन्होंने कहा, ज्ञान से अज्ञान का अलग होना, यही मुक्ति है, यही ब्रह्म से एकता है और यही प्रकृति से छूटने का उपाय है। ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है। हम दु:खी हैं—यह अनुभव ही हमें ज्ञान और मुक्ति की प्राप्ति के लिए प्रेरित करता है। किन्तु केवल शास्त्र और पुस्तकें पढ़कर तो ममता और आसक्ति दूर नहीं होती और न ही ज्ञान की प्राप्ति होती है।

दत्तात्रेय ने अलार्क को यम, नियम, आसन, प्राणायाम इत्यादि योग के नियम भी बतलाए। ये नियम सूत्ररूप में सन्निहित हैं तथा आश्रम जीवन ही उनकी साधना के लिए पहले उपयुक्त माना जाता था।

वैज्ञानिक सभ्यता के विकास के साथ-साथ मान्यताएँ भी बदलीं तथा योग के साधन सरलतम होते गये। योग की यही उच्च साधना 'अजपा-जप' में निहित है। यह साधना योग की एक उच्च क्रिया है। योग के अभ्यास से शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक शक्ति, आत्मिक शक्ति और आंतरिक गुप्त शक्तियों का विकास किया जा सकता है।

अजपा-जप की साधना एक ऐसी ही साधना है। इसकी क्रिया स्वयं में एक पूर्ण क्रिया है। इसके अभ्यास से योगाभ्यास का सम्पूर्ण लाभ उठाया जा सकता है।

आत्मा से युक्त प्राणी के शरीर और मन दो वाहन हैं। शरीर, मन और आत्मा—इन तीनों के अलग-अलग क्रिया-कलाप का नाम ही जीवन है। यदि जीव की यह क्रियाशीलता केवल शरीर के लिए हो तो मनुष्य का जीवन तमोगुणी हो जाता है, यदि मन पर ही केन्द्रित हो तो रजोगुण की प्रधानता

हो जाती है। इन दोनों से ऊपर उठकर जो जीवन को आत्मानुभूति के रूप में पहचानना चाहता है, वह जीव ही सतोगुणी हो सकता है तथा वही परम आनन्द की प्राप्ति का हकदार है।

इस परम आनन्द की प्राप्ति की कई साधनाएँ हैं। अजपा की साधना भी क्रमगत ऐसी ही है। शरीर की साधना के बाद मनस्तत्त्व की साधना होती है। और इसके बाद आत्मचैतन्य और आत्मा का ज्ञान होता है। अजपा में श्वास की क्रियाओं के द्वारा नाड़ियों का शोधन कर 'सोऽहं' या 'ॐ' की भावना को नाभि-कमल से सुरति के साथ प्रचालित किया जाता है और अन्त में चक्रों का भेदन भी किया जाता है।

महर्षि पतंजलि ने विभूतिपाद में कहा है– *'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा'*। यहाँ भी शरीर के बाहर या भीतर कहीं भी चित्त को ठहराने को धारणा के रूप में लिया गया है। नाभि चक्र, हृदय कमल, चिदाकाश–ये सब शरीर के भीतरी देश हैं तथा इष्ट इत्यादि बाहर के देश हैं। इनमें चित्त की वृत्ति का संयोग धारणा रूप में लिया गया है।

'तत्रप्रत्ययैकतानता ध्यानम्'–इसमें वृत्ति के एकतान चलने को ध्यान कहा गया है। चित्त का एकाग्र हो जाना, ध्येय मात्र के रूप में एक-वृत्ति का प्रवाह चलना ही ध्यान है।

अजपा में ये सभी क्रियायें क्रमशः आती हैं। चिदाकाश में इष्ट का ध्यान भी करना होता है तथा श्वास के साथ 'सो+हं' का जप भी।

अजपा की यह क्रिया किसी-न-किसी रूप में कबीर, चौरासी सिद्धों या अन्य ऋषियों की वाणियों में भी निहित है। पूज्य स्वामीजी ने उसे सरल रूप में सामने रखा है जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए ग्राह्य है।

गार्हस्थ्य के साथ योग-धर्म की परम्परा हमारे देश में प्राचीन काल से चली आ रही है। कालिदास ने भी 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' और 'यागेनान्ते तनुत्यजाम्' इन दो आदर्शों का उल्लेख किया है। भागवत में गृहस्थ-आश्रम के साथ-साथ निवृत्ति धर्म को भी मान्यता दी गई है। महाभारत के शांति पर्व में कहा गया है–

निवृत्तञ्चस्थितो धर्मक्षेमी भागवतप्रियः।
प्रवृत्तिधर्मान् विदधे स एव भगवान् प्रभुः॥

अतः जीवन का यही सुन्दर समन्वय आज गृह में भी प्राप्त किया जा सकता है। पूज्य स्वामीजी ने अजपा की ये क्रियायें जीवन के इस सुन्दर

समन्वय के अनुकूल ही निरूपित की हैं तथा अजपा-जप पर यह पुस्तक अपने ढंग की नई है। इसके पहले अजपा-जप की साधना पर कोई भी पुस्तक नहीं निकली थी, केवल शास्त्रों में इसका संकेत मात्र पाया जाता था।

इस क्रिया से आप भी लाभ उठा सकते हैं। आप विश्वास करें कि आप स्वयं में पूर्ण हैं, आप स्वयं ईश्वर में हैं और ईश्वर स्वयं आप में है। इस भावना को साथ रख गुरु की कृपा लेकर आगे बढ़ें।

जल में कुंभ, कुंभ में जल, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना यत तत कथौ गियानी॥

–कबीर

ये सब शास्त्रोक्त बातें हैं, पर सत्पुरुष की कृपा आपको लेनी ही है, गुरु का सम्बल साथ रखना है। इससे आपका मार्ग सरल हो जायेगा। इसीलिए स्थिर चित्त रखकर साधक आगे बढ़ें–

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गपथस्तत्कवयो वदन्ति॥

उठो, जागो, सत्पुरुषों के पास जाकर तत्त्व ज्ञान प्राप्त करो। ज्ञानी जन तत्त्व ज्ञान के उस मार्ग को छुरे से तीक्ष्ण एवं दुस्तर धार के समान दुर्गम बतलाते हैं।



सिद्धों की साधना–अजपा-जप

श्री दयानन्द प्रसाद, बी.ए.आनर्स

योग की परम्परा भारतवर्ष में बहुत प्राचीन रही है, पर अधिकारी शिष्यों के अभाव में योग के अनुभूत सत्यों का लोप हो गया था। सिद्धों और नाथों की परम्परा करीब 1500 वर्ष पुरानी है। इस परम्परा के साधकों ने योग की क्रियाओं को एक निश्चित रूप में सामने रखा, जिसे इन्होंने हठयोग की संज्ञा दी।

भगवान बुद्ध के करीब चार सौ वर्षों के बाद श्रमणक धर्म महायान की शाखा में परिवर्तित हो गया। यह साधना यौगिक दृष्टिकोण से उन्नत नहीं रही। इस शाखा में योग की क्रियाओं से अधिक पूजा पर ध्यान दिया गया। देवी-देवताओं की उपासना इस काल में अत्यधिक बढ़ती गई।

छठी शताब्दी के मध्यकाल में सिद्धियों और तन्त्रों का बोलबाला था और इसी काल से हठयोग की क्रियाओं को प्रमुखता दी जाने लगी।

तंत्रवाद के इस युग में मंत्र, कुण्डलिनी-योग, प्रेत सिद्धि, गुह्य वामाचार, भैरवी चक्र और महासुखवाद की रहस्यमयी साधना शुरू हुई। ये सिद्ध जनमानस के स्तर पर मैस्मेरिज्म का कार्य करते थे। लोगों को चमत्कार दिखाकर उन्हें आकृष्ट करना इनका ध्येय था। इन सिद्धों की साधना पद्धति निगूढ़ और रहस्यमयी थी। महाशून्यवाद, महामुद्रा, परमतत्त्व की युग्म कल्पना, प्रज्ञोपाय, सहज-साधना, नारी-समागम द्वारा सिद्धि लाभ आदि उनके तात्त्विक सिद्धान्त थे। इनमें महामुद्रा की साधना पूर्ण हठयोग की साधना के रूप में ली जाती थी।

सिद्धों का तत्त्व-दर्शन परमार्थ का सिद्धान्त है, जिसमें शून्य, अशून्य तथा भाव की कल्पना की गई। शून्य सम्भवत: इड़ा और भाव सम्भवत: पिंगला नाड़ियों के रूप में लिया गया था। अशून्य से उनका तात्पर्य सुषुम्ना से रहा होगा। इन सबको सिद्धि योग कहते थे।

सिद्ध संसार के बाह्य अस्तित्व को नहीं मान उसे चित्तगत ही मानते थे। इसी का अनुबोधन उनका तत्त्व ज्ञान था। विज्ञानवाद ने जगत् के सत्य को ही

तत्त्व-दर्शन की संज्ञा दी। इन सिद्धों ने जगत् के सत्य को चित्तगत ही माना। सिद्धों ने भीतर और बाहर की दृश्यमान् भिन्नता को भ्रममूलक माना। जगत् के स्वरूपों के सम्बन्ध में ठोस आधार, भूत-इन्द्रिय आदि ही सिद्धों के शारीरिक मूलाधार थे। पंच महाभूतों की भी मान्यता सिद्धों ने कबूल की। क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर इसे उन्होंने संसार का बीजरूप माना।

चित्त—चित्त या मन को संसार-स्वरूप माना गया। विश्व बीज के यही आधार निश्चित किये गए। चित्त, मन और ज्ञान—ये तीन स्थितियाँ ही प्रकाश की मानी गईं। चित्त कर्म का नियामक है, मन विधान का चयन करता है और ज्ञान प्रकाश का स्रोत है। यही भव तथा निर्वाण दोनों का बीज है। चित्त के दो रूप माने गये, बद्ध तथा मुक्त। कर्मों के द्वारा मन का बंधा रहना चित्त का बद्ध रूप है। कर्मों के द्वारा मुक्त होने के रास्ते भी निकाले गए। इसी रास्ते में कर्मों में रहकर उससे निर्लिप्तता के रूप में जप की साधना की गई। इसे ही अजपा-जप के रूप में लिया गया।

सिद्धों ने सृष्टि के स्रोत के रूप में स्मृति की कल्पना की। इसे अविद्या और राग-रूप से स्थिर रहना कहा गया। इसी सम्वृत्ति को शक्ति रूप में निहित माना गया। यह कुण्डलिनी शक्ति है। यह अविद्या तथा राग-रूप में घिर कर स्थिर है। अविद्या और राग-रूप यूँ तो अज्ञान और संसार के प्रति आसक्ति का द्योतक है पर इसे ही सिद्धों ने बद्ध-मुख भी कहा है।

शून्य—शून्य की कल्पना भी वज्रयानी शाखा की एक विशेषता थी। इस शून्य को इन्होंने पारमार्थिक सत्य की संज्ञा दी। पारमार्थिक सत्य के द्वारा ही चित्त की शून्यता का ज्ञान होता है। यह चित्त अन्य भावनाओं के अतिरिक्त शून्य भी है। इसका ज्ञान इसी सत्य के द्वारा होता है। इसी शून्य में प्रवेश करते ही इन्द्रिय-विषय अदृश्य हो जाते हैं। शून्य में व्याप्त चित्र निर्मल चित्त कहलाता है। उस समय सम्पूर्ण वेदनाओं और वासनाओं से चित्त मुक्त हो जाता है। संसार मायात्मक है। यह संकल्पों से निर्मित है। यही चित्त को आच्छादित किये हैं। इससे छुटकारा पाकर अपने निर्लिप्त स्वभाव को जानना ही मोक्ष की प्राप्ति है।

अजपा की साधना में चिदाकाश पर ध्यान किया जाता है। शून्य या चिदाकाश में प्रकाश का उदय होना ही सिद्धों का पारमार्थिक सत्य है। चिदाकाश में ध्यान करने के समय अनेकों दृश्य आते हैं। यही संसार की वेदना और वासना का रूप है। इसे ही सिद्धों ने इन्द्रिय-विषय की संज्ञा दी।

निर्मल चित्त का तात्पर्य अपने अन्तरतम में उतर जाने से था, जहाँ केवल महाशून्य का निवास रहता है। मायात्मक संकल्पों से विलग होकर निर्लिप्त स्वभाव को जानना ही मोक्ष की प्राप्ति है। सांसारिकता से निर्लिप्त होकर ईश्वर की प्राप्ति ही मोक्ष है।

सिद्धों ने भव और निर्वाण में एकता की स्थापना की, लेकिन इसी के बीच में चित्त के द्विरूप स्थिति की कल्पना की गई है। जिस समय चित्त शून्य में जाता है, यही स्थिति निर्वाण की ओर उन्मुख करने वाली है। सिद्धों के यहाँ शून्य की कल्पना बहुत ही सिद्ध रूप में ली गई। भगवान बुद्ध ने भी प्रतीत्य-समुत्पाद में शून्य की महिमा स्थिर की है। साधक का शून्य तत्त्व प्राप्त कर शून्य रूप हो जाना ही मुक्त-स्थिति है। शून्य में चित्त का निषेध हो जाता है। केवल 'मैं श्वास ले रहा हूँ, मेरी चेतना चक्र में परिचालित है'—मात्र इतना ही अनुभवगम्य भाव स्थिर रहता है।

सहज—सिद्धों ने सहज का तात्पर्य परम-तत्त्व से लिया है। कबीर ने सहज उसे ही कहा है जो सहज ही विषय का त्याग कर सके।

सहज सहज सब ही कहे, सहज न चीन्हें कोई।
जिन सहजे विषया तजौ, सहज कही जे सोई॥

इसके लिए न आडम्बर की जरूरत है, न घर-बार छोड़ने की। योग में भी भोग हो सकता है और भोग में भी योग सम्भव है। वैरागी भी डूब सकता है और गृहस्थ भी तर सकता है।

एक जोग में भोग है, एक भोग में जोग।
इक बूड़हि वैराग्य में, इक तरही गृहि हो॥

पर सिद्धों ने इस सहज को स्त्री विषयक वामाचार के रूप में नहीं लिया। गोरखनाथ व मच्छिन्द्रनाथ सहज की इसी मान्यता के स्थापक थे।

सहज का तात्पर्य परम-तत्त्व से भी है। सहज की स्थिति में चित्त स्व-स्थित होकर परम नैसर्गिक प्रकृति में एकरूप हो जाता है।

अजपा-जप में सहज की यह साधना की जाती है। अजपा के जप के लिए आडम्बर की आवश्यकता नहीं है। सहज रूप में हाथ-मुँह धोकर शुद्ध होकर बैठिये। ब्रह्ममुहूर्त में शांति से आसन लगाइये। सहज आसन जिसमें आधे घण्टे बैठ सकें, स्थिर होइए। यही सहज की अवस्था है।

महासुख की साधना–सिद्धों ने परम तत्त्व या सर्व-शून्य सहज तक पहुँचने के लिए प्रज्ञोपाय का समागम अनिवार्य माना है। प्रज्ञा तथा उपाय का युगल रूप सिद्धों की साधना और चिन्तन की मूल भित्ति है। इसे योगियों ने मिथुन-परख माना है। इस कल्पना को कई रूपों में चित्रित किया गया है। इसके द्वारा ही परम-शक्ति की अभिव्यंजना की गई है। स्त्री और पुरुष के पारस्परिक समागम के भौतिक आधार पर प्रज्ञा और उपाय, दोनों का निरूपण कर उसे बोधिसत्वों का उत्पादक माना गया है। इसी युग्म रूप को समस्त सिद्धियों का उत्पादक माना गया है।

स्त्री-पुरुष के इस रूप को अजपा-जप के साधक तत्त्व और प्रकृति (matter and energy) के रूप में ले सकते हैं। आज्ञा-चक्र के दो दल 'हं' और 'क्षं' के निरूपक हैं। 'हं' शिव और 'क्षं' शक्ति का प्रतीक है। इसकी युगल कल्पना, ॐ या परम-तत्त्व का रूप ही सिद्धों का बोधिसत्व था। इसी ॐ को पाना, आज्ञाचक्र में इसी ब्रह्म का साक्षात्कार करना सिद्धियों का उत्पादक है।

वज्रयान शाखा में इसी हं और क्षं, या शिव और शक्ति को गर्भधातु और वज्रधातु आदि रहस्य रूपों में कल्पना की गई।

ब्रह्म–जो शक्ति रूप से निकल गया, जो रस में अतीत हो गया, जो गुणों से ऊपर हो गया, जो क्रियाओं की पहुँच से परे हो गया, जो संख्या के भी परे हो गया वही ब्रह्म है। अजपा जप के साधक ब्रह्म को हर ज्ञान से परे मानते हैं।

साधना पद्धति–सिद्धों की साधना पद्धति में बोध-चित्त की कल्पना की गई है। सिद्धों ने चित्त-विशोधन का प्रयोग बार-बार किया है। चित्त का विशोधन महासुख के द्वारा सम्भव है। जिस तरह धातु विशोधित कर पवित्र की जाती है, उसी तरह चित्त का परिशोधन भी आवश्यक है।

अजपा की साधना में चित्त के शोधन की भी बात आती है। प्राणायाम के द्वारा नाड़ियों का शोधन होता है और ध्यान से चित्त का। ध्यान में जन्म-जन्मान्तर के संस्कार परिलक्षित होते हैं। यही पुराने संस्कार जब समाप्त हो जाते हैं, तब भविष्य का आभास होता है।

सिद्धों ने चित्त-हनन की बात भी उठाई है। इसका तात्पर्य मन के मारने से है। जब मन मर जाता है, तब वह पावन रूप हो स्वयं पवन में लीन हो जाता है।

ध्यान में जो विभिन्न प्रकार की बाधायें, विक्षेप या विचार आते हैं, उन्हीं का हनन चित्त का हनन है। मन की इन वृत्तियों को देखकर हटा देने की क्रिया ही मन के मारने की क्रिया है।

सिद्ध वैराग्य-मूलक साधना को उतना अपेक्षित नहीं मानते (कुछ को छोड़कर)। जीवन को नैसर्गिक स्वरूप में पहचानकर रागों को पहचानना ही ध्येय है।

पवनमुक्त अवस्था—सिद्धों ने पवन से मुक्त होने वाली बात बताई है। तत्त्वों से मुक्त होना और पवन से मुक्ति समाधि है। सिद्धों ने इसकी तीन अवस्थाओं का वर्णन किया है। पवन का सीधा होना, पवन का उलटना और पवनमुक्त अवस्था।

पवन का तात्पर्य सुरति से भी है। ध्यान में जब साधक सुषुम्ना में चेतना को चढ़ाता है, तब यह पवन की सीधी अवस्था है। पवन का उतारना चेतना को उलटना है। श्वास खींचने में 'सो' की भावना पवन के सीधे रहने का परिचायक है। जबकि श्वास छोड़ने में 'हं' की भावना पवन के उलटने का द्योतक है।

इसे इस रूप में भी लिया जा सकता है। सुरति में 'सो-हं' की कल्पना पवन का सीधा रूप है और निरति में 'हं-सो' की कल्पना पवन का उलटना है।

चेतना जब मनुष्य के स्थूल शरीर को छोड़ चक्रों में स्थिर हो जाती है, जिस समय साधक को यह भी ज्ञान नहीं रहता कि वह श्वास ले रहा है अथवा नहीं—यह पवनमुक्त अवस्था है।

सिद्धों ने इसके बाद की अवस्था को महासुखवाद कहा है।

अजपा की साधना में साधक चेतना को जब सहस्त्रार से मूलाधार में चलाता है और उसकी चेतना जब उसी में स्थिर हो जाती है, उस समय बाह्य ज्ञान लुप्त हो जाता है अथवा कुण्डलिनी को जगाकर उसे ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करा दिया जाता है, उसे ही महासुखवाद या परम-ज्ञान की संज्ञा दी गई।

अजपा की यही साधना क्रमशः सिद्धों के योग में भी मिलती है।

गुरु—सिद्धों की साधना में गुरु का अद्‌भुत महत्त्व है। गुरु की कृपा और निर्देशन के बिना साधक कुछ भी उपलब्धि प्राप्त नहीं कर सकता। गुरु ही परम सत्य का निर्देश कर सकता है। गुरु ही जगत्-प्रवाह में निरवलम्ब बहते हुए साधक को निरुद्ध कर लेता है। अपनी अज्ञानता के कारण जिस सत्य को शिष्य पा नहीं सकता, वह गुरु के निर्देशन में सहज ही उपलब्ध हो जाता है। साधनात्मक मार्ग में गुरु पतवार के समान है। गुरु अपने संरक्षण में शिष्य को लेता चलता है ताकि वह पथ-भ्रमित न हो जाय। इस तरह सभी साधनाओं के ऊपर गुरु का व्यक्तित्व अक्षुण्ण सिद्ध है।

सिद्धों की साधना के मार्ग में बाह्य अनुष्ठानों का भी महत्त्व है। यद्यपि आडम्बरों का विरोध है फिर भी बाह्याचार की कुछ साधनाएँ स्वीकृत की गईं। तंत्र-मंत्र का भी प्रभाव पड़ा।

ठीक इसी तरह अजपा के साधक भी कुछ शुद्धि-मंत्र, ॐ या प्रणव के उच्चारण तथा देवी की स्तुति द्वारा दिव्य शक्तियों के आवाहन से साधना को सफलीभूत बनाते हैं।

मुद्रा की कल्पना– सिद्धों की साधना के अर्थ को समझने के लिये उनकी महामुद्रा की कल्पना को जानना आवश्यक है। कर्ममुद्रा, धर्ममुद्रा, ज्ञानमुद्रा और महामुद्रा के रूप में सिद्धों ने जीवन के सिद्धान्त को लिया है। सिद्धों ने भगवती नैरात्म को महामुद्रा के रूप में परिकल्पित कर, उसे डोम्बी, चांडालिनी, योगिनी, आदि कहा। ये निम्न जाति की स्त्रियों के वाचक नाम नहीं हैं, बल्कि तत्त्व-मार्ग में इनका गहन सांकेतिक अर्थ है।

मण्डल-चक्र अथवा मुद्रा-मैथुन रूप को भी क्रियात्मक रहस्य-रूप में माना गया है। चक्र-समागम और मुद्रा-मैथुन से उनका तात्पर्य चक्रों के भेदन तथा शिव और शक्ति रूप की प्राप्ति से है।

इस तरह अजपा के साधक को योग की इस मुद्रा में पूर्ण अनासक्त रहना चाहिए। साधक गुरु के पास जाता है, गुरु उसे अभिषिक्त करता है, फिर साधक मण्डल-चक्र में प्रवेश करता है और तब साधना की चरम परिणति समाधि में होती है।

इस प्रकार गुरुदेव के 'अजपा-जप' के सारे रहस्य सिद्धों की साधना में मिलते हैं। अन्तर इतना ही है कि काल के अनुसार उस समय ये सिद्धों की साधनायें सर्वसाधारण के लिए निषिद्ध थीं, जबकि पूज्य गुरुदेव ने उन्हें नये रूप में सामने रख सर्व-सुलभ बना दिया है।



अजपा-जप

प्रथम भाग

चेतना क्या है?

चेतना क्या है? चेतना हमारे अन्दर की वह ज्ञान शक्ति है जो अपने को जानती है तथा दूसरों को भी जानती है। बाहरी प्रतिक्रियाओं को ग्रहण करना और उसके आधार पर स्वयं प्रतिक्रिया करना, चेतना का सिर्फ इतना ही कार्य नहीं है। उसकी अपनी एक स्वतंत्र सत्ता है। वह बिना किसी बाहिरी प्रतिक्रिया के भी क्रियाशील रहती है, यद्यपि हमें उसके कार्यों का पता न हो। आम धारणा के अनुसार चेतना को मन का समानार्थी माना जाता है, लेकिन यह गलत है। मानव स्तर पर चेतना मन से संयुक्त रहती है यह तो ठीक है, लेकिन मानव-मन चेतना की सम्पूर्ण परिधि को अपने अन्दर प्रकट करने में असमर्थ है। मन की सीमा से बाहर भी चेतना का फैलाव है, जिसे जानने में मन पूर्णत: असमर्थ है।

चेतना के अनेक स्तर होते हैं, जो सार्वभौमिक हैं। मानव मन की सीमा के अन्दर इन स्तरों की अनुभूति असम्भव है। मानव मन में चेतना का उतना ही अंश या वह स्तर ही प्रकट होता है, जिसे धारण कर सकने की शक्ति मन में आ गई हो।

इस तरह, चेतना एक ऐसी शक्ति है जो अपने आप में पूर्ण तथा स्वतंत्र है। उसकी अभिव्यक्ति इस बात पर निर्भर करती है कि वह अपने को किस माध्यम द्वारा और किस रूप में अभिव्यक्त कर रही है। इन्द्रियों के माध्यम से जब वह अपने को बाहर केन्द्रित करती है तब हमें बाहरी दुनिया का ज्ञान होता है। जब वह अपने आपको मन में केन्द्रित करती है तब हमें मन का ज्ञान होता है और मन के विभिन्न स्तरों का ज्ञान होता है। जब चेतना बाहर की दुनिया में केन्द्रित रहती है तब हमें अपने मन के अन्दर का ज्ञान नहीं रहता और जब वह मन में केन्द्रित हो जाती है तब हम बाहरी दुनिया से अनभिज्ञ हो जाते हैं। मन

की और भीतरी गहराइयों में चेतना के प्रवेश करने पर हम अपने अन्तर्मन की गहराइयों की जानकारी प्राप्त करते हैं। शरीर तथा मन से ऊपर उठकर चेतना अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करती है।

चेतना सृष्टि का एक बुनियादी तत्त्व है। वह अपने को किसी भी रूप में अथवा किसी भी माध्यम द्वारा प्रकट कर सकती है। रूप अथवा माध्यम की सीमा चेतना की सीमा नहीं है, सिर्फ चेतना की अभिव्यक्ति की ही सीमा है। सृष्टि के विभिन्न नाम-रूपों में चेतना-शक्ति ही अपने आप को अभिव्यक्त कर रही है। जड़ पदार्थों में यह शक्ति अप्रकट रूप से कार्यशील है। विकास के क्रम में यही शक्ति वनस्पति, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, पशु-पक्षी, आदि के स्तरों से गुजरते हुये अन्त में मनुष्य के रूप में अभिव्यक्त होती है। मानव-विकास के विभिन्न स्तर भी इसी चेतना-शक्ति की अभिव्यक्ति के निम्न, उच्च तथा उच्चतर स्थितियाँ हैं। मानव-विकास की उच्चतम स्थिति में यही चेतना-शक्ति अपनी सारी सीमाओं को लाँघकर अपने शुद्ध-स्वरूप में स्थित हो जाती है। इसे ही आत्मज्ञान या आत्म-साक्षात्कार कहा जाता है।

अब सवाल उठता है, कि आत्मज्ञान या आत्म-साक्षात्कार कैसे प्राप्त किया जा सकता है? क्या इसी जीवन में हम कुछ प्रयास कर आत्मज्ञान प्राप्त कर सकते हैं? क्या सभी स्त्री-पुरुष अपनी परिस्थिति के अन्दर रहकर इस आत्म-विज्ञान के विद्यार्थी हो सकते हैं? क्या अपने में स्थित यौगिक-चक्रों को जगाकर मनुष्य प्रतिभाशाली बन सकता है?

इन सब प्रश्नों का उत्तर है—हाँ। कुछ ऐसी टेकनीक जरूर है, इस आत्मा या चेतना के विषय में, जिसके द्वारा मनुष्य अपनी योग्यताओं और विभूतियों को बढ़ा सकता है। कुछ ऐसी विशेष रीति जरूर है, जिससे अनपढ़ कबीर भी महान ज्ञानी और तत्त्वदर्शी बन गये, रैदास मोची भी गुरु बन गये और मुसलमान फकीर भी पीर और साईं बनकर पूजे गये।

संतों की रहस्यमय वाणी

कई जगह आपको संतों की वाणी में कुछ अटपटी बातें सुनने और पढ़ने को मिली होंगी। जैसे 'शून्य गगन में सेज पिया की', 'इंगला पिंगला ताना भरनी' या 'नाभि-कमल से सुरता चाली, सुलटा दम उलटाया,' या 'रस गगन-गुफा में अजर झरे,' इत्यादि। कवि और साहित्यिक इनका अपने ढंग से अर्थ लगाते हैं। पर योगी जानता है कि इन उल्टे-सीधे शब्दों में आत्म-विज्ञान के

प्रयोगात्मक रहस्य छिपे हुए हैं और क्रियावान् व्यक्ति उन्हें समझता है, या फिर योग्य गुरु योग्य शिष्यों को अपने सुनिरीक्षण में इनका अभ्यास कराता है।

आज भी बहुत-से ऐसे सम्प्रदाय हैं जो धर्म की बहुत-सी बातें बताने और अनेक नैतिक नियमों का पालन कराने के बजाय अपने दल के सदस्यों से कुछ क्रियाओं का सिर्फ अभ्यास कराते हैं। इन क्रियाओं के अभ्यास से मनुष्य की छिपी हुई दिव्य-शक्तियाँ धीरे-धीरे विकसित होने लगती हैं। क्यों विकसित होती हैं—इसका कारण वैज्ञानिक ढंग से भी समझाया जा सकता है।

बच्चों की स्मरण-शक्ति तीव्र करने के लिये बचपन में उन्हें याद करने के अभ्यास कराये जाते हैं। उनसे अनेक चीजें, गिनती, कविता, श्लोक इत्यादि कंठस्थ कराये जाते हैं। इससे उनके मस्तिष्क के विशेष केन्द्र स्थल विकसित होते जाते हैं। इस प्रकार के अभ्यास चित्रकारी, संगीत इत्यादि हैं। शुरू से ही अभ्यास व ट्रेनिंग लेने से बच्चे के तद्ज्ञान सम्बन्धी ज्ञान-तन्तु विकसित होते जाते हैं, जो प्रयोग और अभ्यास के अभाव में सुप्त ही रह जाते। इसी प्रकार प्रत्येक मनुष्य के मस्तिष्क में कुछ ऐसे केन्द्र भी हैं, जो साधारण मनुष्यों में उपयोग और प्रयोग के अभाव में सुप्त या निष्क्रिय रहते हैं। उस केन्द्र से सम्बन्धित ज्ञान-चेतना तब मनुष्य में नहीं रहती। योग में कुछ ऐसी स्थूल या शारीरिक क्रियायें हैं, जो मनुष्य के उस केन्द्र पर दबाव डालती हैं। वहाँ के तन्तु प्रभावित होकर क्रियावान् हो जाते हैं। उनकी देखने, सुनने, जानने, बोलने और सूँघने की शक्ति अधिक तीव्र हो जाती है।

यूँ समझिये कि एक शहरी और ग्रामीण में जिस प्रकार ज्ञान का अन्तर हो जाता है, वही अन्तर एक साधारण मनुष्य की इन्द्रियों और एक क्रियावान् व्यक्ति की इन्द्रियों में हो जाता है। प्रतिदिन थोड़ा-थोड़ा अभ्यास करते-करते किसी भी भौतिक विद्या में जैसे मनुष्य किसी दिन पारंगत हो जाता है, उसी प्रकार योग की कुछ क्रियायें ऐसी हैं, जिनका अभ्यास करने से मनुष्य की सुप्त ज्ञान-इन्द्रियाँ धीरे-धीरे जाग्रत होने लगती हैं।

मनुष्य जीवन का लक्ष्य—समाधि

वास्तव में मनुष्य जीवन का स्वाभाविक और नियत लक्ष्य है, समाधि प्राप्त करना, किन्तु आज के समाज में समाधि का अर्थ लोग गलत लगाते हैं। श्वास को ब्रह्मरन्ध्र में चढ़ा लेना समाधि नहीं है। गुफा में छ: महीने बैठे रहना भी समाधि नहीं है, और न गड्ढा खोदकर उसमें रहना ही समाधि है। फिर समाधि

है क्या? समाधि का अर्थ है चित्त का समाहित हो जाना, श्वास रोकना नहीं। और जड़ हो जाना, मूढ़ हो जाना भी समाधि नहीं है। स्पर्श ज्ञान न हो, इन्द्रिय ज्ञान न हो– यह समाधि की अवस्था नहीं है।

समाधि का लक्षण ज्ञान है। पूर्ण ज्ञान की अवस्था समाधि है। प्रत्येक व्यक्ति इसकी प्राप्ति का अधिकारी है। समाधि जिसे प्राप्त होती है, उसका व्यवहार बदल जाता है। उसमें व्यवहार-कुशलता आ जाती है। उसका ज्ञान और व्यवहार सहज तथा स्वाभाविक बन जाता है। उसके कर्म अन्तर्ज्ञान से प्रेरित होकर होने लगते हैं। वह सिर्फ किताबी विद्वान् नहीं होता। उसके विचार उधार लिये नहीं होते। अभ्यास और अनुभव से सत्य को जिस प्रकार उन्होंने जाना है, उसे सिद्ध और प्रमाणित करने के लिये ही वे ग्रन्थों के ज्ञान को उद्धृत करते हैं, अपनी विद्वत्ता दिखाने के लिये नहीं। पुस्तकों को पढ़कर जो विद्वान् होते हैं, उनके विचार उलझे हुये रहते हैं। वे अपने ही विचार और कर्म, विश्वास और व्यवहार, सिद्धान्त और परिस्थिति में समझौता नहीं कर पाते। इसकी प्रतिक्रिया उनके शरीर और मन के अस्वाभाविक और दोषपूर्ण जीवन में व्यक्त होती है। वे परिस्थितियों के मालिक न होकर दास हो जाते हैं, और अपने दुनियावी जीवन में असफल रहते हैं।

समाधि का अभ्यास बिना किसी अपवाद के सभी व्यक्ति कर सकते हैं। इस अभ्यास के कई श्रेणी के पाठ्यक्रम होते हैं।

क्रियायोग और अजपा गायत्री

अजपा-जप क्रियायोग का एक शास्त्रोक्त अंग है। इसके छः महीने के अभ्यास से ही मनुष्य को चित्त को समाहित करने की कला मालूम पड़ जाती है। अजपा-जप के अभ्यास और सिद्धि से मनुष्य अनेक असम्भव कर्म भी करने में समर्थ हो सकता है। अष्ट-सिद्धि और नौ-निधि की दाता है अजपा-गायत्री।

सभी योग ग्रन्थों में अजपा-जप का वर्णन आया है। 'अजपा नाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा', यही वह क्रियायोग है, जिसकी दीक्षा बड़े-बड़े संत अपने सभी भक्तों और शिष्यों को दिया करते हैं। इसी अजपा के उच्च पाठ्यक्रम में कुछ और विशेष ज्ञान या कला जोड़ कर, इसकी उच्च क्रिया केवल अधिकारी शिष्यों और साधकों को ही सिखलाई जाती है। इसी वैज्ञानिक क्रिया का अभ्यास योगीजन हिमालय में बैठकर किया करते हैं और इसी क्रिया की शिक्षा, बिहार योग विद्यालय, मुंगेर द्वारा आज हजारों लोगों तक पहुँचाई जा रही है।

ये क्रियायें पूर्वकाल में जन-साधारण में प्रचारित नहीं होती थीं, केवल गुरु-शिष्य परम्परा से ही चली आ रही थीं। आज भी इसकी प्रारंभिक अवस्था का अभ्यास तो सब यूँ ही कर सकते हैं, किन्तु योग मार्ग में आगे जाने वाले इच्छुक साधकों को एक गुरु की आवश्यकता है। साधारण पूजा-पाठ, भक्ति, धर्म तथा भगवन्नाम जप का सब लोग अभ्यास कर सकते हैं। पर आत्मानुभूति (self-realisation) के लिये गुरु के बिना आगे नहीं बढ़ा जा सकता। गुरु भी शिष्य की योग्यता देखकर ही उसे आगे बढ़ाता है।

अजपा का प्रथम अभ्यास

अजपा के अभ्यास के लिये अब उसकी प्रथम विधि यहाँ बताई जावेगी। सर्वप्रथम किसी भी बैठने और ध्यान करने के आसन को आप अपना मुख्य आसन बना लो। प्रतिदिन इसी आसन में बैठो। इस आसन और मुद्रा में बैठने का साधक को कम-से-कम एक घण्टे का अभ्यास अवश्य हो जाना चाहिये। जितनी देर तक अजपा की साधना की जावे, शरीर को हिलाना, डुलाना, खुजलाना, हाथ व पैर की स्थिति को बदलना आदि कोई भी शारीरिक क्रिया नहीं करनी चाहिये।

प्राय: लोग ध्यान में आँखें बन्द कर बैठते और ध्यान तो करते हैं, पर कुछ शारीरिक हलचल भी बीच में कर लेते हैं, जैसे मक्खी उड़ाना, खुजलाना या शरीर की स्थिति को बदलना आदि, पर यह उचित नहीं। आसन में पूर्ण स्थिरता होनी चाहिये। चंचलता आदि है तो स्वाभाविक शारीरिक-कर्म, किन्तु जब अजपा के साधन के समय ऐसा कुछ मालूम पड़े तो मन को थोड़ा कड़ा कर सहन-शक्ति को बढ़ाना चाहिये। यह तितिक्षा का अभ्यास है। यह कठिनाई तुम्हें केवल आरम्भ में ही मालूम पड़ेगी। कुछ समय के अभ्यास के बाद तो आसन में बैठते ही चित्त एकाग्र होने लग जावेगा, और चित्त की एकाग्र अवस्था में ये सब बाह्य शारीरिक-विक्षेप नहीं होते।

अजपा के लिये सबसे उत्तम दो ही आसन हैं। एक पद्मासन और दूसरा सिद्धासन। वैसे तो किसी भी प्रकार से बैठकर या लेटकर भी अजपा का अभ्यास किया जा सकता है, पर योग के विद्यार्थी को ऐसे ही आसन के अभ्यास की आदत प्रारम्भ से होनी चाहिये, जिसकी योग के उच्च साधना-कोर्स में भी उसे आवश्यकता होगी। पद्मासन ही ऐसा आसन है, जिसमें कई-कई घण्टे बैठे रहा जा सकता है। प्रारम्भ में नये साधकों को एक घंटा भी एक आसन में बैठना कठिन प्रतीत होता है, किन्तु दीर्घकाल तक अभ्यास करने से

कोई दिक्कत नहीं होगी। शुरू में पद्मासन का अभ्यास पन्द्रह मिनट से प्रारम्भ कर एक घण्टा तक बढ़ाइये। यदि योगाभ्यास में तुम्हें तीव्र रुचि हो तो तीन-चार घण्टे तक एक आसन में बैठने का अभ्यास पक्का कर लेना उत्तम होगा।

आसन में बैठकर रीढ़ की हड्डी सीधी रखो, हाथों को दोनों घुटनों पर सहज अवस्था में रखो, तथा आँखें बन्द कर लो। अजपा नित्य एक ही स्थान में बैठकर करना चाहिये। इससे सफलता जल्दी मिलती है।

अजपा की क्रियाविधि

अब सबसे पहले अपने श्वास पर ध्यान दो। आँखें बन्द कर अन्दर जाती हुई और बाहर आती हुई श्वास को देखो। खूब अच्छी तरह से देखो। यह देखने की क्रिया सूक्ष्म क्रिया है। श्वास को देखते समय बुद्धि को अलग हटा दो। बुद्धि से ध्यान-योग अथवा योगाभ्यास में बड़ी बाधा पहुँचती है। बुद्धि होनी चाहिये अवश्य, पर उसका प्रयोग जरूरत की जगह पर किया जाना चाहिये, सब जगह पर नहीं। साधना करते समय बुद्धि लगाने से आप आगे नहीं बढ़ेंगे, यह निश्चित है। श्वास को देखना अंत:करण से होना चाहिये, विचार रूप में नहीं।

कुछ देर याने चार-पाँच मिनट श्वास को देखने के बाद श्वास के साथ किसी मंत्र को जोड़ो। उदाहरणार्थ ॐ या सोऽहं या कोई भी अन्य मंत्र। यद्यपि बड़े मंत्र से भी अभ्यास हो सकता है, तथापि छोटा मंत्र ही लेना उत्तम है।

श्वास में मंत्र जोड़ने का तरीका क्या है? जब तुम श्वास अन्दर लो तो ऐसी भावना करो कि ॐ के साथ या रूप में श्वास आ रही है, अथवा इस प्रकार साधो। श्वास अन्दर लेते समय ॐ का मानसिक उच्चारण करो। 'लेते समय' का प्राय: लोग यह अर्थ लगा लेते हैं कि मन में ॐ का उच्चारण समाप्त कर लेने के बाद श्वास अन्दर लेना और इसी प्रकार बाहर निकालना, पर ऐसा नहीं है। ॐ का दीर्घ मानसिक उच्चारण होना चाहिये। और श्वास की पूरी लम्बाई ॐ से आवृत होनी चाहिये। श्वास अन्दर खींचना प्रारम्भ करने के साथ ही ओ... का उच्चारण शुरू हो जाना चाहिये और श्वास खींचने की गति की समाप्ति पर म्... का उच्चारण समाप्त होना चाहिये। यहाँ उच्चारण का मतलब हमेशा मानसिक उच्चारण है। इस प्रकार अन्दर आनेवाली श्वास की पूरी लम्बाई तक एक ॐ का मानसिक उच्चारण होना चाहिये। ठीक इसी प्रकार श्वास बाहर निकालते समय श्वास की पूरी लम्बाई तक एक ॐ का मानसिक उच्चारण होना चाहिये। पुन: यही क्रिया लगातार 15 मिनटों तक

करते जाओ। बीच में न तो श्वास का तार टूटना चाहिये, और न ॐ के मानसिक उच्चारण का ही।

कुछ दिनों तक इसी प्रकार श्वास के साथ मंत्र जोड़कर अजपा-जप के इस साधन का अभ्यास करो। इसमें तुम्हें श्वास ओर मंत्र दोनों का ध्यान रखना होगा। कुछ समय के अभ्यास से श्वास और मंत्र दोनों मिलकर एक हो जावेंगे। पन्द्रह-बीस दिनों तक ऐसा अभ्यास, नित्य, कम-से-कम बीस मिनटों तक अवश्य करो। साधना के लिये 5-10 मिनटों के अभ्यास की कोई गिनती नहीं है। कुछ परिणाम पाने के लिये आप जितना समय और शक्ति साधना में लगाओगे, वैसा ही फल प्राप्त करोगे।

मंत्र और श्वास को जोड़ने के बाद उसके साथ एक तीसरी क्रिया भी करो। अपनी चेतना को भृकुटी के बीच में केन्द्रित करो। यह भी एक सूक्ष्म क्रिया है। शारीरिक क्रिया से इसका कोई सम्बन्ध नहीं। आँखें बंद रखे हुये ही भृकुटि का ख्याल करके अपनी सारी चेतना को वहाँ केन्द्रित करो। इस प्रकार तुम्हें एक साथ तीन बातों का ध्यान रखना होगा—श्वास, मंत्र और भृकुटी में चेतना। किसी अन्य चौथी बात में न मन जाना चाहिये और न विचार। लगातार पूरी तन्मयता के साथ अन्दर जाने वाले दम और बाहर आने वाले दम का मंत्र और चेतना के साथ-साथ ध्यान रखो। इसी को कबीर साहब कहते हैं 'चढ़ते दम और उतरते दम की खबर लेना।' यही है 'मन का मनका' जिससे कबीर ने लोगों को इस गुप्त-साधना का अभ्यास करने के लिये संकेत किया है। लोग इसके निषेधात्मक अर्थ को तो ले लेते हैं, किन्तु न तो वे इस साधना को समझते हैं और न इसके अभ्यास में प्रवृत्त ही होते हैं। उल्टे जो कुछ करते थे, या प्रथा चालू थी, उसे भी छोड़ दिया। माला पर भी जप करना छोड़ दिया। वास्तव में सत्य यह है कि माला के जप की अपेक्षा श्वास रूपी मनके पर जप अधिक प्रभावशाली है, लेकिन इसका यह भी अर्थ नहीं कि मन में सिर्फ राम-राम कह लेना काफी है। निष्ठापूर्वक बैठकर जप-साधन का अभ्यास करने से ही फायदा होता है।

अजपा का अभ्यास 'सोऽहं' मंत्र में भी किया जाता है। 'सोऽहं' में यदि अजपा करना हो तो अन्दर जाती हुई श्वास में 'सो' की भावना करनी होगी और बाहर आती हुई श्वास में 'हं' की भावना। अन्य सब क्रियायें ॐ के अजपा-जप के अनुसार ही चलेंगी। 'साऽेहं' का शास्त्रीय रूप है—

हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः।
अजपा नाम गायत्री जीवो जपति सर्वदा॥

दूसरा भाग

अजपा-जप की सिद्धि तभी होती है, जब नाद प्रकट होता है। साधना करते-करते एक ऐसी अवस्था आती है, जब साधक को मंत्र की भावना भी नहीं करनी पड़ती। अंतर्ध्वनि स्वयं प्रकट हो जाती है और जप बिना किये अपने आप ही होने लगता है। यह अवस्था प्राप्त कर लेना ही साधक का अभीष्ट होना चाहिये। अजपा में जल्दी सफलता पाने के लिये कुछ और भी महत्त्वपूर्ण उपाय हैं जिसका शास्त्रीय-ग्रंथों में बराबर उल्लेख मिलता है। अजपा-जप की दूसरी अवस्था के अभ्यास के लिये पहले तुम्हारी कुछ तैयारी जरूर हो जानी चाहिये। पहली आवश्यकता तुम्हें होगी आसन की, जिसके बारे में पहले बतलाया जा चुका है। साधक की आसन सिद्धि याने कम-से-कम तीन घंटे एक आसन में बैठने का अभ्यास हो जाना आवश्यक है। आसन दृढ़ और रीढ़ की हड्डी बराबर सीधी रखने का अभ्यास होना चाहिये। अजपा का अभ्यास ऐसा प्रभावशाली है कि कभी-कभी साधना करते-करते मनुष्य एकदम 'अन्दर' चला जाता है। बाहरी ज्ञान एकदम लुप्त हो जाता है। इसलिये कुछ बातों में विशेष सावधान रहना चाहिये।

अजपा कहाँ किया जावे?

समय व स्थान के बारे में भी बतला दूँ। उच्च-श्रेणी का अभ्यास करने वाले साधक जहाँ-तहाँ बैठकर अजपा का अभ्यास नहीं करें। साधना में जिनकी दिलचस्पी होती है, और जो संस्कारी होते हैं, वे तो बहुत कम समय में ही आगे बढ़ जाते हैं। दृढ़ आत्मशक्ति (will power) तथा चिन्तामुक्त अवस्था (carefree attitude) वाले जब साधना की ओर झुकते हैं तो, दिन, सप्ताह, महीने और वर्ष से उनकी प्रगति आंकना कठिन हो जाता है। अस्तु, अजपा की साधना सब जगह याने जहाँ-तहाँ अरक्षित स्थानों में नहीं करनी चाहिये। योगाभ्यास कहाँ किया जाना चाहिये, इस पर योग शास्त्रों में बहुत कुछ लिखा हुआ मिलता है। जहाँ अग्नि, जल और शिला नजदीक में चार हाथ के अन्दर

न हो, उस स्थान में बैठकर योग का अभ्यास करना ठीक है। चलते-फिरते, साइकिल इत्यादि पर भी अजपा का उच्च-अभ्यास नहीं किया जाना चाहिये। एक-बार एक वय-प्राप्त व्यक्ति को अजपा की अंतर्मुख अवस्था दुकान में काम करते समय आ गई थी। लोगों ने समझा कि वे बेहोश हो गये हैं और उनका डाक्टरी उपचार करने लगे। ऐसा नहीं होना चाहिये।

साधना वहीं करनी चाहिये जहाँ शरीर की सुरक्षा का प्रबन्ध हो। प्राय: लोग अपने गृह के पूजा-स्थान में साधना करते हैं, पर वह भी योगाभ्यास या अजपा-जप साधना के लिये उपयुक्त नहीं। देव आसन, दीपक, पूजा के अन्य सामान, धूपबत्ती, अग्नि या कोई कठोर वस्तु इत्यादि जहाँ पास में हो, वहाँ अजपा नहीं करना चाहिये। जिन्हें एक ही आसन में दृढ़ बैठने का अभ्यास नहीं होगा, उनका शरीर मन के अंतर्मुख हो जाने पर लुढ़क सकता है। इसलिये आसन के साथ स्थान के विषय में साधक को बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये। निश्चित और सुरक्षित स्थान तथा दृढ़ आसन कर लेने के बाद सुखपूर्वक बैठकर इस साधना का अभ्यास करना चाहिये।

विचार-शुद्धि

अजपा करने के पूर्व आभ्यन्तर शुद्धि की जरूरत है। उसे इस प्रकार करना चाहिये। पहले चित्त को शान्त कर लो। भावना करो कि इस समय आपको दुनिया की किसी वस्तु की इच्छा नहीं है। न आप दुनिया का प्रेम चाहते हो, न उसका वैभव। न आपको परिवार की चिन्ता है, न मित्रों की। दुनिया को न आपकी आवश्यकता है और न आपको दुनिया की। यह सोचो कि यदि मैं न भी रहूँ तो भी दुनिया का काम पूर्ववत् ही चलता रहेगा। मेरी मृत्यु या जीवन से दुनिया में कोई फर्क नहीं पड़ेगा। सहस्त्रों मनुष्य रोज जीते-मरते हैं। मृत्यु समय-असमय देखकर नहीं आती। अत: जो कुछ आत्मोन्नति के लिये करना अपेक्षित है, वह मुझे अभी कर लेना चाहिये। यह आंतरिक 'मल-शोधन' की क्रिया है। मल केवल शरीर में नहीं रहता, मन में भी रहता है। अच्छे विचार या बुरे विचार नहीं, बल्कि विचार स्वयं ही मन के विकार हैं। इसलिये पहले पॉजिटिव विचार करना अच्छा होता है। राग-द्वेष का विचार हटाने के लिये पहले वैराग्य और शांति का विचार करना चाहिये। उसके बाद निर्विचार का अभ्यास। सब भावनाओं को हटाकर शांत और विचारशून्य हो जाओ। जैसे किसी के आने के पूर्व स्वागत में घर के कमरों को झाड़-पोंछकर साफ किया

जाता है, वैसे ही आत्म-साधना के पूर्व, मन की सफाई भी हो जानी चाहिये। प्रत्येक मनुष्य के मन में तरह-तरह के आवश्यक-अनावश्यक विचार जमा रहते हैं। जैसे बहुत-से धागे एक साथ रखने से उलझ जाते हैं, उसी तरह दिनभर अनेक तरह के विचार आकर हम सबके मन में जमा होते रहते हैं। बीस, चालीस और साठ वर्ष पुरानी बातें भी हमें याद रहती हैं। जो विचार या वासनायें (सुप्त इच्छायें) उनमें प्रमुख रहती हैं, वही साधना के समय प्रकट होती हैं। इसलिये यह जरूरी है कि इन सब उभरे हुये विचारों को उदासीनता के भाव लाकर शांत कर देना चाहिये।

चित्त-शुद्धि

हिन्दू-धर्म में शरीर और मन के मलों को स्वच्छ करने के लिये ऋषियों ने अलग-अलग मंत्रों का निर्माण किया। एक तो इन मंत्रों की ध्वनि ही मधुर और गम्भीर होती है, जो मन में शान्ति और पवित्रता के भाव जगाती है। साथ-साथ उनमें आत्म-चेतना, आत्म-प्रस्ताव और आत्म-संकेत (auto-suggestion) का विज्ञान निहित है। इसलिये निम्न मन्त्रोच्चारण करो।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यंतरः शुचिः॥

आत्म-शुद्धि का दूसरा मंत्र है—

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः
पापेभ्यो रक्षन्ताम् यद्रात्रौ पापमकार्षम्। मनसावाचा-
हस्ताभ्याम्। पद्भयामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु।
यत्किंच दुरितं मयि। इदमहं अमृतयोनौ।
सूर्यज्योतिषि जुहोमि स्वाहा।

प्रथम श्लोक में तो यह भावना की गई है कि भगवान पुण्डरीकाक्ष के स्मरण मात्र से अन्दर और बाहर की सब अपवित्रता नष्ट हो जाती है। स्मरण का अर्थ है, सचमुच में भावना करना, जिससे पवित्रता का भाव अवश्यमेव उत्पन्न होता है। द्वितीय मंत्र में हाथ, पैर, वाणी और मन के द्वारा रात और दिन में किये हुए सभी पापों को ज्योति में हवन कर अपने को शुद्ध करने की क्रिया बतलाई गई है।

शून्य-वृत्ति

स्थान व आसन के बाद चित्त-शुद्धि की क्रिया हुई। अब शून्य-वृत्ति लाइये। सभी प्रकार के विचारों और भावनाओं को एकदम वैसे ही मन से दूर हटा दीजिये, जैसे भौतिक जगत् में आप किसी वस्तु को अपने से परे हटाकर रख देते हैं। ये सब चीजें हैं तो सूक्ष्म, किन्तु मानसिक जगत् में ये उतनी ही यथार्थ हैं, जितनी भौतिक जगत् की वस्तुएँ। स्थूल जगत् से परे जाने का यह अर्थ नहीं होता कि उनसे दूर हटा जावे, पर जब तक चेतना का आलम्बन-केन्द्र स्थूल वस्तुएँ रहती हैं, तब तक हम स्थूल जगत् में रहते हैं। जब यही चेतना सूक्ष्म वस्तुओं पर आरोपित या हस्तांतरित हो जाती है, तब हम इस स्थूल जगत् में न रहकर मानसिक लोक में चले जाते हैं। निद्रा व ध्यान में यही होता है। साधना के समय मानसिक क्रिया द्वारा विचारों को अपने मानस-पटल से हटा देना चाहिये।

यदि दत्तचित्त होकर, बैठते ही साधना का अभ्यास शुरू कर दिया जावे तो इस चित्त-शुद्धि क्रिया की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। मनस्वी साधक बिना तैयारी के भी एकदम से साधना में डूब सकता है। किन्तु जो क्रमवार वैज्ञानिक पद्धति से जाना चाहते हैं, उन्हें तो पूर्वोक्त तरीके से अपनी तैयारी कर ही लेनी चाहिये। यह मन को निष्प्रभाव करने की क्रिया है। अत्यन्त प्रेम व भक्तिभाव भी इस क्रिया का पर्याय हो सकता है। जो शांत और विकार रहित भाव मन में लाना और उत्पन्न करना हमारा अभीष्ट है, वह किसी भी रीति से लाया जा सकता है।

साधक दो प्रकार की श्रेणी में आते हैं। एक तो वे जिनमें विश्वास प्रधान होता है, और दूसरे वे जिनमें बुद्धि प्रधान होती है। विश्वास प्रधान हमेशा भक्त होता है। भक्त को सिद्धि याने सफलता जल्द मिलती है। क्यों और कैसे मिलती है, यह उसे नहीं मालूम। होता है, बस यही वह जानता है। किन्तु बुद्धिवादी 'क्यों', 'कैसे' सबको समझता हुआ और विश्लेषण करता हुआ धीरे-धीरे प्रगति करता है। बुद्धिवादी, वैज्ञानिक की तरह कार्य एवं कारण में सम्बन्ध स्थापित कर देने के उद्देश्य से चलता है, पर भक्त अपनी एकाग्र भक्ति (one pointed devotion) के गुण से मंजिल पर जल्द पहुँच जाने में समर्थ है। बुद्धिवादी नापता-तौलता चलता है, इसलिए उसे देर लगती है।

शरीर और मन में सम्बन्ध

अजपा-जप साइकोफिजियोलौजीकल (psycho-physiological) क्रिया है। इसमें शारीरिक और मानसिक, दोनों क्रियाओं का संयोग किया जाता है।

श्वास और फेफड़े की गति शारीरिक है और अन्य सूक्ष्म क्रियायें मानसिक। इन दोनों का योग अजपा साधना में किया जाता है।

अजपा-जप करने के लिये शांत होकर बैठो और चित्त-शुद्धि के बाद इस प्रकार अभ्यास करो। श्वास के साथ मंत्र को मिलाओ, जब श्वास और मंत्र एक होने लग जाय, तो गीता में बतलाई हुई योग क्रिया को करो। जो साधक आँख बन्द कर साधना कर सकते हैं, उन्हें इस अन्तर्योग का अभ्यास ही करना चाहिये। सभी सन्तों की व्यक्तिगत साधना किसी-न-किसी रूप में अजपा-जप ही रही है। कबीर ने इसी का अभ्यास किया, मुसलमान सूफी फकीर भी यही करते रहे और वाल्मीकि भी यही साधना कर अमरत्व को प्राप्त हो गये।

अजपा का द्वितीय अभ्यास

अजपा की दूसरी विधि है, 'अपान में प्राण को हवन करना।' भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं, 'अपाने जुह्वति प्राणं, कुछ योगीगण अपान में प्राण का हवन करते हैं।' अपान में प्राण का हवन बड़ी महत्त्वपूर्ण क्रिया है, किन्तु यह कैसे सम्पन्न हो?

श्वास के साथ अन्दर जाने वाली वायु को प्राण और बाहर आनेवाली वायु को अपान कहते हैं। बाहर आनेवाले अपान के साथ अन्दर जानेवाला प्राण मिलकर बिल्कुल एक हो जाय, यही अपान में प्राण का हवन है। हवन क्रिया में अग्नि में हविष्य की आहुति होती है। हविष्य अग्नि में जलकर स्वयं अग्नि रूप बन जाता है। उसका अलग रूप नहीं रह जाता, तथा हवन में स्वाहा-स्वाहा-स्वाहा की क्रिया एक अविच्छिन्नता या एकतारात्मकता (continuity) के साथ चलती रहती है। इन्हीं दो बातों को अपान में प्राण के हवन करने के समय अपने सामने रखना है। यह क्रिया सैद्धान्तिक दृष्टिकोण से मैंने समझाई। अब क्रिया-योग के रूप में इसे समझिये।

'सोऽहं' मंत्र में यह क्रिया इस प्रकार सीखो। 'सो' से श्वास अन्दर लो– इसे प्राण कहेंगे। 'हं' से श्वास बाहर निकालो। इसे अपान कहेंगे। अब 'हं' और 'सो' को ही अपान और प्राण का प्रतीक समझ लो। ये सब क्रियायें वैसे सरल मालूम पड़ेंगी, पर इसमें लगातार अभ्यास और परिश्रम करना आवश्यक है। योग ग्रन्थ इसे केवल सूत्र-रूप में रखते हैं, जिससे साधक स्वयं अभ्यास से उनका अनुभव प्राप्त करें। जानना भर पर्याप्त नहीं है। बिना अभ्यास के वास्तविक अनुभव नहीं होता। तैराकी का शिक्षक स्वयं तैर सकता

है पर अपने शिष्य को बिना अभ्यास या प्रयत्न के अपनी विद्या हस्तांतरित नहीं कर सकता। यही दशा साधकों की है। आप भले ही उच्च कोटि का मार्गदर्शक प्राप्त कर सकते हैं, पर स्वयं अभ्यास किये बिना कुछ पा नहीं सकते।

यहाँ 'हं' में आप 'सो' का हवन करो। अर्थात् 'हं' में 'सो' को मिलाओ। आपकी श्वास इस तरह चलने लगेगी, जैसे आप श्वास के साथ, 'हं-सो, हं-सो, हं-सो' का मानसिक उच्चारण कर रहे हों। 'हं' और 'सो' का तारतम्य नहीं टूटना चाहिये। अपान और प्राण में अविच्छिन्नता होनी चाहिये। 'हं-सो' के बदले 'सो-हं' याने उल्टा भी नहीं होना चाहिए। एक 'हं-सो' और दूसरे 'हं-सो' के बीच में विराम हो सकता है, पर 'हं' और 'सो' के बीच में नहीं। विराम भी केवल कुछ पल का ही होता है। इसकी उल्टी क्रिया दूसरी विधि में आती है।

प्राय: 'हं' में 'सो' मिलाने से श्वसन-क्रिया जल्दी-जल्दी होने लग जाती है और अपान एक झोंके के साथ बाहर आता है। पर श्वास की साधारण गति को बनाये रखना चाहिये। श्वास की मात्रा व लम्बाई एक समान ही होनी चाहिये।

प्राय: एक मिनट में साधारण व्यक्ति 15 से 18 बार तक श्वास लेता है। किन्तु धीरे-धीरे अभ्यास करते हुए साधक की प्रति मिनट श्वास की संख्या घटती जानी चाहिये। श्वास संख्या में कम और गति में मन्द चलनी चाहिये।

भोजन के नियम

साधकों के लिये अल्प, हल्का एवं पौष्टिक भोजन होना चाहिये। साधना में बैठने के पूर्व भारी भोजन नहीं करना चाहिये। पूजा के बाद भोजन करने का नियम इसीलिये है। भोजन के बाद ध्यान करने से पाचन-शक्ति कमजोर पड़ जाती है, क्योंकि जितना ही चित्त-लय होता है, शारीरिक अवयवों की क्रियायें उतनी ही मन्द होती जाती हैं। अत: अजपा के अभ्यासी को भोजन में थोड़ी सतर्कता बरतनी चाहिये।

कुछ महीने तक इस यौगिक-क्रिया का अभ्यास करके देखिये। इससे मस्तिष्क के स्नायु-मंडल के अनेक केन्द्रों पर प्रभाव पड़ता है। इस क्रिया से कुछ को तो शान्ति, स्थिरता और पवित्रता का भान होता है, किन्तु कुछ को इस क्रिया से अनेक स्थलों पर गर्मी और शरीर में खुश्की का अनुभव होता है। यदि जलन और गर्मी का अनुभव हो तो गुरु को अपने अनुभव बतलाकर उनसे निर्देशन लेना चाहिये।

तीसरा भाग

अजपा-जप इतनी महत्त्वपूर्ण साधना है कि सभी व्यक्तियों को इसका अभ्यास करना चाहिये। वेदों, शास्त्रों और धर्म-ग्रन्थों का साहित्य के रूप में ही अध्ययन काफी नहीं है। प्रेरणा, प्रमाण और विश्वास आप सन्तों और शास्त्रों से प्राप्त करो लेकिन उसके बाद साधना में अवश्य प्रवृत्त हो जाओ। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो साधना कर सकते हैं वे ही उत्तम साधक हैं। केवल शास्त्र-ज्ञान से सत्य का ज्ञान नहीं होता, यह उपनिषदों का कथन है।

जितनी भी साधनायें हैं, वे सब मनुष्य का विकास कराने के लिये, मनुष्यत्व से देवत्व की ओर ले जाने के लिये, तथा उसे जीवन-मुक्ति का अनुभव कराने के लिये हैं। जीवन-मुक्ति का अर्थ है, जीवन में रहते हुये भी कष्टों और बन्धनों से मुक्ति प्राप्त कर लेना, उनसे निर्लिप्त हो जाना।

कष्ट–मानसिक अनुभूति

कष्ट एक अनुभूति का नाम है, जो भावना, समय, परिस्थिति, और आवश्यकता पर निर्भर करती है। एक ही कर्म भिन्न-भिन्न मनुष्य करते हैं, किन्तु हर एक व्यक्ति पर उसका प्रभाव अलग-अलग पड़ता है। पुन: एक ही कर्म मनुष्य अलग-अलग परिस्थितियों में करता है, परन्तु उसी मनुष्य पर उसी कर्म का प्रभाव अलग-अलग पड़ता है। एक वकील साहब एक बार यात्रा पर जा रहे थे। रास्ते में जेब कट गई। संयोग से टिकट बचा था। 24 घण्टे का सफर था। वकील साहब थोड़े कंजूस किस्म के आदमी थे। 24 घण्टे बाद जब अपने घर पहुँचे तब भोजन हुआ। ट्रेन में उपवास से उन्हें बहुत तकलीफ हुई। बार-बार यही कहते थे कि आज क्या संयोग था कि दिनभर भोजन ही नहीं मिला। पर वही वकील साहब, जब लड़के के जन्मोत्सव पर उपवास कर कथा कहला रहे थे, तो सारा दिन कैसे बीत गया यह उन्हें पता ही नहीं चला। इससे यह पता चलता है कि एक ही कर्म, अलग-अलग परिस्थिति में मन पर अलग-अलग प्रभाव डालता है। इसी प्रकार हमारे प्राय: नब्बे प्रतिशत कष्ट भावनाओं पर

आधारित हैं। एकाएक खुशी पाने पर या घबराहट में या जल्दी बाजी रहने पर सुख और दु:ख, दोनों का ही भान हमें नहीं होता। ऐसा क्यों? क्योंकि उस समय चित्त की सारी वृत्तियाँ किसी एक ओर लग जाती हैं। उदाहरण स्वरूप, जाड़े की ठण्ढी रात हो, घर में किसी प्रकार की दुर्घटना हो जाय और घर के बाहर अचानक जाना पड़ जाय, तो उस समय भी तो ठण्ढक वही रहती है, पर मनुष्य का ध्यान उस ओर नहीं जाने से ठण्ढक का अनुभव नहीं होता।

मानसिक व्यक्तित्व

यहाँ पर यह बतलाने का प्रयोजन यही है कि इसी तरह हर मनुष्य के व्यक्तित्व का पचास प्रतिशत तो बाह्य दुनिया और उसके व्यवहारों में रहता है, किन्तु पचास प्रतिशत या उससे भी अधिक भाग मानसिक विचार, भावना या सूक्ष्म जगत् के व्यवहार में रहता है। सबसे बड़ी कठिनाई यही है कि मनुष्य सूक्ष्म-जगत् में रहते हुये भी यह नहीं समझता कि वह सूक्ष्म-जगत् में कार्य कर रहा है। जैसे दिन का प्रकाश रहते हुये भी यदि आँखें बन्द कर ली जाएँ, या अंधेरे कमरे में रहकर यह कहा जाय कि सूर्य का प्रकाश है ही नहीं तो उसे क्या कहा जायेगा? यही हाल हम मनुष्यों का है। अच्छी तरह देखने और समझने पर यही मालूम पड़ता है कि केवल अविद्या और अज्ञान मनुष्य के दु:ख का कारण है, दूसरा नहीं।

एक अन्य उदाहरण लीजिये। यदि आपका पड़ोसी कभी बीमार हो जाय, उसके घर में नौकर-चाकर सभी रहें और वह स्वयं भी अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर लेने में समर्थ हो, फिर भी आप यह पायेंगे कि उसे इस बात का दु:ख अत्यधिक होगा कि उसका पड़ोसी उसकी बीमारी के बारे में सुनकर भी देखने-पूछने नहीं आया। उसका परम मित्र उससे सहानुभूति प्रदर्शित करने नहीं आया। कहने का तात्पर्य यह कि प्राय: बहुत तरह के भावनात्मक कष्टों से मनुष्य दु:खी रहा करता है। मनुष्य के बहुत-से शारीरिक रोगों का कारण, अतृप्ति, अपूर्ण और दबी इच्छायें, निराशा एवं दु:ख के मानसिक आघात होते हैं। मानसिक दु:ख से पहले मन बीमार होता है, और कुछ काल बाद शरीर। हर घर में हर एक व्यक्ति के दु:खों का कारण अलग-अलग रहता है।

दु:ख का कारण

दु:खों के कारणों का अध्ययन करने से ऐसा लगता है कि जैसे मनुष्य ज्ञात-मन (consciously) से न चाहते हुए भी स्वयं दु:खी रहना पसन्द करता है। भोग के

सामान जुटाने में तो वह सारी जिन्दगी बिताता है, पर यदि आसन, प्राणायाम, ध्यान और धारणा करने को कहा जाय तो उसे समय की कमी का रोना रहता है। योग की ओर प्रवृत्त करना साधु-संन्यासियों का कर्त्तव्य हो जाता है। मुक्त-जीवन का रास्ता सत, शास्त्र, उपनिषद् और गीता अनन्त काल से बतलाते चले आ रहे हैं, पर बहुत ही थोड़े लोग हैं, जो इनकी बातों को सुनते, पुनः अमल में लाते हैं। पर जिन्होंने गुरु-वचनों पर विश्वास किया और ऋषियों की बताई विधियों को साधना रूप में अपनाया, वे यह जानते हैं कि साधना से कितना लाभ होता है। मेरा इतना सब समझाने का तात्पर्य यही है कि तुम अपने आत्मिक विकास व आत्मानुसंधान के लिये चौबीस घण्टों में से थोड़ा समय अवश्य निकालो और साधना करो। पाँच, दस, पन्द्रह या पचीस मिनट, जितना भी बन सके। जिन्हें केवल उपयोगिता की दृष्टि से साधना करनी है, उनके लिये प्रतिदिन आधा या एक घण्टा काफी है। यदि अन्य कुछ नहीं तो सबसे सरल व उत्तम अजपा-जप को ही अपनी मुख्य साधना बनाकर आगे बढ़ो।

अजपा की तृतीय साधना

अजपा के दो अभ्यास पूर्व में बतलाये गये हैं। अब तीसरा बतलायेंगे। यह है 'प्राण में अपान' को हवन करना। जो योग साधना में प्रवृत्त होते हैं, उन्हें श्वास के साथ जप करने की विधि बतलाई जाती है। साधारणतः लोगों ने प्राण में अपान के हवन का अर्थ केवल प्राणायाम समझा है, परन्तु केवल यही इसका अर्थ नहीं है। गीता में एक स्थान पर कहा गया है, 'अपाने जुह्वति प्राणं प्राणेऽपानं तथापरे'। यदि प्राणायाम समझ कर भी इस क्रिया को किया जाय तो भी आप उसी रास्ते पर आ जाओगे, जहाँ आपको जाना है। प्राणायाम की क्रिया में प्राण में अपान का हवन करने के प्रयास में आप स्वतः उसी क्रिया को करने लग जाओगे जिसे योगीजन अजपा-गायत्री के नाम से जानते हैं।

अजपा-जप के अभ्यास के शोध से ऐसा पता चलता है कि अजपा की क्रमवार छः प्रकार की साधनायें हैं। प्रस्तुत अभ्यास (अजपा का तीसरा साधन) सीखने और करने के बाद ही आगे का अभ्यास किया जावे।

अजपा में मंत्र

अपाने जुह्वति प्राणं से आप परिचित हो चुके हैं, अब केवल *प्राणेऽपानं तथापरे* को ही ध्यान में रखा जावेगा।

अजपा की साधना अगर केवल 'सो-हं' मंत्र में ही की जावे तो सरल व उत्तम होती है। 'सो' ओर 'हं' प्राणों की ध्वनि है। केवल 'मैं वह हूँ' ही इसका अर्थ नहीं होता। प्राणों को भीतर-बाहर ले जाने में ध्यान से सुनने पर 'सो' और 'हं' की ही आवाज मालूम होती है। इसका प्रमाण इस तरह लो। बाँस की नली या किसी खाली स्थान में हवा घुसने से 'सूं' की आवाज होती है। पुन: जब श्वास मुँह से बाहर निकलती है तो हमेशा 'हा' की आवाज होती है और मुँह बन्द करने पर 'म' की आवाज होती है। इसलिये 'सो हं' को प्राणों की ध्वनि मानते हैं। जिन्हें मंत्र समझ कर 'सो हं' में श्रद्धा उत्पन्न न हो, वे इसे प्राणों की ध्वनि समझकर करें। साधना में 'आगे बढ़ने' के लिये उच्च साधकों को अपनी संकीर्ण भावनाओं और विचारों को तिलांजलि देनी पड़ती है। पुराने विचारों और भावनाओं को पकड़े रहने पर आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है, क्योंकि संकीर्ण विचार भी मन के बन्धन हैं। प्रारम्भिक अवस्था में उन्हीं विचारों और भावनाओं की दृढ़ता से साधक को मदद मिलती है, पर आगे बढ़ने पर वे छूट जाती हैं या छोड़ना पड़ता है। जो मनुष्य ऊपर जाना चाहता है, उसे सीढ़ी से मदद तो जरूर मिलती है पर आगे बढ़ने पर सीढ़ी स्वयं छूट जाती है। अस्तु, यदि अजपा अभ्यास 'सो हं' में ही किया जाय तो अच्छा है, किन्तु इतना कहने पर भी जिन्हें संतोष न हो, वे गुरु-मंत्र या इष्ट-मंत्र में साधना करें। उदाहरणार्थ, राम, सीताराम, श्रीराम, राधेश्याम, ॐ नम: शिवाय, ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे, श्री माँ, राधे, आदि में से किसी मंत्र में करो। नुकसान किसी मंत्र में नहीं है।

अपान का हवन

इस तीसरे अभ्यास में अब आप प्राण-वायु में अपान-वायु को भी मिलाओ, अर्थात् अन्दर जानेवाली श्वास में बाहर आने वाली श्वास का हवन करो। 'सो' की ध्वनि में 'हं' की ध्वनि और क्रिया, दोनों का हवन करो। इस वर्तमान क्रिया के अभ्यास तक आते-आते आपकी श्वास और मंत्र का अलग-अलग अस्तित्व नहीं रह जाना चाहिये। अत: यहाँ प्राण, मंत्र, श्वास और मानसिक उच्चारण, ये सब एक ही क्रिया के पर्याय हैं, ऐसा समझ लेना चाहिये।

हवन में अग्नि तो बराबर प्रज्ज्वलित रहती है, पर हविष्य हर बार स्वाहा मंत्र के साथ अग्नि में डाला जाता है। यहाँ प्राणवायु अग्नि है और अपान वायु उसमें हविष्य। इसलिये प्राणवायु तो निरन्तर अपनी स्वाभाविक गति से

अन्दर जाती रहेगी, परन्तु प्रतिवार 'हं' के साथ अपान वायु को बाहर झोंकना ही प्राण-वायु में अपान का हवन कर देना है। इसलिये 'सो' से श्वास अन्दर खींचो, स्वाभाविक गति से, फिर 'सो' में 'हं' को मिलाने की क्रिया हवन की भावना के साथ करनी पड़ेगी। आपको यह ख्याल रखना पड़ेगा कि आप अपान की, याने 'हं' की आहुति दे रहे हो। इसमें साधक को हमेशा सचेत और जाग्रत रहना पड़ेगा। एक भी आहुति अनजाने में या बिना भावना के नहीं जाने पावे।

इसे ही प्राण में अपान को हवन करना कहेंगे। 'हं' को हमेशा चेतना के साथ बाहर आना चाहिये। कोई भी श्वास चूकने न पावे। ऐसा होते-करते, होते-करते, आप स्थूल जगत् में सो जाओगे और चेतना अन्दर चली जायेगी। अपनी चेतना को अन्दर ही जगाये रखने में परिश्रम तो बहुत मालूम पड़ता है, पर लगातार अभ्यास में लगे रहने से धीरे-धीरे अन्दर जगने की क्रिया मालूम पड़ने लगेगी। यदि नींद न आ जावे तो मनुष्य सूक्ष्म-लोक में प्रवेश करता है।

सूक्ष्म-लोक

सूक्ष्म-लोक में जाने का एक ही रास्ता, एक ही सुरंग या गली है, वह है ध्यान। ध्यान पहले तो साधक के लिये साध्य है, किन्तु आगे बढ़ने पर वह अन्तर्लोक में प्रवेश करने का साधन है। पहले प्रत्याहार व धारणा आदि से बाहर की चीजों में रस लेनेवाले मन को अन्दर की ओर जाने की आदत लगाओ। आदत लगने पर उसे एकाग्रता की ट्रेनिंग दो। एकाग्रता की योग्यता प्राप्त कर लेने पर ध्यान के कमरे में घुसो। ध्यान का कमरा अन्धेरी कोठरी (dark room) है, जहाँ आप अपनी तस्वीर को धो सकते हो, डेव्हलप (develop) कर सकते हो। जब तक बाहर का प्रकाश है, अर्थात् इन्द्रिय-चेतना है, आप अपनी फोटो को धोने का काम नहीं कर सकते। इसलिए बाहर का प्रकाश बाहर ही छोड़कर, आप अन्दर अपने अन्धेरे कक्ष में चले जाओ। यही ध्यान है। बाहर का जगत् बाहर ही रहता है, किन्तु जिस चेतना से आप बाहर का ज्ञान प्राप्त करते हो, उसी चेतना को लेकर जब आप अपने अन्दर के कमरे में चले जाते हो, तो वह ध्यान है। अन्दर प्रवेश के लिये आपको रास्ते और द्वार की जरूरत है। रास्ते से चल कर ही आप अन्दर के अंधेरे कमरे में प्रविष्ट होने का द्वार पाओगे। यही रास्ता है अजपा-जप। अजपा-जप के रास्ते से चलते रहो, चलते रहो, जब तक आप अन्दर के कमरे में प्रविष्ट न हो जाओ।

यदि आप बराबर चलते ही रहोगे तो गन्तव्य स्थान निकट आता जावेगा और मंजिल या द्वार जरूर मिल जावेगा। किन्तु यदि कोई लड़का घर से स्कूल के लिये निकले, पर रास्ते में ही कहीं ठिठक जावे, तो क्या वह स्कूल पहुँच सकेगा? अजपा में भी ऐसा ही है। इसलिये केवल चलना ही नहीं, बल्कि सतत् चलते रहना है। साधना पथ में यदि अजपा करते-करते आप विचारों में भटक गये, या सो गये, तो आगे नहीं बढ़ पाओगे। अजपा का नियमित अभ्यास, और अभ्यास में भी निरन्तर प्राण में अपान की सतत् आहुति चेतना के साथ चलती रहे, यह आवश्यक है।

सिद्धि का रहस्य

साधकों के लिये एक चेतावनी है। अपनी साधना की आलोचना-समालोचना मत करो। मन में दबी हुई, स्वार्थ-पूर्ण इच्छा रखकर साधना नहीं करो। उच्च साधकों के लिये ये सब ध्यान में रखने की चीजें हैं। अपनी साधना का तारतम्य और मिलान अपने पारिवारिक, सामाजिक और राजनैतिक जगत् से नहीं करो। बाहर के जगत् में तुम्हें अपना कार्य और कर्त्तव्य पूर्ववत् कुशलता से निभाते चलना चाहिये। बाहर के जगत् और अन्दर के जगत् को बुद्धि से मिलाने की कोशिश में तुम्हारे मन में अंतर्द्वन्द्व होगा। इससे अन्तःकरण में ग्रन्थियाँ पड़ेंगी, जो ध्यान में विक्षेप उत्पन्न करेंगी। विक्षेप दो प्रकार के होते हैं, बाह्य और आंतरिक। दोनों से ही साधक को अपने को बचाना चाहिये।

बाह्य जगत् में हमें पूरे कर्म-कौशल के साथ ही अपने कर्म को करना चाहिये। यदि पूरी कुशलता के साथ काम करने की इच्छा और आदत, और साथ-साथ अजपा का अभ्यास भी जारी रहेगा, तो उन्हीं कर्मों के माध्यम से साधना से प्राप्त दिव्यत्व को बाहर निकालने का मौका मिल सकेगा। साधक को अपनी साधना के विषय में किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं करना चाहिये। केवल गुरु और साधना पर श्रद्धा रखकर उसे करते जाना भर अपना काम समझना चाहिये। बाह्य जगत् में साधक यदि अपने सभी दायित्वों को यथाशक्ति निभाता जावेगा तो मन में कभी अंतर्द्वन्द्व नहीं होंगे। अंतर्द्वन्द्व साधना का सबसे बड़ा शत्रु है। जो साधक इस प्रकार आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं उनके लिये सभी आवश्यक सुयोग, सही समय पर भगवान स्वयं जुटाते जाते हैं। साधक को अपनी सभी इच्छाओं ओर चिन्ताओं का बोझ भगवान पर छोड़कर कर्म और साधना में जुट जाना चाहिये।

इन दोनों कार्यों को करने से मानसिक सन्ताप या अन्तर्द्वन्द्व होता ही नहीं, जो प्राय: साधना के मार्ग पर चलने वालों को हुआ करता है। इस तरह आपका अन्दर और बाहर का वातावरण, दोनों शुद्ध रह सकेगा और साधना में आशातीत प्रगति भी हो सकेगी। अन्तर्द्वन्द्व, चिन्ता, अनावश्यक सोचने की आदत, ये सब मन के मैल हैं, जिन्हें कर्मों के द्वारा शुद्ध करने की बात शास्त्रों में कही है।

मैंने देखा है कि बुद्धि से तो मनुष्य सब कुछ समझ लेता है, और उन्हें ठीक भी मान लेता है, किन्तु फिर भी कर्म और व्यवहार में इन विचारों को नहीं जी पाता। इसका कारण है संकल्प-शक्ति की कमी, दृढ़ निश्चय का अभाव।

किन्तु, फिर यदि संकल्प-शक्ति ही को बढ़ाने की साधना की जाय तो वह भी ठीक नहीं। साधना में सब कुछ स्वयं प्राप्त हो जाता है। सबसे सरल, सीधा और संक्षिप्त रास्ता है गुरु में श्रद्धा। गुरु में श्रद्धा और विश्वास रखने भर से अन्य सभी अनिवार्य योग्यताएँ (necessary qualifications) अपने आप चली आती हैं। गुरु एक अनुभवी सहयात्री होता है। उसे मार्ग का पूरा पता रहता है। जो काम मनुष्य स्वयं नहीं कर पाता, वह केवल-मात्र गुरु के आदेश से करने में समर्थ होता है, क्योंकि गुरु में उसकी श्रद्धा और भक्ति होती है।

हर एक काम के लिए एकाग्र-भक्ति (one pointed devotion) होना आवश्यक है। यही है साधना और सिद्धि का रहस्य।

अजपा की साधना के तीसरे अभ्यास के साथ-साथ, साधना में सहायक कुछ जरूरी बातें भी मैंने यहाँ बतलाई हैं। अब अभ्यास शुरू करो और उस अन्धकार-गृह (dark-room) में पहुँचकर अपने इष्ट की फोटो डेव्हलप करो। वहाँ पहुँचने पर वहाँ की बातें स्वयमेव तुम्हें मालूम पड़ेंगी।

अजपा-जप एक सीधा, निष्कंटक रास्ता मैंने आपको वहाँ पहुँचने का बताया।



चौथा भाग

उपनिषद् कहते हैं कि जिस प्रकार तिल में तेल, दही में घी, सूखी हुई नदी के भीतरी स्त्रोतों में अग्नि छिपी रहती है, ठीक उसी तरह परमात्मा भी हमारे शरीर की गुफा में छिपे हुये हैं। जिस प्रकार दो अरणियों के घर्षण से अग्नि प्रज्वलित की जा सकती है, मथानी द्वारा मन्थन कर घी निकाला जा सकता है, उसी प्रकार ध्यान-योग-मन्थन के द्वारा शरीर में छिपे परमेश्वर को भी प्रकट किया जा सकता है। उपनिषद् कहते हैं कि अपने शरीर को नीचे की अरणि और ॐकार को ऊपर की अरणि बनाकर मन्थन करो। श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा है—

स्वदेहमरणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम्।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद् देवं पश्येन्निगूढवत्॥

अब यह मन्थन-क्रिया क्या है और किस प्रकार की जा सकती है? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि अजपा-जप ही वह अभ्यास है, जिससे स्वदेह का मन्थन कर, आत्मा को प्रकाशित किया जा सकता है।

अजपा की चौथी साधना

अजपा का यह चौथा अभ्यास इसके पूर्व के तीन अभ्यासों को कर लेने के बाद करो। आसन में स्थिर होकर बैठने के बाद आप कुछ देर अपनी अन्दर जाती हुई और बाहर आती हुई श्वास का निरीक्षण करो। खूब गहरी किन्तु स्वाभाविक गति से धीमी श्वास लो। श्वास लेते समय आवाज नहीं होनी चाहिये।

'सो' के साथ श्वास अन्दर लो और 'हं' के साथ बाहर निकालो। पुन: 'सो' से अन्दर और 'हं' से बाहर। इस तरह एक ताल में श्वास और प्रश्वास मंत्र के साथ-साथ लगातार चलता जावे। कहीं भी यह क्रम टूटता हुआ-सा न मालूम हो। चेतना को भी अब भृकुटि में स्थिर रखने के बदले 'सो' और 'हं' के साथ पूरा-पूरा रखो। पूरी चैतन्यता के साथ और पूरी 'अहं अस्मि' की भावना के साथ अजपा करो। यह याद रखो कि आत्मा का स्वरूप शुद्ध चेतना है।

ईश्वर सत्, चित् और आनन्द स्वरूप है। आपको किसी साधना व अभ्यास से उस शुद्ध या पवित्र चेतना को प्राप्त करना है। ऐसी चेतना, जिसके ऊपर प्रकृति का आवरण न हो, वही पुरुष है, जीवात्मा है।

अस्तु, एक क्षण के लिये भी प्राण, श्वास और मंत्र से चेतना अलग नहीं होनी चाहिये। जब चेतना को आप 'सो हं' के साथ रखोगे, स्वभावत: शरीर की चेतना और इन्द्रिय-चेतना समाप्त हो जावेगी। यदि शरीर की चेतना मालूम पड़े तो समझो कि साधना में कहीं पर कमी है। चित्त की एकाग्रता पूरी-पूरी नहीं है, मन साधना के लिये तैयार नहीं है। कहीं पर कोई इच्छा, कोई चिन्ता, कोई ऐसा भाव है, जिससे आपका मन पूरी तरह से साधना में लगने को तैयार नहीं है। विवेक से अपने मन को साधना की ओर प्रवृत्त करने का अभ्यास साधना की प्रारम्भिक अवस्था में करना चाहिये। साधना को जीवन का प्रमुख लक्ष्य एवं अन्य कार्यों को गौण एवं सहायक समझकर आगे बढ़ना साधक का कर्त्तव्य है।

'सो हं' का अजपा-जप इस अभ्यास में विशेष प्रकार से किया जावेगा। जिस प्रकार एक वृत्त में आरम्भ और अन्त का कोई स्थान नहीं होता, उसी प्रकार अजपा की साधना भी इस प्रकार की बनानी पड़ेगी कि आपको यह पता न चले कि 'सो हं' का जप हो रहा है या 'हं सो' का। श्वास अन्दर जाते समय तो ऐसा लगे कि 'सो हं' का जप किया जा रहा है, पर बाहर निकलने के समय लगे कि 'हं सो' का जप हो रहा है। जिस प्रकार जब दो वृत्त एक-दूसरे की सीमा का अतिक्रमण करते हुये स्थित रहते हैं, तो एक वृत्त की आंशिक सीमा, दूसरे वृत्त की भी आंशिक सीमा कही जा सकती है और यह निश्चित करना भी कठिन होगा कि यह भाग पहले वृत्त का है या दूसरे का, ठीक उसी प्रकार 'सो हं' का जप भी यूँ होगा कि एक-एक अक्षर की एक ही बार भावना करते हुये भी आप ऐसा अनुभव करो कि जैसे 'सो हं' 'हं सो' 'सो हं' 'हं सो' का अन्दर में जप हो रहा है। श्वास अन्दर लेने के समय मालूम हो कि आप 'सो हं' का जप करने जा रहे हैं, पर नि:श्वास के समय लगे कि आप 'हं सो' का जप कर रहे हैं। कहने का तात्पर्य यह कि 'सो' और 'हं' दोनों प्रधान रहना चाहिये। यह समझो कि श्वास और नि:श्वास दोनों मिलकर एक ही वृत्त की परिधि का निर्माण कर रहे हैं। 'सो' और 'हं' दोनों में ऐसी एकरूपता हो जाय कि किसी के आरम्भ और अन्त का पता ही नहीं चले। लगातार श्वास-प्रश्वास और 'सो हं' का एकतार जप चेतना के साथ घूमता हुआ चले। साईकिल के पहिये की तरह श्वास-नि:श्वास का क्रम चलता रहे। कुछ देर की साधना के बाद आपको यह विस्मृत हो जाय कि

श्वास अन्दर को जा रही है या बाहर को आ रही है। श्वास के अन्दर जाने का विराम-स्थान और बाहर आने का आरम्भ-स्थान—इन दोनों का भेद मिट जावे। इसी प्रकार नि:श्वास का अन्त और श्वास का प्रारम्भ—इसका भी भेद न रहे।

प्राणान्प्राणेषु जुह्वति

यह है प्राण में प्राण का हवन। अजपा का चतुर्थ अभ्यास गीता में 'प्राणान्प्राणेषु जुह्वति' साधना का जो संकेत-मात्र दिया गया है, वह यही साधना है। यही मंथन-क्रिया है, जिससे आत्म-दर्शन प्राप्त किया जा सकता है। ॐ यदि ईश्वर का वाचक है, तो 'सो हं' हंस का। हंस हमारी जीवात्मा है। जीवात्मा और परमात्मा में भेद नहीं। एक को जानने से दूसरे का भी ज्ञान हो जाता है।

इस साधना के अभ्यासी को अपने खान-पान में नियमित रहना ही पड़ेगा। शुद्ध और सात्त्विक आहार लेकर ही साधना के उच्च अभ्यासों को करना चाहिये। जैसा मनुष्य का भोजन होता है, वैसे ही उसका मन भी बनता है। फल और दूध लेने वालों को साधना में बड़ी सहायता मिलती है। साधना में शरीर का हल्कापन और मन का शांत तथा शुद्ध होना बहुत जरूरी है। इसलिये योगाभ्यास में आहार पर भी ध्यान रखा जाता है। गीता में इस साधना के विषय में स्पष्ट लिखा है—*अपरे नियताहारा: प्राणान्प्राणेषु जुह्वति*। इसलिये साधक को अपना आहार निश्चित कर साधना-काल में वही भोजन ग्रहण करना चाहिये। समय भी निश्चित हो और क्या-क्या खाना है, यह भी। योगी को मिताहार लेना चाहिये, न कम भोजन न अधिक। नियमित भोजन और संयम का जीवन आगे के अभ्यास के लिये बहुत आवश्यक है। प्राण का मन से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। शरीर के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयवों पर भी इस साधना का गहरा प्रभाव पड़ता है। यदि साधक सावधान, दृढ़ संकल्पी और संयमी न रहा तो साधना केवल निष्फल ही नहीं होती बल्कि साधक के मन और मस्तिष्क पर उल्टा प्रभाव भी डालती है। इसलिये अष्टांग-योग में यम और नियम सम्बन्धी अनेक साधन करके साधक को अपनी तैयारी पहले से कर लेनी चाहिये।

शुद्ध और सात्त्विक आहार साधना काल में उत्तम ही नहीं अनिवार्य भी है। इसलिये प्रारम्भ में ही व्रत, उपवास इत्यादि से जिह्वा पर अच्छी तरह अधिकार पाना चाहिये, और जिसे जिह्वा पर अधिकार है, वही ब्रह्मचर्य का भी पालन कर सकता है। साधना में जानना उतना जरूरी नहीं जितना कि अभ्यास। कितना भी पढ़ कर जान लो, पर जब तक अभ्यास नहीं करोगे फायदा नहीं होगा।

पाँचवां भाग

योग-साधना प्रारम्भ करने के पूर्व योग के विद्यार्थी को 'दृढ़-निश्चय' नामक संबल अपनी यात्रा के लिये अवश्य ले लेना चाहिये। इतना तो जरूर मानना पड़ेगा कि सिद्धियों का मार्ग बीहड़, कठिन और अत्यन्त परिश्रम साध्य है। आत्म-साक्षात्कार एक ऐसा लक्ष्य है, जो सबके लिये अनिवार्य और अन्तिम तो है, किन्तु आज रेलगाड़ी में चढ़े और कल पहुँच गये ऐसा नहीं है। मनुष्य बड़ा विचित्र जीव है। यदि उसमें अकुलाहट है, धैर्य और समर्पण-भाव का अभाव है तो अनेक वर्ष साधना करके भी वह जहाँ-का-तहाँ ही रह सकता है। किन्तु यदि वह दृढ़-निश्चयी, शांत, युक्तिपूर्ण और अध्यवसायी है तो वह अनेक वर्षों तक प्रयोग-पर-प्रयोग करते जाकर अन्त में विजय ग्रहण करके ही रहता है।

स्थूल और सूक्ष्म

जिस प्रकार विज्ञान में प्रयोग का विषय और आधार निर्जीव व स्थूल वस्तुयें हैं, उसी प्रकार अध्यात्म-मार्ग में मनुष्य स्थूल से सूक्ष्म की ओर बढ़ता है। स्थूल और सूक्ष्म, दोनों का अलग-अलग अस्तित्व है। दोनों एक-दूसरे में व्याप्त, एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हुये भी एक-दूसरे से सर्वथा अलग हैं। स्थूल में रहते हुये सूक्ष्म का अनुभव नहीं और सूक्ष्म में रहते हुये स्थूल का अनुभव नहीं। निद्रा से आप इसका अन्दाज लगा सकते हो। जब हम सोये रहते हैं, तब हमें बाहर का ज्ञान नहीं रहता, और जब जगे रहते हैं तो अन्दर स्वप्न लोक का ज्ञान नहीं रहता। स्वप्न की चेतना और जाग्रत की चेतना दोनों एक होते हुये भी हमें दो मालूम पड़ती हैं, क्योंकि एक समय में एक साथ हमें दोनों का भान और ज्ञान नहीं रहता। यह ऐसा ही है जैसे नदी के दो तट। नदी का निर्माण करते हुये दोनों किनारे नदी के ही अभिन्न किनारे हैं, किन्तु एक किनारे पर खड़ा हुआ आदमी दूसरे किनारे पर अपने आप नहीं पहुँच सकेगा। उस पार जाने के लिये उसे पुरुषार्थ, प्रयास एवं माध्यम का सहारा लेना पड़ेगा। इसी

प्रकार स्थूल और सूक्ष्म अलिप्त और जुड़ा हुआ (interpenetrating and interlinked) होने पर भी, कोई सहज ही एक-दूसरे की सीमा को, सज्ञान रहकर नहीं लांघ सकता। हर मनुष्य अपनी आत्मशक्ति की चेतना के किसी भी जगत् में रहकर उसका अधिकतम उपयोग कर सके, यह ज्ञान और सामर्थ्य सब में नहीं है। साधना का उद्देश्य है, अपनी आत्मशक्ति को सदैव सचेत रखना (to be fully aware of one's own self) और अपनी आत्मशक्ति का ज्ञान और भान हर समय बनाये रखने की कला को प्राप्त करना। हम हैं (अहमस्मि) और हमारा वास्तविक स्वरूप ज्ञानमय, शक्तिमय और ओजमय है। इस सत्य का यथार्थ ज्ञान और हर समय अनुभव—यही है साधना की सिद्धि का लक्ष्य, पर हमारी गलती कहाँ पर है?

मनुष्य की रचना

गलती हमारी यही है कि मनुष्य को बनाने वाले तत्त्वों—मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार के स्वरूप और हमारे शरीर एवं व्यक्तित्व की रचना में उनका स्थान, महत्त्व, कार्य और शक्ति क्या है, इसे हम नहीं समझते। प्राय: हम अपने आपको मन ही समझ लेते हैं। कुछ और उन्नत जीव अपने को बुद्धि समझ लेते हैं, और सारे दु:ख तथा अनर्थ का सूत्रपात यहीं से होता है। यदि मन और बुद्धि को आत्मा के दो नौकर या आज्ञा पालन करने वाले दो सैनिक समझ लिया जाय तो बहुत-सा अज्ञान और अन्धकार यहीं दूर हो जाता है। किन्तु समझा कैसे जाय? समाज में रहकर हमारे मन और बुद्धि पर प्रिय-अप्रिय की भावनाओं और मान्यताओं, सिद्धान्तों और विचारों, मानसिक संस्कारों और आदतों की इतनी तहें डाल दी जाती हैं कि उनसे अपने व्यक्तित्व को अलग करना मुश्किल हो जाता है।

इन्हीं कारणों से आत्मा की वास्तविक इच्छा और आदेश, मन और बुद्धि के द्वारा सही-सही प्रतिरूपित (translated) नहीं हो पाते। किसी बात को समझने का मतलब बौद्धिक मान्यता देना नहीं होता, बल्कि उस सत्य के यथार्थ अनुभव और तदनुसार आचरण से होता है। प्रारम्भ में मनुष्य किसी तथ्य को केवल बुद्धि से स्वीकार करता है, पर यदि उसे वैसा ही मानकर उसी तरह आचरण किया जावे तो वह अनुभूत सत्य (realisation) बन जाता है और तब मानने का प्रश्न नहीं रहता। स्वानुभूत सत्य प्रामाणिक सत्य होता है।

मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार, ये चार शरीर और प्राण की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म हैं पर आत्मा के लिये सब जड़ हैं। शरीर से प्राण सूक्ष्म, प्राण से मन सूक्ष्म, मन से बुद्धि सूक्ष्म, बुद्धि से चित्त सूक्ष्म, और चित्त से अहं सूक्ष्म है। जिस प्रकार नाव नदी के वक्ष स्थल पर तैरती हुई एक किनारे से दूसरे किनारे चली जाती है, उसी प्रकार साधना की नाव लेकर साधक भी स्थूल से सूक्ष्म की ओर धीरे-धीरे बढ़ता हुआ आत्मा तक पहुँच सकता है। यह क्रिया एक-दो दिनों या महीनों की नहीं है, वरन् आत्म-शोध में तल्लीन व्यक्ति इसे कई वर्षों के अथक और सत्कार-सेवित अभ्यास तथा वैराग्य से प्राप्त करता है। यदि वह सौभाग्यशाली है तो उसे किसी ऐसे सन्त या गुरु का मार्गदर्शन प्राप्त हो जावेगा, जिससे यात्रा में उसे साहस और धैर्य बनाये रखने की प्रेरणा मिल सकेगी। गुरु आत्म-अनुसंधान के बीहड़, संकट-ग्रस्त और एकाकी जीवन में पथ-प्रदर्शक, सहयात्री और पंडा है जो साधकों को निरन्तर लक्ष्य की याद दिलाते हुये उनमें साहस और तितिक्षा भरता रहता है।

अन्दर की खोज

आत्मा को जानने के पहले मनुष्य को मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार की तहों को भेदना पड़ता है। जब मनुष्य अन्दर की खोज प्रारम्भ करेगा तो उसे इन सूक्ष्म लोकों से होकर ही जाना पड़ेगा और हर एक लोक में अपनी चेतना को बनाये रखने का प्रयास करना पड़ेगा। यदि ऐसा संभव हो तो अन्दर के लोक की स्मृति मनुष्य के बाहर भी रह सकेगी। प्रायः प्रतिदिन ही हम निद्रावस्था में अपने 'कारण शरीर' में जाते और लौटते हैं, किन्तु यह निद्रा है, जिसमें आत्मज्ञान नहीं रहता और सज्ञान चेतना भी नहीं रहती।

यदि आपको सूक्ष्म शरीरों को भेदना है, तो साधना करो। बिना साधना के यह सम्भव नहीं। पुस्तक पढ़ने से या तर्क करने से कोई न जान सका और न कोई जानेगा। प्रभावित करने के लिये कोशिश करना समय बर्बाद करना है। जो गरजता है बरसता नहीं। मनुष्यों की बहुत-सारी मानसिक शक्ति इसी प्रकार नष्ट हो जाती है। जो इस फेर में रहते हैं, वे योग्य साधक नहीं बन पाते। साधक वही बनते हैं, जो सुनते ही चल देते हैं। साधना के रास्ते में हृदय की मर्मग्राही, एकांतिक प्रार्थना जितनी साधक की मदद करती है, उतना बाहरी बुद्धि का आलम्बन नहीं। बुद्धि में यदि तर्क की क्षमता है तो वितर्क और कुतर्क की भी, जो बाधक है। यदि बुद्धि रास्ते में अड़ंगा न डाले तो साधक बहुत शीघ्र

आगे बढ़ सकता है। साधक को अपने गुरु की खोज, और गुरु से प्रार्थना बाहर नहीं अंतर्जगत् में करनी चाहिये।

अजपा की डोरी

सूक्ष्म को पकड़ने के लिये आप अजपा का अभ्यास करो। अजपा एक ऐसी डोरी है, जिससे स्थूल और सूक्ष्म को जोड़ा जा सकता है। अजपा करते-करते मनुष्य की चेतना धीरे-धीरे सूक्ष्म होती जाती है, और एक ऐसी भी अवस्था आती है जब मनुष्य सूक्ष्म लोक में सरक जाता है। सन्त कहते और गाते हैं कि प्राणों की डोरी में दो पक्षी बंधे हुए हैं। एक का नाम सुरति है और दूसरे का निरति। ये दोनों पक्षी डोरी के सहारे ऊपर-नीचे करते रहते हैं। ऊपर-नीचे करते-करते थककर ये हृदय-कमल में एक हो जाते हैं। यही है चौथा-पद, जिसके विषय में एक सन्त ने लिखा है कि चौथा-पद पाया संतो, चौथा पद पाया। सुरति और निरति मानो पक्षियों का एक जोड़ा है। सुरति शब्द का अर्थ है चेतना याने awareness और निरति का अर्थ है विषयों से उपरति याने withdrawal of sense awareness. इन्द्रियों से अपनी चेतना को धीरे-धीरे खींचते जाना और उसे सुरति में या स्व-चेतना (self awareness) में परिणत कर देना, यही है आगे की साधना। यह साधना है अजपा-जप का चौथा कोर्स, स्टेज अथवा अभ्यास।

पिछली साधना

पहली साधना में साधारण भावना के साथ मंत्र का मानसिक जप, दूसरी में अपान में प्राण को मिलाना, तीसरी में प्राण में अपान का हवन और चौथी में प्राण में प्राण का हवन। अब यहाँ पाँचवां अभ्यास बतलाया जावेगा जिसे बतला देना आसान है, पर साधक का तैयार होना कठिन।

साधना दो तरह की होती है। एक बहिर्कल्पित होती है। इसमें साधक केवल अनुमान, भावना और बुद्धि के बल पर साधना करता है, पर दूसरी साधना यथार्थ साधना होती है, जिसमें कल्पना नहीं होती, अनुभव ही यथार्थ रहता है। सचमुच ही यदि साधना में यथार्थ अनुभव होता गया तो साधक को अनेक विचित्र-विचित्र अनुभव होंगे।

अजपा के इस पाँचवें अभ्यास में बैठने आदि के नियम पूर्ववत् रहेंगे। साधना प्रारम्भ करते समय आपको अपूर्व प्रफुल्लता का आभास होगा।

साधना में ऐसी ही रुचि लगेगी जैसे भोजन के टेबुल पर जाने की रुचि लोगों को होती है। आँखें बन्द करते ही ऐसा लगेगा जैसे शरीर हल्का होता जा रहा है, बादलों की तरह वायु में संचरण करता जा रहा है। आप अन्दर में धीरे-धीरे उतर रहे हो। मन और चेतना शरीर के बन्धन से मुक्त होते जा रहे हैं। यदि कभी आपको बेहोश होने का अनुभव हुआ हो तो कुछ वैसा ही लगेगा। साधना से इस अभ्यास को पा लेना कुछ मुश्किल है पर असम्भव नहीं। बैठकर आँखें बन्द करते ही यदि आप अन्दर जाने के अभ्यस्त हो जाओ तो इसमें आपको अपूर्व आनन्द का अनुभव होगा। जैसे विमान में बैठते ही वह धरती से ऊपर उठने लगता है, वैसे ही आँख बंद करते ही शारीरिक चेतना से मन धीरे-धीरे ऊपर उठने लगता है। बुद्धि का संकल्प-विकल्प इस समय नहीं चलता। इतना भर ज्ञान रहता है कि मैं साधना के लिये बैठा था या बैठा हूँ। ठीक इसी अवस्था में जब न तो पूर्णत: बाहर की ही चेतना याने इन्द्रिय चेतना रहे, और न अन्दर की पूरी जागृति हो, आप अजपा का यह अभ्यास शुरू करो।

पाँचवीं साधना

इस पाँचवें अभ्यास में सबसे पहले अपनी चेतना को पकड़ना होगा, फिर उसके बाद 'नचाना' है, याने उस चेतना को प्राणों की डोरी के सहारे ऊपर-नीचे ले जाना है। अस्तु, पहले चेतना को पकड़ो फिर उसे ऊपर ले जाओ, नीचे ले आओ। चेतना को सुषुम्ना की नाली में दौड़ाओ। यह क्रिया लगातार घण्टों तक एक आसन में बैठकर करते जाओ।

हम सबको पता है कि हमारे शरीर के शक्ति के केन्द्र व स्रोत सुषुम्ना नली के अन्दर हैं। जब हम अपनी आंतरिक चेतना को सुषुम्ना की नली में तरंगित और गतिवान करते हैं, तो उसमें गर्मी पैदा होती है। चेतना को श्वास के साथ मूलाधार से सहस्रार और सहस्रार से मूलाधार तक चालित-प्रचालित (rotate) करना ही इस साधना में प्रधान क्रिया है। इस क्रिया में तब तक सफलता प्राप्त नहीं होती जब तक अपने मन पर पूर्ण नियंत्रण प्राप्त नहीं होता, और अपने विचार-प्रवाह को अपनी इच्छानुसार जब चाहे तब रोक देने में आप समर्थ नहीं होते। चंचलता और विचारों का आना-जाना, ये दो मन के स्वाभाविक कर्म हैं, परन्तु मन पर साधक का इतना नियंत्रण हो जाना चाहिये कि वह जिस समय जो काम मन से करवाना चाहे, उसी काम को उस समय उसका मन करने

लग जाय और दूसरी बातों में न भटके। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार—ये सब क्रमवार मन को साधने की ही क्रियायें हैं।

चेतना-शक्ति भी आत्म-शक्ति ही है, अस्मिता है, जीवनमय विद्युत्-तार (live-wire) है, जिससे स्पर्श करने पर हमारे शरीर के अन्दर स्थित सुप्त-केन्द्र जाग्रत और सक्रिय हो उठते हैं। किन्तु यह चेतना कल्पना की चेतना न हो। यथार्थ की चेतना पकड़ में आनी चाहिये। यही सुरति या सुरत है। यह है चेतना की पकड़। यदि यह चेतना पकड़ में आ जावे तो साधना का मार्ग फिर सरल हो जाता है। यह चेतना सब में है। शरीर, प्राण, मन और बुद्धि—चारों में यह व्याप्त है, किन्तु साधना के अभ्यासों के द्वारा इसे सबसे अलग पहचानने और सब जगह से वापस जाकर किसी एक केन्द्र में स्थापित करने की जरूरत होती है। यह चेतना ध्यान में नाम या रूप का आलम्बन लेकर एक जगह पर केन्द्रित होती है।

अजपा-जप के इस अभ्यास में आप प्राण, मन और चेतना को एक-एक कर प्राणों की डोरी के सहारे अपने मेरुदण्ड में ऊपर-नीचे ले जाओ। मंत्र आपका वही रहेगा—सोऽहं या ॐ। बाकी नियम या क्रियाएँ, सब वही रहेंगी जो पूर्व के अभ्यासों में बतलाई जा चुकी हैं।

अब साधना इस प्रकार करो। आसन में स्थिर बैठकर अन्दर जाओ। अन्दर जाकर श्वास और सोऽहं मंत्र के साथ अपनी चेतना को ऊपर और नीचे चढ़ाते-उतारते रहो। जब आप श्वास अन्दर लो तो उस समय यह ख्याल करो कि सहस्रार से श्वास लेते हुए मूलाधार में जा रहे हो। रेचक के समय यह ख्याल करो कि श्वास छोड़ते हुये मूलाधार से अपान को बाहर निकाल रहे हो। पुनः प्राण सहस्रार से सुषुम्ना के अन्दर प्रवेश कर रहे हैं और मूलाधार में कुम्भक-क्रिया हो रही है। पुनः अपान वायु सुषुम्ना से होती हुई सहस्रार से बाहर निकल रही है।

कुछ योगी ऐसा भी कहते हैं कि मूलाधार से श्वास खींचकर सहस्रार में ले जाते हैं और पुनः मूलाधार से ही बाहर निकालते हैं। छठी साधना में ऐसा ही करना होता है। गुरु जैसा बतावे साधक को वैसा करना चाहिये। इस साधना की पूर्ण दीक्षा सबको नहीं दी जाती। इनमें कुछ चीजें ऐसी हैं, जिन्हें व्यक्तिगत दीक्षा में ही सिखाया जाता है।

शिष्य या दीक्षित का मानसिक व्यक्तित्व सुलझा हुआ रहना आवश्यक है। बीज जब पत्थर, रेगिस्थान या समुद्र में पड़ता है तो विनष्ट हो जाता है, पर

वही बीज उर्वरा भूमि में पड़कर पल्लवित, पुष्पित और फलित होता है। बस इतना ही संकेत साधक के लिये काफी है।

आहार में सावधानी

इस अभ्यास के करने वालों को खान-पान में सावधानी रखनी पड़ेगी। जिन्होंने अपने स्वाद पर नियंत्रण न किया हो, उनके लिये यह मुश्किल भी है और खतरनाक भी। भगवान कृष्ण के अनुसार योग के अभ्यास करने वालों को नियत आहार लेना चाहिये। सब चीज न खायी जावे। दूध का दलिया, दूध और फल या केवल उबाला हुआ ताजा भोजन लेना चाहिये। अभ्यास के दिनों में अनेक तरह के पकवान कभी नहीं लेने चाहिये। सबसे उत्तम है, दूध और फल पर रहना और दो नियमित समय पर ही आहार लेना। अनियमित खान-पान वालों पर ही साधना का विनाशकारी प्रभाव पड़ता है। कई आदमियों पर साधना का उल्टा प्रभाव (पागलपन इत्यादि) होते हुये देखा गया है। इसका कारण यही हो सकता है कि उनका खान-पान शुद्ध न रहा होगा। कई लोग सिद्धियों के लालच में पड़कर साधना के रास्ते में आते हैं, पर प्रकृति असंस्कारी व्यक्तियों को किसी-न-किसी बहाने दूर हटा देती है। उनके रास्ते में रुकावटें आती हैं, प्रतिक्रियायें होती हैं, पर मनस्वी, कार्यार्थी, शुद्ध भावी और सदाचारी साधक सारी कठिनाइयों को सीढ़ी के सोपान बनाते हुये आगे बढ़ते जाते हैं। शायद इसी कारण से हमारे यहाँ धर्म-प्रचारकों ने शारीरिक अनुशासन वाले पक्ष पर अत्यधिक जोर दिया है। शारीरिक अनुशासन द्वारा मानसिक अनुशासन प्राप्त हो, यही उनका उद्देश्य रहा होगा। व्रत, मौन, इत्यादि का तात्पर्य यही है।

साधना का सारा रहस्य हमारे प्राचीन ग्रन्थों में छिपा पड़ा है, परन्तु वे सारी चीजें स्वयं समझ में नहीं आतीं। गुरु-शिष्य परम्परा से ही वे अब तक चली आ रही थीं, किन्तु अब मनुष्य विकास की उस अवस्था तक आ पहुँचा है, जहाँ इन गुप्त चीजों को भी कुछ हद तक वह समझ सकता है और उनका अभ्यास कर सकता है।



छठवाँ भाग

अभ्यास शुरू करने के पहले निम्न चार बातों की व्यवस्था कर लो।
प्रथम–गुरु जी की आज्ञा लो।
द्वितीय–सिद्धासन या पद्मासन का दो घण्टे अभ्यास प्राप्त कर लो।
तृतीय–चित्त की डोरी पकड़ने का पर्याप्त अनुभव ले लो।
चतुर्थ–साधना का एकान्त सुविधापूर्ण स्थल चुन लो।

इस अभ्यास के पूर्व तक आपको सहस्त्रार से मूलाधार तक श्वास लेना तथा मूलाधार से सहस्त्रार तक जाते हुये श्वास छोड़ने की क्रिया बतलाई गई। इस क्रिया को कुछ लोग अंत: प्राणायाम की क्रिया के नाम से भी जानते हैं। यहाँ पर इससे उल्टी क्रिया बतलाई जावेगी।

यह चक्र-भेदन की क्रिया है, जिसमें अजपा के द्वारा सात चक्रों को भेदा जाता है। फूलों की तरह चक्रों के हृदय चेतना और मंत्र के सुई-धागे से भेदे जाते हैं। अजपा के अभ्यास में आपको श्वास मूलाधार चक्र से खींचना है। मूलाधार से धीरे-धीरे चलकर अन्य चक्रों में होते हुये सहस्त्रार में पहुँचना है। श्वास खींचते हुये पहले मूलाधार में रुको फिर आगे बढ़कर स्वाधिष्ठान में जाओ। पुन: और ऊपर उठो तथा मणिपुर चक्र में जाओ। मणिपुर से फिर अनाहत में जाओ। अनाहत से विशुद्धि चक्र में चलो। फिर आगे बढ़ो और आज्ञाचक्र में जाओ। आज्ञाचक्र से फिर और ऊपर उठकर सहस्त्रार में स्थिर हो जाओ। अब पुन: सहस्त्रार से उसी क्रम में श्वास बाहर फेंकते हुये नीचे उतरो। पहले आज्ञाचक्र में जाओ, फिर विशुद्धि, उसके बाद अनाहत, फिर क्रम से अनाहत से मणिपुर और स्वाधिष्ठान होते हुये मूलाधार में आ जाओ।

इसके बाद पुन: ऊपर कही हुई क्रियानुसार मूलाधार से ऊपर चढ़ो और क्रम से सब चक्रों में होते हुये सहस्त्रार में चले जाओ। पुन: सहस्त्रार से उसी क्रम में नीचे उतरते हुये मूलाधार में वापस आ जाओ।

इस प्रकार अपनी चेतना को श्वासों की पीठ पर चढ़ाकर सब चक्रों में घुमाओ। इस साधना को करने के पूर्व 15-15 दिनों तक प्रत्येक चक्र पर ध्यान

का अभ्यास कर लेना अच्छा होता है। एक-एक चक्र पर कम-से-कम 15 दिन नित्य ध्यान करना चाहिये। चक्र का आकार, रंग, मंत्र, बीजाक्षर, देवता और देवियाँ होती हैं। इन सबका अच्छी तरह ज्ञान होना चाहिये, जिससे चक्र स्थान में आप उनकी स्पष्ट धारणा कर सको।

मूलाधार से सहस्रार में जाने का तात्पर्य क्या है? चेतना, मंत्र और प्राण अजपा की साधना से एक हो जाते हैं। जिस प्रकार शब्दों की तरंगों को विद्युत् की करेन्ट पर चढ़ाकर एक स्थान से दूसरे स्थान पर भेजा जाता है, उसी प्रकार प्राणों के तार पर चेतना को चढ़ाकर आप प्रत्येक चक्र में होकर ऊपर जाओ। जिस प्रकार सुई और धागे से पुष्पों के हृदय भेदकर माला पिरोई जाती है, उसी प्रकार ध्यान की सुई और प्राणों पर चढ़ी हुई चेतना के धागे से सब चक्रों का भेदन करो। नीचे के अन्तिम चक्र मूलाधार से होते हुये ऊपर सहस्रार चक्र में जाओ और पुन: वहाँ से नीचे उतरते समय सब चक्रों में होते हुये मूलाधार में आओ।

मूलाधार चक्र सुषुम्ना-नाड़ी के अन्तिम छोर पर है। स्वाधिष्ठान चक्र सुषुम्ना में उपस्थ के पीछे है। मणिपुर चक्र नाभि स्थल के पीछे सुषुम्ना में स्थित है। अनाहत चक्र हृदय के पीछे सुषुम्ना नली में है। विशुद्धि चक्र कंठ-कूप के पीछे है। आज्ञा चक्र भ्रूमध्य के पीछे सुषुम्ना नली में है। सहस्रार-चक्र मस्तक के ऊपरी भाग में है।

इन सब चक्रों के हृदय को आपको अपनी चेतना से भेदना है। इसे कुछ योगी चक्र-भेदन क्रिया कहते हैं, परन्तु यह अजपा की ही विकसित, उन्नत और अन्तिम क्रिया है। माला पिरोने के लिये जैसे सुई और धागा पहले चाहिये, उसी प्रकार सुषुम्ना में स्थित चक्रों को जगाने के पहले आपको अपनी चेतना की पकड़ सीखनी होगी। बहिर्मुखी मन को अंतर्मुख करना होगा। चंचल वृत्तियों को स्थिर करना सीखना होगा। यह सब हो जाने पर ही आप आगे बढ़ सकेंगे। मन को विषयों से रोकना होगा। जिस प्रकार अत्यन्त जले बर्त्तन को माँजने के लिये काफी रगड़ना पड़ता है, उसी प्रकार मन में जमे हुये संस्कारों को दूर करने में अत्यन्त श्रम करना पड़ता है। जिस प्रकार लोहार छेनी रखकर हथौड़े की चोट करता चला जाता है। कितनी चोट में लोहा कटेगा, उसे पहले पता नहीं, पर इतना वह निश्चित जानता है कि एक ही जगह पर छेनी रखकर बराबर चोट करने से वह बराबर कट जावेगा। ठीक इसी प्रकार अजपा को छेनी बनाकर आप भी निरन्तर चोट (अभ्यास) करते चले जाओ।

अजपा का अभ्यास पहले तो आपके संस्कारों को शुद्ध करेगा। पुराने संस्कार धीरे-धीरे हटते जावेंगे और धीरे-धीरे आपका मन और चित्त सत्त्व से आपूरित होता जावेगा।

अजपा के अभ्यास से आपका बहिर्मुख चंचल मन अपनी चंचलता को छोड़कर स्थिर और एकाग्र होना सीखेगा। अजपा के अभ्यास से आपकी इन्द्रिय-शक्ति स्थूल धारणा से सूक्ष्म धारणा की ओर अग्रसर होगी। अजपा की साधना से धीरे-धीरे आपकी सूक्ष्म इन्द्रियों की शक्ति जागृत होगी और आप बिना देखे भी देख सकोगे, बिना सुने भी सुन सकोगे, बिना छुये भी छू सकोगे और बिना चले भी जा सकोगे। किन्तु कैसे? अभ्यास और वैराग्य से। अभ्यास और वैराग्य ही वे दो तत्त्व हैं, जिनसे आप मनुष्य शरीर की सीमा से ऊपर उठ सकते हो। अभ्यास है शारीरिक प्रयास और वैराग्य मानसिक प्रयास।

शरीर की रचना बड़ी विचित्र है। इसके सभी तत्त्वों का पता शरीर-शास्त्र पूरा-पूरा नहीं लगा पाया है। बहुत-सी घटनाएँ ऐसी घटती हैं, जिनका उत्तर अभी मनुष्य या भौतिक विज्ञान के पास नहीं है, किन्तु धीरे-धीरे मनुष्य और उसका विज्ञान इसी दिशा में आगे बढ़ रहा है। अजपा की क्रिया साइको-फिजियोलाजीकल कही जायेगी। इसमें स्थूल की पकड़ के साथ-साथ सूक्ष्म की पकड़ होती है। इस क्रिया से कुछ लोगों को थोड़े दिनों के अभ्यास से ही अद्‌भुत प्रतिक्रियायें होती हैं। यदि किसी को अजपा से कुछ फायदा न भी मालूम पड़े तो भी उसे इस साधना को नहीं छोड़ना चाहिये। फायदा नहीं मालूम पड़ने का कारण यह होता है कि जिसका जीवन और मन बहुत ज्यादा बहिर्मुखी है, उसे अंदर जाने में कुछ देर तो लगेगी ही। इसलिए धैर्य के साथ मनुष्य को अपनी साधना में लगातार परिश्रम करते जाना चाहिये।

सफलता किस क्षण प्राप्त होगी, यह कोई नहीं जानता। सफलता पाने के कुछ क्षण पूर्व तक भी साधक को पता नहीं रहता कि आगे उसे क्या मिलने वाला है। सिद्धि याने सफलता, मोड़ चलते-चलते अचानक ही जीवन में आती है। इसलिये धैर्यपूर्वक आगे बढ़ते जाना चाहिये। एक सुन्दर कथा का उदाहरण इस सत्य को स्पष्ट कर देगा।

दो साधु एक बार भगवान के दर्शन के लिये अनन्य तपस्या कर रहे थे। एक साधु इमली के पेड़ के नीचे तपस्या कर रहा था, दूसरा एक केले के पेड़ के नीचे। एक दिन घूमते-फिरते नारद जी वहाँ जा पहुँचे। दोनों साधुओं ने

नारद जी को प्रणाम किया और पूछा, 'भगवान, आप कहाँ जा रहे हैं?' नारद जी ने उत्तर दिया, 'मैं भगवान विष्णु के दर्शन को जा रहा हूँ।' साधुओं ने नारद जी से अनुरोध किया–'भगवान आप जा रहे हैं तो तनिक हम लोगों का भी एक काम करते आवेंगे। भगवान विष्णु से जरा पूछते आवेंगे कि हम लोग उनके दर्शन की अभिलाषा से तपस्या कर रहे हैं, तो हमें उनके दर्शन कब प्राप्त होंगे।' नारद जी ने कहा, अच्छा। दोनों साधु फिर तपस्या करने लगे। बहुत समय बाद फिर नारद जी उसी रास्ते से गुजरे। साधुओं ने नारदजी से पूछा, 'भगवान विष्णु ने हम लोगों के लिये क्या संदेश दिया है?' नारद जी ने उत्तर दिया, 'भगवान ने कहा कि जो साधु केले के पेड़ के नीचे तपस्या कर रहा है, उससे कहना है कि उस केले के वृक्ष में जितने पत्ते हैं, उतने ही जन्म के बाद उसे भगवान के दर्शन होंगे।' इतना सुनते ही केले-वाला साधु घबरा गया, 'ओह, अभी इतना समय और लगेगा!' वह साधना छोड़कर भाग गया।

इमली के पेड़ वाले साधु ने पूछा, 'भगवान मेरे लिये भगवान ने क्या कहा?' नारद जी बोले, 'इस इमली के पेड़ में जितने पत्ते हैं, उतने जन्मों के बाद तुम्हें भगवान के दर्शन होंगे।' साधु ने नारद जी को धन्यवाद देते हुये प्रणाम किया और अपनी तपस्या में दुगनी तन्मयता से लीन हो गया।

यही हालत होती है साधकों की। वह साधना तो अनेक वर्ष करता है किन्तु सफलता तो क्षणों में ही आती है। अस्तु, अजपा की साधना आप अन्य साधनाओं के साथ करते जावें। योगासन, प्राणायाम, त्राटक एवं अन्य क्रियायें सहायक क्रियायें हैं। उनसे आपको साधना में मदद मिलेगी। नाड़ी-विकार तथा अन्य शारीरिक-विकारों को दूर करने में योगासन और प्राणायाम सहायक और निश्चित उपाय हैं। साधक का शारीरिक स्वास्थ्य बहुत जरूरी उपादान है, जो षट्कर्म, योगासन और प्राणायाम से ठीक दशा में रह सकता है।

अस्तु, अन्य नियमों के पालन के साथ-साथ साधक अजपा का अभ्यास जरूर करें। आपकी साधना सफल हो।



सातवाँ भाग

अजपा में चेतना का स्वरूप

ऐसा जाप जपो मन लाई। सोहं सोहं सुरता गाई॥
आसन दृढ़ करि करो ध्यान। अहर्निशि सुमरौ ब्रह्म-गियान॥
नासा अग्र निज ज्यों बाई। इड़ा पिंगला मधि समाई॥
छ सौ सहस इकीसौ जाप। अनहद उपजै आपहि आप॥
बंकि नाल में उगै सूर। रोम रोम धुनि बाजै तूर॥
उलटै कमल सहस दल बास। भ्रमर गुफा में ज्योति प्रकाश॥

मनुष्य के तीन चेतन शरीर हैं—स्थूल, सूक्ष्म और कारण। साईकोलाजी में इसे कहते हैं—कान्श्यस, सब-कौन्श्यस और अनकान्श्यस। इन तीनों के ऊपर एक और है, सुपर-कान्श्यस। हिन्दी में इनके नाम हैं—चेतन, अर्द्धचेतन और अचेतन मन। कोई भी मनुष्य अपने अनकौन्श्यस को नहीं जानता। हम लोग यह नहीं जानते कि हमारे अन्दर क्या-क्या है? अनकौन्श्यस में इतनी चीजें भरी हुई हैं कि उनकी वजह से मनुष्य सोचता और चाहता कुछ है पर करता कुछ और है। शान्ति पाने के लिये, समाधि पाने के लिये और शक्तिवान, समर्थ, सर्वज्ञ बनने के लिये रास्ता है अपने 'अनकान्श्यस' को बाहर निकालो, उसे एकदम स्वच्छ करो।

अनकौन्श्यस में क्या-क्या है, यह ऊपर से बिल्कुल पता नहीं चलता। जिस तरह सूखी धरती को देखने से केवल मिट्टी-ही-मिट्टी दिखती है, और कुछ नहीं, किन्तु जैसे ही उस पर वर्षा का पानी पड़ता है, उसमें से घास-जंगल निकल आता है। उसी प्रकार अनकान्शयस में जो मल जमा है, वह कोई आघात पड़ने पर ही उभरता है। गर्मी के महीने में तो धरती सूखी हुई रहती है। जैसे ही पानी पड़ा उससे घास निकल आती है। वर्षा ऋतु में पेड़-पत्ते भी उसमें से निकल पड़ते हैं। फिर उसी धरती में धान का बीज उग आता है, और गेहूँ की बालियाँ। इसी प्रकार का है हमारा अन्कान्श्यस। अनेक बीज इसमें दबे

पड़े हैं। इसे साफ करने के लिये पहले इसमें दबी हुई सभी चीजों को उखाड़ फेंकना होगा।

अनकौन्श्यस को साफ करने का रास्ता है गहन शिथिलीकरण। किसी भी मनुष्य को गहन शिथिलीकरण में ले जाकर उसके अंदर के संस्कारों को बाहर निकाला जा सकता है। शवासन या ध्यान या त्राटक इत्यादि करने से शिथिलीकरण होता है। तनाव कम होते हैं। इसी स्थिति में मनुष्य यदि मन में जो आता जाय, बोलता जाय, तो उसका चित्त याने अचेतन मन साफ होता है। जब मन पूरी तरह से तनाव-रहित रहता है, उसी समय अपने अवचेतन मन को पूरी तरह जान सकता है।

शिथिलीकरण प्राप्त करने का उपाय है अजपा-जप। अजपा-जप करते-करते कुछ देर में मनुष्य का चेतन मस्तिष्क शिथिल हो जाता है। शारीरिक-चेतना के गिरते ही मनुष्य अनकौन्श्यस में चला जाता है। अनकौन्श्यस के पूर्व सबकौन्श्यस की देहरी पार करनी पड़ती है। सबकौन्श्यस है लिंग-शरीर और अनकौन्श्यस है कारण-शरीर। अजपा के द्वारा मनुष्य पहले स्थूल में रहता है, फिर अवचेतन में जाता है, और अवचेतन को पार करने के बाद अचेतन में चला जाता है। हर अवस्था के लक्षण अलग-अलग हैं।

जब मनुष्य सबकौन्श्यस में प्रवेश करता है, तब उसे अपने अन्दर की सभी दबी इच्छायें, वासनायें और संस्कार स्वप्न के रूप में दिखते हैं। शुरू में ये स्वप्न उल्टे-सीधे और विकृत रूप में आते हैं। स्वाभाविक-अस्वाभाविक, प्राकृतिक-अप्राकृतिक, उचित-अनुचित, अच्छे-बुरे, सुखदायी-दु:खदायी, सभी प्रकार के स्वप्न मनुष्य देखता है। स्वप्न देखकर मनुष्य अपने ऊपर विश्वास नहीं कर पाता कि स्वप्न में उसने ऐसा क्यों किया। लेकिन स्वप्नों पर आश्चर्य नहीं करना चाहिये। मनुष्य के जीवन में उल्टे, सीधे, अस्वाभाविक स्वप्नों का बड़ा महत्त्व है। वे ही तो मनुष्य के अनकौन्श्यस को प्रकट करते हैं। स्वप्नों का अध्ययन करने से मनुष्य अनकौन्श्यस का विश्लेषण करता है।

अजपा करते-करते जब योग का विद्यार्थी सबकौन्श्यस में पहुँचता है तो स्वप्न आने लगते हैं। अजपा के साथ-साथ साधक को इन स्वप्नों को द्रष्टा की तरह देखते जाना चाहिये। जितने संस्कार होंगे वे सब धीरे-धीरे उसी प्रकार बाहर निकलेंगे जिस प्रकार धरती में से घास ऊपर निकलती है। जैसे-जैसे अन्त:करण शुद्ध होता जाता है, वैसे-वैसे स्वप्न भी शुद्ध और सतोगुणी होते

जाते हैं। स्वप्न ही हमारे सबकौन्श्यस और अनकौन्श्यस का दर्पण है। ध्यान योग की क्रिया से यही लाभ होता है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को, चाहे वह आस्तिक हो या नास्तिक, ध्यान अवश्य करना चाहिये। यहाँ धार्मिकता और अधार्मिकता का कोई प्रश्न नहीं उठता। हर एक मनुष्य, चाहे वह कामी, क्रोधी, लम्पट, सन्त, बैरागी या साधु हो, सभी के अंत:करण की ऐसी बनावट है। हिन्दू, मुसलमान, सिख, इसाई, बौद्ध या पारसी होने से स्थूल, लिंग और कारण शरीर का आस्तित्व नहीं मिटता। संस्कारों का बंडल सभी के साथ रहता है। इसे खाली करने का अचूक नुस्खा है 'अजपा-जप'।

पहले मनुष्य को उल्टे स्वप्न आते हैं, फिर प्रतीक के रूप में और अन्त में सही और सच्चे सपने। कारण शरीर में पहुँचने पर एक ऐसी भी अवस्था आती है कि सारे स्वप्न समाप्त हो जाते हैं और मनुष्य शून्य में प्रवेश कर जाता है। वहाँ कुछ भी नहीं रहता। न जागृति, न सुषुप्ति, न रंग, न गंध, न स्पर्श और न स्वाद। समाधि की निर्विकल्प अवस्था यही है।

अजपा का अभ्यास आपको अन्नमय, प्राणमय, मनोमय और कारण शरीर को पार कराके समाधि के चरम शिखर पर ले जा सकता है।

चेतना के विभिन्न स्तरों को पार करने की अवस्था में ही एक ऐसी अवस्था आती है, जहाँ सच्चे दृश्य (visions) मनुष्य को दिखते हैं। उसे अपने स्थूल लोक की बातें भी मालूम करने की क्षमता प्राप्त होती है। साधक को भूत की बातें भी मालूम पड़ती है। गर्भ के संस्कार भी मालूम पड़ते हैं, और उससे भी आगे उसे पूर्व-जन्म की बातें भी प्रत्यक्ष होती हैं, पर ऐसा तभी होता है जब चित्त संस्कार शून्य हो जाता है, मनुष्य अपना व्यक्तित्व एकदम खाली कर देता है। स्वमानित और स्वकल्पित बन्धन एवं बौद्धिक चेतना से ऊपर उठ जाता है। उसके लिये सबसे पहले जरूरी शर्त है गहन शिथिलीकरण। अजपा के द्वारा इस क्रिया को सिद्ध किया जा सकता है।

साइको-एनालिसिस में साइकोलाजिस्ट्स पहले शिथिलीकरण की अवस्था में रोगी को ले जाते हैं, तब फिर उससे बातें करते-करते उसके अनकौन्श्यस की चीजों को बाहर निकालते हैं। अनकौन्श्यस को उभारने के लिये कोई आधार चाहिये। यह आधार बनता है 'सो' और 'हम्' का निरंतर जप। 'सोहं' का जप श्वास के साथ-साथ बराबर कीजिये। साथ-साथ चेतना को भी किसी केन्द्र के माध्यम से पकड़े रहिये। यदि ऐसा न करोगे तो आपको निद्रा आ जावेगी। निद्रा में तो मनुष्य अपनी जाग्रत चेतना को खो देता है,

और तब स्वप्न में उसे अपने विचारों और स्वप्न के कर्मों पर अधिकार नहीं रह जाता। ध्यान में और अजपा में नींद नहीं आने देनी चाहिये। अजपा में चेतना की एक हल्की किरण से साधक को स्वप्न देखते हुये भी यह भान हमेशा रहता है कि मैं देख रहा हूँ। निद्राकाल के स्वप्न में मनुष्य को यह भान नहीं रहता कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ, यद्यपि जगने पर स्वप्न की घटनाओं की सब स्मृति वह लेकर लौटता है। इसलिये ध्यान की अवस्था और निद्रा की अवस्था, देखने से एक लगने पर भी दोनों में बहुत बड़ा अंतर है, परन्तु ध्यान में मनुष्य स्वप्न देखता है, उसकी स्मृति भी रखता है और हर क्षण अपनी चेतना की डोर भी पकड़े रहता है। चेतना रहने से वह अपने संस्कार को देख सकता है, किन्तु यदि वह अपने को द्रष्टा के रूप में साक्षी भाव से नहीं देखेगा तो संस्कार-दर्शन में खो जावेगा। अपनी चेतना को अजपा के सहारे वह अपनी पकड़ में रख सकता है।

अपने अचेतन के क्षेत्र में उतरने का अजपा एक वैज्ञानिक तथा पूर्ण तरीका है। अचेतन में नित्य नये-नये संस्कारों की गर्द और कूड़ा जमा होते रहता है, जो रोग, शोक, चिन्ता और व्याधि पैदा करता है। जो लोग नित्य ध्यान की क्रिया से अपने अनकौन्श्यस के पुराने कूड़े को भी साफ करते हैं तथा नित्य नये कूड़े को जमा होने से रोकते हैं, वे ही स्वस्थ ओर दीर्घायु होने का रास्ता तैयार कर रहे हैं। ध्यान क्या है? ध्यान अपने अवचेतन तथा अचेतन को साफ करने का एक तरीका है।



आठवाँ भाग

अजपा का रोगों में प्रयोग

अजपा की विभिन्न साधनायें बतलाई जा चुकी हैं, किन्तु अजपा से अर्जित अध्यात्मशक्ति का यदि तुम उपयोग नहीं करोगे तो वह कुण्ठित हो जावेगी। अजपा के द्वारा अपनी बीमारियों को कैसे अच्छा किया जाय यह तरीका तुम्हें बतलाया जयेगा। इसका प्रयोग करो।

बीमारियाँ क्यों, कैसे और कितनी होती हैं, सोचो तो। बीमारियाँ टेन्शन्स के कारण होती हैं। मनुष्य के शरीर, मन और भावनाओं पर प्रतिदिन अनुकूल और प्रतिकूल आघात पड़ते रहते हैं। यही रोग का कारण है।

टेन्शन्स तीन प्रकार के होते हैं। मस्क्यूलर, मेन्टल और इमोशनल। हिन्दी में इन्हें क्रमश: शारीरिक तनाव, मानसिक तनाव और भावनात्मक तनाव कह सकते हैं, या आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप।

मस्क्यूलर टेन्शन, अत्यधिक श्रम, लगातार श्रम और एक ही प्रकार का कार्य दीर्घकाल तक करने से होता है। मस्क्यूलर टेन्शन अनिच्छापूर्वक काम करने से भी होता है या 'मैं परिश्रम कर रहा हूँ' की भावना के कारण होता है। यदि मनुष्य श्रम शब्द भूल जावे तो वह सिर्फ एक या दो समय भोजन और सिर्फ 3 घण्टे का शारीरिक विश्राम लेकर शेष समय में काम कर सकता है। मस्क्यूलर टेन्शन, अधिक सोने, दिन चढ़े तक सोने, अधिक खाने और व्यायाम नहीं करने से होता है। तामसिक भोजन से भी तनाव हो जाता है।

मस्क्यूलर टेन्शन दूर करने का सरल तरीका है योगासन। पन्द्रह मिनट प्रतिदिन सुबह-शाम योगासनों के अभ्यास से शरीर की बैटरी पुन: चार्ज हो जाती है। मनुष्य जब काम करते-करते थक जाता है, तो अंगड़ाई लेकर शरीर तोड़ता है। लिखते-लिखते हाथ थक जावे तो हाथ को झटकारता है, उंगलियाँ तोड़ता है, reverse pose लेता है, एक काम छोड़कर दूसरा काम करता है, चाहे वह टहलना हो या गाना हो या सिनेमा हो या कुछ और। मनुष्य एक काम का दूसरा counterpart बना लेता है, अपने काम और भाव के अनुसार।

किन्तु सचमुच देखा जाय तो recreation के नाम पर न तो उसके मस्क्यूलर टेन्शन कम होते हैं, न मेन्टल और न इमोशनल, क्योंकि हमारा रिलेक्स करने का तरीका ही गलत है। इसीलिये कुछ दिनों के अत्यधिक परिश्रम के कारण मनुष्य बूढ़े हो जाते हैं, और मृत्यु की चार चिट्ठियाँ (नेत्र-ज्योति का क्षीण होना, दाँत टूटना, बाल का सफेद होना, अंगों का बेकार होना) प्राप्त करते हैं। मस्क्यूलर टेन्शन एक ही वातावरण में घुटे रहने या बहुत ज्यादा मेहनत करने से भी होते हैं।

मेन्टल टेन्शन बहुत ज्यादा सोचने से होता है। सोचना तो वही चाहिये जिसके बारे में मनुष्य को सोचने की जरूरत हो, परन्तु सभी लोग काम की बातें कम और बेकाम की बातें अधिक सोचते हैं। इसलिये टेन्शन्स होते हैं। सिर्फ काम की बातें सोचने से टेन्शन नहीं हो सकता, क्योंकि वह किसी माध्यम से प्रकट हो जाता है। कर्म, वाणी और लेखनी द्वारा मानसिक टेन्शन्स दूर होने चाहिये। मनुष्य पिछली बातों और घटनाओं पर बहुत अधिक सोचता है। किसी से झगड़ा हुआ, कोई दुर्घटना हो गई, किसी ने गाली दी तो सोचना चालू हो जाता है। सोचने से मानसिक तनाव पैदा होते हैं, जिन्हें तुम देख नहीं पाते और न उन्हें दूर करने का तुमको कोई तरीका ही मालूम है।

बड़े-बड़े राजनीतिज्ञ, व्यापारी और बुद्धिजीवी, सभी मानसिक श्रम करते हैं, पर खर्च की हुई मानसिक शक्ति को पुन: आपूरित कर लेने का कोई साधन नहीं जानते। इसलिये युवावस्था पार करते ही रोग, अशक्ति, सफेद बाल आदि लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

अत्यधिक मानसिक तनाव बढ़ जाने से मेन्टल रिटार्डेशन (दिमागी ताकत का सुन्न होना) के मामले बड़ी डरावनी तादाद में हो रहे हैं—हजारों-लाखों की तादाद में।

मानसिक तनाव के बढ़ जाने से शिराएँ फटने लगती हैं, आँखें कमजोर होती हैं, कब्ज रहती है, डकारें आती हैं, सिगरेट पीने को जी चाहता है, चाय की याद आती है, और जब शारीरिक और मानसिक तनाव मिलकर आते हैं, तो काम और क्रोध के आवेग भी आते हैं।

शारीरिक तनाव तो रात के विश्राम से दूर हो जाते हैं, किन्तु मानसिक तनाव नींद में भी रहते हैं। ट्रेन्क्वेलाइजर लेने से दबते नहीं, जाते नहीं, किन्तु बीज बन जाते हैं। बाद में डिप्रेशन लाते हैं और डिप्रेशन को दूर करने के लिये साधारण व्यक्ति के जीवन में सुरा और सुन्दरी आ जाते हैं।

बीमारी का तीसरा कारण है, भावनाओं का तनाव। मनुष्य जीवनभर भावनाओं के थपेड़े खाते रहता है। हर वस्तु के साथ वह केवल बुद्धि और ज्ञान का भाव नहीं रख पाता। भावनायें यथार्थ न होने पर भी, मनुष्य उनसे चिपका रहता है, और जब भावनाओं पर ठेस लगती है तो प्रतिक्रिया-स्वरूप रोग का जन्म होता है।

यदि किसी का प्रिय मित्र, पुत्र, स्त्री, पति या सम्बन्धी अगले दिन कहीं दूर से आने वाला हो, तो उसे रात भर नींद नहीं आवेगी। एक घण्टे के बाद परीक्षा-फल घोषित होने वाला हो तो हृदय का तेजी से कम्पन शुरू हो जाता है। रात को एकाएक बेटे को होस्टल में घर की याद आती है। मोरार जी ने गोल्ड-पॉलिसी घोषित की तो लाखों सोनार कैसे सोचते और चलते होंगे। तुम हर लड़की पर ध्यान अटकाये रहते हो तो तनावों का क्या होता है? और अष्ट ग्रह में हजारों-लाखों लोग भावनात्मक तनावों से कैसे तने थे। इमोशनल टेन्शन से हार्ट-अटैक होने लगते हैं।

भावनात्मक तनाव अनजाने व्यवहारों में प्रकट होते हैं। कुछ लोग अपने पैरों को बराबर हिलाते रहते हैं। कुछ कन्धे उचकाते रहते हैं। कुछ लोग सीटी देते या गुनगुनाते रहते हैं। कुछ लोग अन्य कई प्रकार के व्यवहार, जैसे बार-बार पलक मारना, नाक फूंकना, आदि अनजाने में अपना लेते हैं। ये सब अनावश्यक बर्ताव मनुष्य के अन्दर के टेन्शन्स को व्यक्त करने के लिये होते हैं। तनाव तो होते रहेंगे जब तक मनुष्य को पूर्ण वैराग्य न हो। गृहस्थ तो तनाव से बच नहीं सकते।

किसी बीमारी का कारण मस्क्यूलर या मेंटल या इमोशनल या किन्हीं दो या तीन प्रकार का टेन्शन हो सकता है। टेन्शन के समय नाड़ियों में खून का प्रवाह अधिक हो जाता है, जिससे हाईपरटेंशन तक पैदा होता है। यदि इसे समय पर न रोका गया तो इससे ब्लड-प्रेशर और पैरालिसिस भी होती है।

कभी मस्क्यूलर टेंशन के कारण बीमारी होती है, तो कभी इमोशनल या मेंटल टेंशन से। कभी तीनों के मिश्रित कारण से भी रोग होता है। कोई व्यक्ति ऑफिस से आकर अपनी पत्नी और बच्चों पर बिगड़ता है तो उसका कारण कभी मस्क्यूलर टेंशन होता है, तो कभी मेंटल या इमोशनल। थके रहने के कारण वह क्रोध करता है। चिन्ता के कारण वह क्रोध करता है। इसी प्रकार दिमागी उलझन से भी मनुष्य को सिरदर्द, कब्ज, एसीडिटी, दिल का दर्द आदि रोग होते हैं।

जब व्यक्ति अपने को उपेक्षित समझता है और उसकी भावनाओं की तुष्टि नहीं हो पाती तो उसे संक्रामक-रोग पैदा हो जाते हैं, जैसे टी.बी., कुष्ठ-रोग, दमा, गठिया इत्यादि।

ऐसे में फिर क्या हो? इन तनावों को दूर करने की मनोवैज्ञानिक पद्धति तुम्हें अपनानी पड़ेगी। यह मनोवैज्ञानिक और यौगिक पद्धति है अजपा-जप का अभ्यास।

अजपा के अभ्यास से उपर्युक्त तीनों प्रकार के टेंशन्स दूर होते हैं। अजपा में चतुर्थ प्राणायाम से गहन विश्राम मिलता है, और चेतना भी रहती है, पर यह कैसे?

अजपा करते-करते व्यक्ति पहले दैहिक तनाव दूर करता है। दैहिक शांति होने पर वह अपने अन्दर के कमरों में एक-एक करके प्रवेश करता है। अन्दर जाने पर उसे चेतना के कई स्तर मिलते जाते हैं। इन सबको हम देव-लोक कहते हैं। सूक्ष्म और कारण-देह से मनुष्य की चेतना ही कार्य करती है। चेतना के विभिन्न स्तर तीन विभागों में बांटे जाते हैं—भूलोक, भुवर्लोक, सुवर्लोक। इन तीनों के बाद का जो स्तर है वह सत्य-लोक है, किन्तु सत्य-लोक में कोई वृत्ति नहीं रहती, सिर्फ चेतना ही चेतना, प्रज्ञान-घन चैतन्यता (total awareness) रहती है।

दैहिक ताप खत्म होने पर मनुष्य के प्रीकौन्श्यस के तनाव विचार रूप में प्रकट होते हैं। जो-जो बातें व्यक्ति के अन्त:करण में रहती हैं वे विचार और सम्बन्धित विचारों के माध्यम से आने लगती हैं। विचार रूप में 'प्री' और 'सब-कौन्श्यस' की चीजें ही सामने आती हैं। उनके आने से घबराना नहीं चाहिये, और न रोकना चाहिये। उन्हें प्रकट होने देना चाहिये। लोगों का यह कहना और समझना गलत है कि विचारों पर कन्ट्रोल होना चाहिये। कन्ट्रोल करना तो दबा देना है, जो कभी भी फिर प्रकट होगा और पनपेगा।

अजपा के द्वारा तनाव दूर होते हैं, शिथिलीकरण होता है, और जितना गहरा शिथिलीकरण होगा, उतने ही दबे हुये संस्कार प्रकट होते जायेंगे। ये दबे, पुराने संस्कार मनुष्य की चेतना के हर स्तर पर रहते हैं। अजपा के द्वारा मनुष्य जितनी गहराई में उतरता जावेगा, वहाँ-वहाँ के संस्कार उसके सामने प्रकट होते जायेंगे। कौन्श्यस के विचार, प्रीकौन्श्यस के संस्कार, फिर सबकौन्श्यस की वासना, फिर अनकौन्श्यस की अविद्या। इन संस्कारों के प्रकट होने पर इन्हें रोकना कभी नहीं चाहिये, बल्कि अजपा के द्वारा इनकी निकासी होनी चाहिये।

दबे हुये संस्कार पहले विचार, फिर स्वप्न, फिर यौगिक-स्वप्न (visions) के रूप में प्रकट होते हैं। जब संस्कार प्रकट हों तो तीन बातों का ख्याल रखना चाहिये। पहली, नींद न आने पाये। दूसरी, अजपा का तार न टूटे। तीसरी, संस्कारों को भी द्रष्टा की भांति देखते हुये चलो। ऐसा करते-करते तुम्हारी चेतना के एक-एक स्तर के संस्कार प्रकट होकर खत्म होते जाएँगे और तुम चेतना की अन्य गहराइयों में उतरते जाओगे। जैसी-जैसी चेतना की गहराई, वैसे-वैसे गहरे व आदिम संस्कारों का दर्शन होता है।

जो कुछ भी स्वप्नों या visions में तुम्हें दिखे, उससे घबराना नहीं चाहिये। शेर दिखे, आग दिखे, दुर्घटना दिखे, अस्वाभाविक चीजें दिखें—सब देखते जाओ, क्योंकि वह सब बाहर का कुछ नहीं, सिर्फ तुम्हारी चेतना की सब चीजें हैं, तुम्हारे अन्दर का दबा मैटर है, जो प्रकट हो रहा है।

तुम चेतन स्तर पर जो कुछ देखते, सुनते और विचार करते हो, केवल उसी से तुम्हारे संस्कार नहीं बनते, बल्कि तुम्हारी दृष्टि, श्रुति, स्पर्श और गन्ध के दायरे में जितनी चीजें आती हैं, वे सब संस्कार बनकर अन्दर में जमा होती जाती हैं।

तुम कहीं टहलने गये हो, और सीधे सामने की ओर देखते जा रहे हो। अगल-बगल की चीजें तुम नहीं देख रहे हो। तो भी तुम्हारी दृष्टि के दायरे में जितनी चीजें आवेंगी, उन सबका प्रभाव तुम्हारे सूक्ष्म-शरीर में संस्कार बनकर जावेगा। यदि कोई कच्चा मांस खा रहा है, तुमने उसे देखा नहीं किन्तु तुम्हारी दृष्टि के अन्दर वह आया है, तो उसका भी संस्कार तुम्हारे मन पर पड़ेगा। चेतन मन का उत्तर तो बस यही होगा कि तुमने व्यक्ति को कच्चा मांस खाते नहीं देखा, परन्तु नेत्रों के लेंस तो ऐसे हैं कि इनकी सीमा के अन्दर जो कुछ भी आवेगा उन सबकी छाया अन्त:करण में जमा होती जावेगी और वह प्रकट होती है केवल पूर्ण शान्ति में।

रिलैक्सेशन या शान्ति जैसे-जैसे गहरी होती है, पिछली सब देखी-अनदेखी बातें प्रकट होती हैं। इनको प्रकट कर देने से संस्कारों का नाश याने सफाई होती है। इसीलिये मनोवैज्ञानिक पहले रोगी को 'रिलैक्स' करवाते हैं। रिलैक्सेशन जितना गहरा होता जाता है, उतनी ही मनुष्य की स्मृति भी गहरी व पुराणदर्शी होती जाती है। जितनी पुरानी बातें याद आती हैं, समझिये कि चेतना उतनी ही गहरी है। जैसे-जैसे शांति गहरी होगी, वैसे-वैसे चेतना का स्तर भी बदलता जावेगा।

अजपा इसी 'रिलैक्सेशन' या शांति या विश्राम की एक परम सहज साधना है। अजपा में अचेतावस्था नहीं आती। चेतना रहती है, पर बाहर के जगत् में न रहकर अन्दर के जगत् में। यह चेतना अजपा के अभ्यास के माध्यम से लोक-लोकांतरों को पार करती हुई आगे बढ़ते जाती है। मनुष्य की स्मृति तेज हो जाती है, 'सेन्सिटिवनेस' बढ़ जाती है और पीछे की सब बातें उसे धीरे-धीरे याद आने लगती हैं। दो वर्ष, चार वर्ष, दस, बीस, चालीस, अस्सी वर्ष पीछे की भी घटनाएँ और स्मृतियाँ ताजी होती जाती हैं। मनोवैज्ञानिक उन्हीं घटनाओं के आधार पर व्यक्ति की बीमारी को ढूँढ़ निकालते और पुन: काउन्टर-सजेशन्स के द्वारा समाप्त कर नये संस्कार डाल देते हैं। गर्भावस्था की ही नहीं, बल्कि पूर्वजन्म की स्मृतियाँ भी गहरे विश्राम में जगने लगती हैं। गुरु पक्का और चेला सच्चा हो तो यह अवस्था बड़ी सरलता से आती है, बड़ी जल्दी आती है।

हिन्दू मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य ध्यान की जितनी गहराइओं में उतरता है, उसी के हिसाब से उसके भूत और भविष्य के संस्कार प्रकट होते हैं। न केवल इस जन्म की बीती घटनाओं की स्मृति आती है, बल्कि पूर्व-जन्म के सारे संस्कार यथाक्रम प्रकट होते हैं। जैसे-जैसे चेतना बाहर से हटकर अन्दर जावेगी, वैसे-वैसे भूत और भविष्य का रिकार्ड खुलता जावेगा।

पूर्वजन्म के संस्कारों के प्रकट होने के कारण का तो तुम अनुमान लगा सकते हो, परन्तु भविष्य के संस्कार के बीज भी मनुष्य स्वयं तैयार करता रहता है, और जिस तरह रिलैक्शेसन में स्मृति तीव्र होती है, उसी तरह दृष्टि का भी विस्तार होता है। मनुष्य की कल्पना-शक्ति ऊपर उठकर एक स्वरूप बना लेती है या देख लेती है कि आगे कुछ वर्षों के बाद क्या घटने वाला है।

एक व्यक्ति है। उसकी कई लड़कियाँ हैं। सबके विवाह की बचपन से ही चिन्ता शुरू हो जाती है। इस तरह एक संस्कार पैदा हो जाता है। यह भविष्य का संस्कार है, जो कभी-कभी किसी रूप में स्वप्न या ध्यान में उतरता है। इसी प्रकार पत्नी के मन में पति, पुत्र तथा संबंधियों को लेकर भविष्य के संस्कार पहले तैयार रहते हैं। ऐसे ही संस्कार सबके अंत:करण में रहते हैं जो घटने के पहले ध्यान में प्रकट हो जाते हैं।

अजपा के द्वारा रिलैक्स करने पर दोनों बातें होती हैं—पूर्व की घटनाएँ, दबी हुई हर एक इच्छा, हर एक विचार और साथ-साथ भविष्य के संस्कार भी स्पष्ट दिखते हैं।

अजपा में जब भूत-भविष्य के संस्कार प्रकट हों तो तुम उन्हें बस देखते भर जाओ और स्मृति में नोट भी करते रहो। अन्दर से बाहर आने पर उन सब अनुभवों को नोट कर लो या गुरु से कह दो। संस्कारों को देख लेने भर से वे नहीं मिटते। उन्हें डायरी में नोट करो या गुरु से कहो। गुरु तब आदेश देगा कि क्या किया जावे।

संस्कार एकदम तो नहीं मिटते। निर्विकल्प अवस्था प्राप्त करने तक रहते ही हैं, किन्तु उनका बोझ अवश्य हल्का हो जाता है। इन संस्कारों को निकाल देने से रोग की जड़ कट जाती है। अजपा का अभ्यास इसीलिये हर एक आदमी के लिये बहुत जरूरी है।

इसके साथ तुम संकल्पों (conditioned reflex formula) के द्वारा अपने दोषों को दूर कर सकते हो। रोगों को करने के लिये व्यक्ति को अजपा का अभ्यास इस प्रकार करना चाहिये।

पहले आसन में बैठकर अजपा करो और जब अर्द्ध-जागृति और अर्द्ध-निद्रा-सी मालूम पड़े, उस समय कुछ संकल्पों के द्वारा अपने अंत:करण में ऐसे संस्कार भरो जिन्हें तुम अपने अन्दर लाना चाहते हो। उदाहरण के लिये, 'मैं सिगरेट की आदत छोड़ दूँगा', 'मैं चिन्ता नहीं करूँगा,' 'मेरा स्वास्थ्य ठीक है', 'मैं अच्छा हो रहा हूँ,' 'मुझमें दिव्य-शक्ति भर रही है,' इत्यादि।

अंत:करण जब अन्दर चला जाता है, उस समय उसे जो कुछ भी आज्ञा तुम देते हो, वह तुरन्त ही ग्रहण कर लेता है। इस लिये रोगोपचार के लिये भी अजपा-जप का अभ्यास शुरू कर देना चाहिये। अन्त:करण में जहाँ ग्रन्थियाँ होंगी, जहाँ रोग के संस्कार दबे होंगे, जहाँ भावनाओं को ठेस पहुँची होगी, या दैहिक चोट लगी होगी—उन सबके संस्कार स्मृति दृश्य बनकर चेतन की सतह पर आवेंगे तथा उनका प्राकट्य हो जावेगा। संस्कारों को दो रास्तों से हल्का किया जा सकता है, या तो वैराग्य से अथवा उन्हें ध्यान में प्रकट कर देने से। इस तरह तुम अपना उपचार खुद कर सकते हो।

अजपा का अभ्यास दिन में तीन बार किया जा सकता है। पहला अभ्यास प्रात:काल चार बजे से छ: बजे तक करो। प्रात:काल चार बजे की साधना पर जोर देने का कारण यह है कि दिन में बाह्य चेतना को विस्तृत करने और अन्दर जाने के लिये बहुत अधिक श्रम करना पड़ता है, और तब भी सफलता यदा-कदा ही मिलती है, किन्तु प्रात:काल तीन या चार बजे के अभ्यास में श्रम नहीं लगता और न दिन के बराबर समय। निद्रा से उठने के कारण मन स्वयं अन्दर

रहता है, और बहिर्मुख नहीं होना चाहता। अंतर्मुख अवस्था में जो कुछ किया जायेगा, वह तुरन्त अन्दर चला जायेगा। ऐसे समय में ही उठकर पहले अजपा का अभ्यास करो, उसके बाद स्वास्थ्यकर विचार और संस्कार अपने अन्दर भरो। इस तरह प्रात:काल एक या दो घण्टे रोज अजपा का अभ्यास रोगोपचार के लिये करो। गत-दिवस के तनावों के शान्त हो जाने के कारण प्रात:कालीन अजपा से बड़ी शक्ति मिलती है।

अजपा का दूसरा अभ्यास सन्ध्या के समय होना चाहिये। कार्य समाप्त कर घर आते ही पहले आराम-कुर्सी पर बैठो। पैरों को फैला लो और आराम की पोजीशन में बैठो या अधलेटे रहो। आधे घण्टे चंद्रांग या सूर्यांग अजपा करो। अजपा को बाबाओं की साधना न समझ कर विश्राम की विधि समझो। बीच में स्वप्न और संस्कार दिखें तो उन्हें देखते जाओ, मन में नोट करो और बाद में लिख भी लो। इसके बाद उठकर हाथ-मुँह धोवो, घर के काम-काज देखो, बीवी-बच्चों की फरियाद सुनो, जलपान करो या जो कुछ भी करना हो करो। इतना नियम बनाओ कि बाहर से घर में आते ही पहले अजपा और स्वास्थ्य के संस्कार भरो।

तीसरी बार रात में सोने के समय लेटकर अजपा का अभ्यास करो। रात में अजपा लेटकर किया जा सकता है, किन्तु प्रात: नहीं। रात में अजपा करते-करते सोओ, किन्तु निद्रा और जागृति की देहरी पर पहुँचते ही अपने निश्चित संकल्पों को दुहराओ। अंत:करण को आदेश देना, निरोग होने की आज्ञा देना न भूलो। सुबह और शाम की अजपा में तुम्हें नींद को रोकना है। अजपा करते-करते कहीं नींद न आये, इसका ध्यान हमेशा रखो। अत: प्रात:काल की अजपा निष्ठापूर्वक आसन में बैठकर ही करो। संध्या किसी आरामदायक पोज में और सोने के पूर्व लेटकर करो और करते-करते संकल्प दुहराने के बाद सो जाओ।



नवाँ भाग

अजपा केवल पूजा और जप का तरीका नहीं है। अजपा केवल साधना नहीं है। अजपा सिर्फ समाधि की साधना नहीं है। अजपा सिर्फ प्राणायाम नहीं है। फिर क्या है अजपा?

अगर तुम्हें नींद न आती हो तो अजपा ट्रेन्क्विलाइजर है। यदि तुम्हें दिल की बीमारी है तो अजपा है कोरेमिन, और अगर तुम्हें सिर में दर्द है तो अजपा बनेगी एनासिन। यदि तुम्हें मुटापे का रोग है तो अजपा चर्बी को भी जला देगी।

कहने का मतलब यह है कि अजपा रामबाण है। हर रोग की अचूक दवा है, क्योंकि वह शरीर के आधारभूत तत्त्वों, क्रियाओं, बनावट तथा अवयवों से सीधा सम्बन्ध रखने वाला अभ्यास है। जिस तरह यदि रक्त-संचरण का कार्य रुक जावे तो शरीर में कोई कार्य सम्पादित नहीं हो सकता, और सब अंगों के ठीक-ठीक कार्य करने का रहस्य केवल रक्त-परिभ्रमण है, उसी तरह अजपा भी मनुष्य के सब कोषों को पोषित करने वाला तत्त्व है।

एनासिन, ट्रेन्क्विलाइजर, कोरेमिन इत्यादि केवल शारीरिक उपचार करते हैं। तेज दवायें जहाँ एक अंग के रोगों की दवा हैं, वहीं दूसरे अंगों पर उनका विपरीत असर होता है। दवायें हमारे रक्त में मिलकर शरीर के सब अंगों में पहुँचती हैं। इन दवाओं से रोग में तत्काल फायदा भले ही होता है, परन्तु रोगों के मूल कारण को दूर करने में वे असमर्थ होती हैं। शरीर में जो भी रोग होते हैं, उनका कारण हमेशा कुछ और होता है। सिर दर्द हो तो उसका कारण कुछ और हो सकता है, जैसे कब्ज इत्यादि। ज्वर हो तो उसका कारण कुछ और होगा। शरीर के किसी अंग में चोट या पीड़ा होने से भी ज्वर होता है। इसी तरह बीमारियों का केवल भौतिक कारण ही नहीं होता, बल्कि मनोवैज्ञानिक कारण भी होता है। किन्तु मानसिक कारणों के उपचार का तरीका डॉक्टरों को नहीं मालूम, और न वे प्रयोग करते हैं।

रोगों का कारण मनुष्य की अतृप्त इच्छाएँ भी रहती हैं, जिनकी पूर्ति व निराकरण का साधन न डॉक्टरों के पास है, न घरवालों के पास और न

समाज के पास। पुन: रोग के कारण मनुष्य के मानसिक विकार—काम, क्रोध, मोह, मद और लोभ होते हैं। इनके लिये कोई उपाय और उपचार दुनिया के पास नहीं है। प्राणमय कोष और मनोमय कोष के विकारों को एलोपैथिक, आयुर्वेदिक और होम्योपैथिक दवायें दूर करने में असमर्थ हैं। कुछ हद तक शरीरोपचार से मानसोपचार हो सकता है, किन्तु वह सीमित है। मन को नियंत्रित करने के लिये, मानसिक रोगों को हटाने के लिये और पुन: मन की शक्ति को ऊर्ध्वगामी करने के लिये दवायें काफी नहीं हैं।

चूँकि बीमारियों का कारण प्राय: मानसिक होता है, इसलिये मन में ही बीमारी का संस्कार पहले आरोपित होता है। अस्तु, मन का ही उपचार सब दवाओं के पहले होना चाहिये।

इसलिये बीमारियों में अजपा का प्रयोग किया जाना चाहिये। रोग होने के पूर्व अभ्यास होना ही चाहिये, किन्तु रोग होने पर भी अजपा का अभ्यास सबसे पहले शुरू कर देना चाहिये। जो संसारी और गृहस्थ मनस्-तत्त्व को नहीं पहचानते और आलोचना करते हैं, उन्हें सबसे पहले अजपा के प्रायोगिक क्षेत्र में उतरना चाहिये। अजपा का ठीक ढंग से और पूरी तत्परता के साथ अभ्यास करने से यह हो नहीं सकता कि रोग अच्छा न हो। यदि मनुष्य चाहे तो मात्र अजपा के अभ्यास से काल और मृत्यु को जीत सकता है। काल को जीतने का अर्थ होता है, काल से प्रभावित न होना और मृत्यु को जीतने का अर्थ होता है, इच्छा-मृत्यु प्राप्त करना।

इसलिये अजपा का प्रयोग एक थेरेपी के रूप में भी होना चाहिये। थेरेपी के रूप में मैं अजपा का असंख्य बार प्रयोग कर चुका हूँ। अनेक बड़ी और छोटी बीमारियों में मैंने अजपा का अभ्यास कराकर उन्हें दूर कराया है।

पागलपन और हिस्टीरिया में मैंने अजपा के प्रयोग कई बार किये। हाई ब्लड-प्रेशर और थ्राम्बोसिस में अजपा का प्रयोग कराया और सभी जगह मुझे सफलता ही मिली है। जिसने भी तत्परता से थोड़ा बहुत भी अभ्यास किया, उसे सफलता मिली और वह चंगा हो गया।

तर्क करने वाले प्रश्न करेंगे कि एक ही साधन सब बीमारियों में कैसे। तो उत्तर यह है कि शरीर की बनावट और तत्त्व एक ही है। प्राण-शक्ति के द्वारा ही शरीर चलता, बोलता, खाता-पीता और सोता है। यह प्राण-शक्ति ऑक्सीजन के द्वारा सारे शरीर में सरकुलेट होती है। दवाइयों से मनुष्य चंगा नहीं होता, बल्कि प्राण-शक्ति के प्रवाह से होता है। अजपा के द्वारा प्राणों की

अधिक मात्रा शरीर में प्रविष्ट होती है। ऑक्सीजन के द्वारा प्राण-शक्ति सभी अंगों में अधिक प्रवाहित होती है और रक्त-नाड़ियों में उनके ठहराव का समय अधिक होता है। प्राण-शक्ति कहते हैं लाइफ-करेंट को। इस लाइफ-करेंट को शरीर में ज्यादा-से-ज्यादा भरने से मनुष्य की आयु लम्बी होती है।

प्राण-शक्ति हर एक आदमी के शरीर में बहती रहती है। जिनमें यह शक्ति अधिक मात्रा में होती है वे बहुत स्वस्थ, प्रसन्न, शान्त और सौम्य दिखते हैं। उनके पास बैठने से रोगियों को बहुत आराम मिलता है। रोगियों के शरीर में प्राण-शक्ति आवश्यकता से बहुत कम होती है। इसलिये वे दुर्बलता और पीड़ा का अनुभव करते हैं। जिनमें जितनी अधिक शक्ति होगी, वे बड़ी-से-बड़ी पीड़ा और दु:ख को, शरीर को कम-से-कम हानि पहुँचाकर सह लेंगे।

शरीर में जीवनी-शक्ति को आपूरित करने का रास्ता है, अजपा का नित्य अभ्यास। अजपा का अभ्यास अधिक-से-अधिक मात्रा में करने से जीवनी-शक्ति का संग्रह और संचार होता है। यह जीवनी-शक्ति ही रोगों में उपचार का काम करती और प्राणदान देती है।

अजपा मन का भी इलाज करता है। मन को कन्ट्रोल करने का और सूक्ष्म में प्रवेश कराने का एक ही द्वार है और वह है अजपा-नामी सांसों की सुरंग।

चेतना, प्राण और मंत्र को संयुक्त करने से अजपा बनता है। अजपा प्राणों के सहारे चलता है। प्राण से मन संचालित होता है। इसलिये अजपा करने से मन का स्वत: संयम भी होता है और उसके तत्त्व भी बदलते हैं। अजपा से मन और चित्त का पुराना तत्त्व एकदम बदल जाता है और नये तत्त्व भर जाते हैं।

पुन: अजपा से मनुष्य की सुषुम्ना की नली में गर्मी पैदा होती है, जो हमारी शक्ति-केन्द्रों का स्टोर-हाउस है। शरीर के सभी पावर-सेन्टर्स और स्नायुओं के जाल सुषुम्ना से निकलते हैं। लम्बी श्वास लेने से सुषुम्ना प्रवाहित होती है, कुण्डलिनी का उत्थान होता है, किन्तु शरीर से संबंधित होने पर भी इसका अधिक झुकाव आत्मानुसन्धान की तरफ है।

प्राय: घरों में लड़ाई-झगड़े, वैमनस्य, ईर्ष्या, निन्दा, लोभ इत्यादि के कारण भी लोग दु:खी रहा करते हैं। ये सब मानसिक विकार के कारण होते हैं। मानसिक विकार मुख्य पाँच ही हैं, बाकी अन्य भावनाएँ केवल उनके ही रूपान्तर और प्रकारान्तर हैं। ये पाँच काम, क्रोध, लोभ, और मोह ही हैं, जिनका प्रसंग पहले आ चुका है। यदि और अधिक सूक्ष्म-दृष्टि से विचार किया जावे तो केवल दो ही मुख्य वृत्तियाँ हैं, जो सब व्याधियों की मूल हैं।

वे हैं राग और द्वेष। इसी से प्रेरित होकर मानसिक क्लेश उत्पन्न होते हैं। इन्हें समाप्त करने पर कुछ नहीं रह जाता है।

इन्हें समाप्त करना या नियंत्रित करना न सम्भव है और न आसान, किन्तु इनके कारण उत्पन्न क्लेशों को अजपा के द्वारा दूर किया जा सकता है।

यदि आपका बच्चा आपका कहना न माने, यदि पति-पत्नी में आपस में मेल की इच्छा रहते हुए भी पटती न हो, यदि सास-बहू में छत्तीस का नाता हो, और यदि अपने अधिकारी से आप न चाहते हुए भी झगड़ा कर लेते हों, तो सर्वप्रथम उपचार यह है कि अजपा-जप का अभ्यास विधि के साथ शुरू कर दीजिये। सच्चाई और आशा के साथ छः महीने अभ्यास करने के बाद अजपा के पूर्व और अजपा के बाद की अवस्था की तुलना कीजिये।

यह तो हुआ अजपा का रोगों में प्रयोग, परन्तु वास्तव में समाधि-साधन के लिये ही अजपा का अभ्यास करना चाहिये।



स्वर योग पर पन्द्रह प्रलेख

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

अंतर्राष्ट्रीय योग मित्र मण्डल द्वारा प्रकाशन – 1964

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

स्वर योग पर पन्द्रह प्रलेख

श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने परिव्राजन काल में अनेक स्थानों पर स्वर योग सम्बन्धी सत्संग दिये थे, जिन्हें संगृहित कर सर्वप्रथम सन् 1964 में अन्तर्राष्ट्रीय योग मित्रमण्डल, राजनाँदगाँव द्वारा प्रकाशित किया गया। योग के इस गुह्य, गहन और अनजान पक्ष पर गवेषणापूर्ण चिन्तन प्रस्तुत करने वाली यह अपनी तरह की पहली पुस्तक थी।

– सम्पादक

स्वर योग की रूपरेखा

प्राचीन काल से प्रचलित योग विद्याओं में वर्णित विभिन्न प्रकार के योगों में से एक स्वर योग भी है। इसका ज्ञान तो क्या, मैंने इसका नाम भी कभी नहीं सुना था। इसके बारे में कुछ लिखना या बतलाना तो दूर रहा।

धन्य है गुरुदेव परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी महाराज की कृपा जिनके सम्बल मात्र से ही स्वर योग जैसे दुर्गम एवं महत्त्वपूर्ण योग की रूपरेखा पाठकों की जानकारी के लिए लिख रहा हूँ, केवल इसी उद्देश्य से कि उनकी रुचि इस ओर अधिकाधिक बढ़े।

प्राचीन शास्त्रों में इस बात का उल्लेख है कि इस स्वर योग का ज्ञान आदि गुरु भगवान शंकर ने सबसे पहले माँ पार्वती को पूर्णरूपेण कराया। माँ पार्वती ही इस स्वर योग की प्रथम शिष्या थीं।

स्वर योग का सम्बन्ध हमलोगों के बहने वाले श्वास के प्रवाह से है। आप ऐसा अनुभव करेंगे कि हमलोगों के श्वास का प्रवाह या तो दाहिने या बाएँ नाक से ही एक समय में चलता है। ऐसा सुअवसर शायद ही आता हो, और आता भी हो तो अल्प समय के लिए जब दोनों नासिकाओं से एक साथ प्रवाह चले।

बाएँ ओर से चलने वाले प्रवाह को योग की भाषा में इड़ा या चन्द्र नाड़ी और दाहिनी ओर से चलने वाले प्रवाह को पिंगला या सूर्य नाड़ी कहते हैं। विज्ञान की भाषा में आप एक को निगेटिव और दूसरे को पोजीटिव कह सकते हैं। एक का प्रवाह शीतल तथा दूसरे का उष्ण माना जाता है। दिनभर में क्वचित ही ऐसा काल केवल अति अल्प समय के लिए आता है, जब दोनों नासिकाओं से श्वास का प्रवाह, जिसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं, चलता हो।

इन प्रवाहों की सबसे बड़ी विशेषता है कि इनका प्रवाह प्रत्येक घंटे बदलता रहता है। यदि एक घंटा बायां स्वर तो दूसरे घंटे दायां। इस प्रकार से इनका प्रवाह alternately दिन और रात चौबीस घंटे चलता रहता है। ऐसा कैसे और क्यों होता है, विज्ञान इसका सन्तोषजनक तथा यथेष्ट उत्तर देने में

अभी भी असमर्थ है। पर हमारे पूर्वज ऋषि-मुनियों ने हजारों वर्ष पूर्व से ही इसका उत्तर दे रखा है।

इतना ही नहीं, इस प्रकार से स्वर चलने की गति तिथि, वार एवं सूर्य के उदय काल से भी निर्धारित होती है।

स्वर योग के अभ्यास से साधक आत्मज्ञान सहज ही, अल्प समय में, बिना अधिक परिश्रम के पा जाता है। स्वर योग के अभ्यासी साधक के लिए कोई विशेष बन्धन भी नहीं है। इसमें केवल तीन विशेष नियम और संयम हैं जिनका पालन करना ही पड़ता है। पहला नियम है कि स्वर योग के अभ्यासी को अल्पाहारी होना चाहिये। दूसरा, उसे अल्प निद्रा लेनी चाहिये, और तीसरा जो कुछ कठिन है कि उसे आत्मसंयमी होना चाहिये।

स्वर योग का अभ्यास करने वाला साधक सफलता प्राप्त करने पर भूत, भविष्य तथा वर्तमान काल का ज्ञाता बन जाता है, पर इसका दुरुपयोग कभी भी किसी रूप में न हो, इसके लिये प्रकृति ने कई कठिन नियम पहले से ही बना रखे हैं। यही कारण है कि इस विद्या में सफलता बड़ी ही दुर्लभ है। मेरा तो अनुमान है कि शायद इस स्वर योग का आदि काल से गुप्त रहने का एक कारण यह भी रहा हो। यही कारण है कि इस स्वर योग का ज्ञान ब्रह्मनिष्ठ गुरु केवल योग्य अधिकारी को ही देता है। और इसमें दीक्षा भी गुरु-शिष्य परम्परा में ही दी जाती है। यदि ऐसा न होता तो यह विद्या इतनी प्राचीन होने पर भी आज तक सुरक्षित कैसे रहती?

स्वर योग में श्वास के प्रवाह की गति को नियंत्रण में लाने का अभ्यास करना पड़ता है। इन प्रवाहों की गति पर नियंत्रण होने पर ही आप अपने मन का नियंत्रण कर सकते हैं, क्योंकि जितने भी प्रकार के योग हैं, चाहे वह मंत्र योग हो, जप योग हो, राज योग हो या कोई अन्य योग, लक्ष्य तो एक ही है और वह है मन को संयम में लाना। आप हमसे सहमत होंगे कि मन को वश में लाना बड़ा कठिन है। आप एक जंगली शेर को वश में कर सकते हैं पर मन को नहीं।

अतएव यदि आपको अपने मन को वश में लाने की विद्या सीखने, जानने व अभ्यास करने की रुचि ही नहीं, लगन भी हो तो शीघ्र ही सुअवसर का लाभ उठावें। बहती गंगा का लाभ लें। गंगा के तट पर मुंगेर में 'बिहार स्कूल ऑफ योग' के एक पखवाड़े के सत्र में प्रवेश पा इसकी जानकारी प्राप्त करें।

—स्वामी प्रार्थनानन्द सरस्वती
सम्पादक

इन्टरनेशनल योग फैलोशिप
और
बिहार स्कूल ऑफ योग

'इन्टरनेशनल योग फैलोशिप', जो एक आन्दोलन के रूप में श्री परमहंस पूज्यपाद स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संकल्प का वाहन बनकर प्राचीन योग विद्या के पुनरुत्थान का व्रत ले दिनों-दिन आगे बढ़ता जा रहा है, थोड़े ही समय में लोगों के हृदय में नई आशा और उत्साह का संचार करने में सफल हुआ है और मुझे तो ऐसा लगता है कि भगवान और दिव्य व्यक्तियों ने जगत-कल्याण के लिए हमें माध्यम भर बनाया है। और एक उज्ज्वल भविष्य शीघ्र ही आने वाला है।

इन थोड़े से वर्षों में ही I.Y.F. ने जनता के हृदय को उद्वेलित कर दिया है। जनता की ओर से सद्भावनाएँ, आर्थिक सहायता, रचनात्मक सहयोग इत्यादि उसी प्रकार आकर जुटते जा रहे हैं जैसे वर्षा से भरी हुई नदियाँ समुद्र की ओर दौड़ती चली जाती हैं। कई केन्द्रों में ध्यान और साधना के अभ्यास रेकार्ड करके टेपरेकार्डर द्वारा सिखलाए जा रहे हैं। सैकड़ों केन्द्रों में योगासन की फिल्में प्रोजेक्टर द्वारा दिखलाकर योगासनों के प्रति जनता में रुचि जागृत की जा रही है। गुरुदेव ने जो योगासन फिल्म तैयार की है, उसका समस्त भारत में चार हजार से ज्यादा बार प्रदर्शन हो चुका है और उस फिल्म को देखने वालों की संख्या का तो अन्दाज ही नहीं लगाया जा सकता। श्री गुरुदेव के तत्त्वावधान में इन अनेक वर्षों में यत्र-तत्र सैकड़ों शिविरों का आयोजन हुआ और उनमें लोगों ने व्यक्तिगत रूप से योग की सब क्रियाओं की व्यावहारिक शिक्षा पाई। योग और साधना की अनेक गुप्त बातों को आज गुरुदेव जनता के सम्मुख लाकर उन्हें कल्याण का मार्ग दिखा रहे हैं। फिल्म, प्रकाशन, साहित्य-वितरण, सभा, योग के क्लासों-कैम्पों का आयोजन, पुस्तकालयों की व्यवस्था, परिभ्रमण, योगोपचार, पुराने योग साहित्यों की खोज, दीक्षा इत्यादि अनेक ऐसे कार्य हो रहे हैं, जिनका मूल्यांकन नहीं किया जा सकता।

इधर I.Y.F. ने एक और नई दिशा ले ली है। मुंगेर में योग का स्कूल, जहाँ एक परम योगनिष्ठ साधु के द्वारा academic perfection के साथ शिक्षा दी जाती है, यह भारत क्या, विश्व के लिए एक नई चीज है! इस स्कूल की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि अपनी धरती, अपना समाज, अपना राष्ट्र और अपना पद छोड़े बिना राजा जनक की तरह योगी और विदेह बनने की व्यावहारिक प्रक्रिया गुरुदेव स्वयं सिखलाते हैं। सभी व्यक्ति बिना अपना समाज, कार्य और पेशा छोड़े, चाहे वे मिनिस्टर हों या एक छोटे ऑफिसर, लखपति हों या एक मामूली गृहस्थ–सभी योगियों के से आचरण और जीवन के रहस्यों की संक्षिप्त जानकारी व अभ्यासों की ट्रेनिंग, बिहार स्कूल ऑफ योग में केवल पन्द्रह दिन रहकर पा सकेंगे। केवल पन्द्रह दिन का समय वर्ष के किसी महीने और किसी पखवारे में निकालना मुश्किल नहीं। लोग छुट्टियाँ बिताने कहीं-न-कहीं जाते ही हैं। उसी प्रकार से अपने जीवन की मोटर को दुरुस्त करने के लिये लोग जीवन में कभी भी अवकाश निकाल कर एक बार बिहार स्कूल ऑफ योग में पन्द्रह दिन के लिये अवश्य आ सकेंगे, यदि उन्हें तीव्र इच्छा होगी।

शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के लिये यह आवश्यक है कि योग की कुछ क्रियाएँ सीखी जाएँ और कष्ट, चिन्ता, परेशानी और बीमारियों के खर्च से बचा जाय।

मुंगेर स्थित 'बिहार स्कूल ऑफ योग' श्री दीवान बहादुर केदारनाथ गोयनका जी के, जिन्हें लोग बिहार का कर्ण कहते हैं, सहायता व संरक्षण से मूर्तिमान् हुआ है। यह स्कूल एक सर्वथा नया प्रयोग है जो इसके कार्यक्रम को देखने से आपको पता चलेगा। इसका सिलेबस अनूठा और मौलिक है (मूल्य सिर्फ तीन रुपया, प्राप्ति स्थान स्वामी प्रार्थनानन्द, बिहार स्कूल ऑफ योग, मुंगेर)।

छपरा में भी 'सत्यानन्द योग रिसर्च इन्स्टीट्यूट' की स्थापना की तैयारी हो चुकी है और वहाँ से भी गुरुदेव की योग-विभूति का प्रसार होगा।

जिस महान् योग-आन्दोलन और यौगिक-संस्कृति के पुनरुत्थान का कार्य I.Y.F. ने उठाया है, उसमें एक-एक व्यक्ति के सहयोग, श्रम और सहायता की नितान्त आवश्यकता है। योग का बिगुल हमने बजा दिया है और भारत माँ के सभी सुपुत्र और कुपुत्र उसमें आहूत हैं, क्योंकि यह जीवन-निर्माण की एक योजना लेकर चला है। पूज्य गुरुदेव श्री परमहंस स्वामी सत्यानन्द जी हमारी प्रेरणा के स्रोत हैं और उनके चरणों में हमारा शतशः प्रणाम है।

–माँ योगशक्ति

स्वर योग भूमिका

योग-शास्त्र में आज भी विज्ञान और सत्य पर आधारित कुछ विद्याएँ हैं, जो बिल्कुल व्यावहारिक हैं। मनुष्य दैनिक जीवन में उनका प्रयोग कर फायदा उठा सकता है। जिस प्रकार ज्योतिष-शास्त्र एक विज्ञान है और उस पर लोग विश्वास करते व उपयोग में लाते हैं, उसी प्रकार कल्याणोपयोगी और भी बहुत-सी छोटी-मोटी विद्याएँ हमारे धर्म में हैं, जिनसे मनुष्य लाभ उठा सकता है।

योग का अर्थ ही है अपने अन्तर्जीवन की ओर उन्मुख होना। हमारा बाहर का जीवन अपूर्ण और अज्ञान से भरा हुआ है। अन्तर्जीवन ही अधिक ठोस और सत्य के निकट है। अन्तर्जीवन की भी कई अवस्थाएँ हैं, जो क्रमवार हैं। जब हम अपनी बहिर्मुख चेतना को अन्दर की दिशा की ओर मोड़ देते हैं तो हमारी कर्मेन्द्रियाँ और ज्ञानेन्द्रियाँ अधिक सूक्ष्म और ग्रहणशील हो जाती हैं। इससे हमारी ज्ञान-ग्रहण की शक्ति बढ़ जाती है।

योग के अन्तर्गत बहुत-सी ऐसी विद्याएँ आती हैं, जिनके अभ्यास और ज्ञान से प्रत्येक मनुष्य अपने जीवन को अधिक सुखी, चिन्तारहित और वैभवशाली बना सकता है। योग का विषय व्यावहारिक और प्रयोगात्मक है।

योग के अन्तर्गत जो अनेकों योग हैं, उन सब में मनुष्य पारंगत तभी हो सकता है, जब वह स्वयं अभ्यास करे। योग की कई शाखाऐं ऐसी हैं, जिनके द्वारा प्रतिदिन के कार्यों में तुम सफलता प्राप्त कर सकते हों। योग के अन्तर्गत नादयोग, मन्त्रयोग, तन्त्रयोग, लययोग, कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग, राजयोग सभी आ जाते हैं। यदि विचार और ज्ञान के साथ देखा जाय तो ये सभी मनुष्य के जीवन को अधिक विकसित और पूर्ण बनाने के लिए ही हैं। किसी भी योग-मार्ग का अवलम्बन लेकर मनुष्य स्वयं को अधिक योग्य और सुखी बना सकता है। वास्तव में आत्म-साक्षात्कार और भगवद्-दर्शन की इच्छा भी तो मनुष्य इसीलिए करता है कि वह जानता है कि इससे उसे आगे चलकर सुख की प्राप्ति होगी। अखण्ड आनन्द के लिए वह तत्काल के सुखों को त्यागता है। कहने का तात्पर्य यही है कि अध्यात्म, योग, धर्म और दर्शन

जैसी सभी विद्याएँ मनुष्य के जीवन का सर्वांगीण विकास करने के लिए ही आविष्कृत की गई हैं।

स्वर योग का व्यावहारिक महत्त्व

यहाँ मैं योग की एक ऐसी विज्ञान-शाखा की बातें तुम्हें बतलाना चाहता हूँ, जिसकी मदद से प्रतिदिन के कार्यों में सफलता, मनोरथों की पूर्ति, रोगों का शमन, दुर्घटनाओं से बचना, भविष्य जानना, इत्यादि अनेक महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी बातों का ज्ञान तुम स्वयं प्राप्त कर सकते हो।

स्वर योग एक स्वतंत्र विज्ञान है। इसका राजयोग, हठयोग इत्यादि से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं। अन्य योगों में मनुष्य को दीर्घकाल तक अभ्यास करना पड़ता है, किन्तु स्वरयोग में मनुष्य को प्रयोग करते-करते अनुभव भी होता जाता है। प्रत्येक प्रयोग में तुम अपनी सफलता-असफलता को तुरंत ही देख व जान सकते हो।

स्वर योग क्या है? शरीर के साथ उसका क्या सम्बन्ध है? इन्द्रियों के परे का ज्ञान भी इस विज्ञान के सहारे कैसे जाना जा सकता है? मृत्यु का समय कैसे जाना जाय? रोगी बचेगा अथवा नहीं? पुत्र उत्पन्न होगा या पुत्री? इन सब बातों को स्वर-योग के सहारे जाना जा सकता है। बीमारियों को भी तुम स्वयं दूर कर सकते हो। अग्नि बुझा सकते हो। सिर की पीड़ा दूर कर सकते हो। यह सब ज्ञान तुम स्वयं ही प्राप्त कर सकते हो। अत: श्रद्धावान् होकर तुम स्वयं प्रयोग करो व जानो।

भारत में अनेक सिद्ध स्वर योगी महात्मा हैं और प्राय: सभी योगी-महात्मा स्वर योग की जानकारी स्वयं रखते हैं। किन्तु इसकी जानकारी सर्व साधारण को नहीं है। आत्मज्ञान का अर्थ क्या होता है? अपने को जानना। सुकरात कहा करता था, Know Thyself. सभी संत-महात्मा और ज्ञानी यही तो कहते आ रहे हैं और मैं भी तुमसे यही कहता हूँ कि तुम अपने को पहले जानो और दुनिया को बाद में। तब तुम्हारे सारे काम ईश्वरीय और दिव्य होने लगेंगे।

स्वर योग में क्या है? तुम्हारी आत्मा ही तुम्हें बहुत-सी बातों का ज्ञान देती है। आत्मा तुम्हें वायरलेस मेसेज देती है पर तुम उसकी घंटी सुनते नहीं। सूचना ग्रहण करने में सतर्क नहीं रहते। तुम अपने कान, नेत्र और बुद्धि उसकी ओर लगाओ और तुम्हें सन्देश बराबर मिलेंगे। स्वर योग भी वायरलेस के संकेत हैं, जिसका साधन करने से सिद्धि तुम्हें प्राप्त होगी।

स्वर योग का रहस्य–प्राण

मनुष्य की सबसे स्वाभाविक क्रिया श्वसन-क्रिया है। प्रत्येक आदमी दिन-रात बराबर श्वास लेता रहता है। यह श्वसन-क्रिया वह नाक के दोनों छिद्रों से हर समय एक साथ करता रहता है। यह श्वसन-क्रिया देखने में तो एकदम साधारण है, पर है बड़ी महत्त्वपूर्ण, गूढ़ और रहस्य से भरी हुई। प्राय: हम लोग यह समझते हैं कि नासिका के दोनों छिद्रों से समान मात्रा में ही हम श्वास अन्दर लेते और निकालते होंगे। पर सचमुच में यह बात नहीं। नासिका के दोनों छिद्रों से एक समान श्वास प्रवाह सदा नहीं होता। प्राय: एक नासिका से अधिक और दूसरी से कम होता है। मेडिकल साइन्स ने इस विषय पर अभी तक कोई प्रकाश नहीं डाला है। किन्तु हमारे यहाँ अति प्राचीन काल से ही 'स्वर शास्त्र' की परम्परा एवं स्वर योग का अभ्यास चला आ रहा है। बिना स्वर शास्त्र के ज्ञान के ज्योतिष अधूरा है। स्वर योग का ज्ञानी ही परम योगी माना गया है– *स्वर-ज्ञानरतो योगी स योगी परमो मत:*।

श्वास की वैज्ञानिकता

योग के प्रत्येक अंग और साधना में श्वास-प्रश्वास की क्रिया को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बतलाया गया है। श्वास की ही प्रत्यंचा पर मन को चढ़ाकर आत्मा का भेदन किया जाता है। इस प्रकार यह प्राण आध्यात्मिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह न केवल स्थूल शरीर का रक्षक, वरन् ऊपर जाने का भी मार्ग है। श्वास के साथ प्रवाहित होने वाले प्राण के अनेक गुप्त प्रयोग हैं जिसका ज्ञान केवल दीक्षा के द्वारा ही दिया जाता है।

योग-शास्त्र श्वास-प्रश्वास को 'प्राण-वाहिनी' नाड़ी मानता है। श्वास के द्वारा प्राण-शक्ति का संचार पूरे शरीर में होता है। मेडिकल साइन्स फेफड़ों के कार्य को मेकैनिकल और बायो-औरगैनिक मानता है। किन्तु, योगशास्त्र इसका सम्बन्ध सूक्ष्म-तत्त्व 'प्राण' तथा सूक्ष्म 'शक्ति-उत्पादक-चक्रों' से जोड़ता है। प्राण के विषय में साधना करने पर साधकों को जैसा-

कुछ अनुभव होता है, उसे वे भाषा के जगत् में अनेक नामों व व्याख्याओं से स्पष्ट करने की कोशिश करते हैं। कोई उसे life-current कहते हैं, कोई life-force, तो कोई-कोई light principle कह कर समझाने की कोशिश करते हैं। इस प्रकार जीवन-धारा, जीवनी-शक्ति, मैग्नेटिक-करेन्ट, प्रकाश-सिद्धान्त इत्यादि नामों से प्राणों की ही क्रिया व शक्ति को समझाने की कोशिश होती है। प्राणों का रंग चमकीला होता है, जिसे स्थूल आँखों से देखा नहीं जा सकता। परन्तु जो तीव्र साधना करते हैं उन्हें यह प्राण की धारा चाँदी के प्रकाश या डोरी की तरह नासिका से बाहर निकलती और अन्दर जाती दिखाई देती है।

प्रत्येक श्वास और प्रश्वास में प्राणशक्ति का बहाव होता है। प्राणशक्ति के ऊपर cosmic force या current का प्रभाव पड़ता है। यह समस्त जगत् में व्याप्त एक परम शक्ति है। हमारा शरीर एक अद्भुत यंत्र है, जिसके ऊपर समस्त विश्व की सूक्ष्म और अदृश्य शक्तियों का प्रभाव याने कम्पन का आघात पड़ता रहता है। जो कम्पन या आघात तीव्र होते हैं उन्हें तो हम ग्रहण कर लेते हैं पर जो अत्यन्त सूक्ष्म होते हैं उन्हें भी शरीर ग्रहण तो करता है पर distinguish और interpret नहीं कर पाता। शरीर के अन्दर ही कुछ स्थूल वस्तुओं या क्रियाओं को माध्यम बनाकर हम कोशिश करें तो उन प्रभावों और कम्पनों को interpret कर सकते हैं, क्योंकि इन कम्पनों का प्रभाव पढ़ने से शरीर की क्रियाओं में कुछ परिवर्तन होता है, चाहे मनुष्य इनसे परिचित हो अथवा न हो। जिस प्रकार मौसम का पता लगाने वाले यन्त्र पर, जिसे सीस्मोग्राफ कहते हैं, कई घंटे बाद घटने वाली घटना या मौसम-परिवर्तन का पता पहले ही चल जाता है, उसी प्रकार निरन्तर अभ्यास व परिश्रम से इस शरीर यंत्र को भी हम एक प्रकार का सीस्मोग्राफ बना सकते हैं। जिस तरह परछाई से वस्तु के अस्तित्व का और धूम्र से अग्नि का आभास होता है अथवा भरे-काले बादलों से वर्षा का आगमन मालूम होता है, उसी प्रकार 'स्वरों' के माध्यम से भी भूत-भविष्य, होनी-अनहोनी की अनेक जानकारियाँ मनुष्य पा सकता है। इसमें विचित्रता कुछ भी नहीं, किन्तु दीर्घकालीन, निरन्तर और सत्कार सेवित अभ्यास से स्वर योग सिद्ध होता है। श्रद्धावान् और दृढ़ विश्वासी को ही स्वर योग के अभ्यास में सफलता मिलती है।

योग का सैद्धान्तिक महत्त्व

किसी भी विद्या में मनुष्य पारंगत तभी होता है, जब उसमें वह रुचि के साथ अभ्यास करे। जैसे जगत् में अन्य विद्याओं का पठन-पाठन होता है, उसी प्रकार योग भी एक विद्या है। किन्तु यह कला विभाग नहीं है, बल्कि टेक्नॉलोजी और साइन्स का सगा-सम्बन्धी है। यहाँ थ्योरी से ज्यादा आवश्यक है प्रैक्टिकल। जहाँ विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने वाले को विद्यार्थी कहते हैं, वहाँ योग का पठन और अभ्यास करने वाले को साधक कहा जाता है।

स्वर योग के विद्यार्थी की सफलता उसकी सच्चाई, लगन और निष्ठा पर ज्यादा निर्भर करती है। योग में अनमने, half hearted, half minded भाव से तुम कुछ नहीं कर सकोगे। जो भी थोड़ा बहुत करो, उसे पूर्ण भाव और मनोयोग से करो। योग में compromise नाम की चीज नहीं। ऐसे लोगों को ही स्वर योग विज्ञान में सफलता मिल सकती है। अनमना भाव रखने से मानसिक शक्ति leak out करती है। जैसे घड़े में छेद होने से पानी नहीं ठहरता, उसी प्रकार अधूरे मन से मानसिक शक्ति जर्जर हो जाती है।

यह प्रश्न प्राय: लोगों के मन में उठता है कि यदि सभी इस प्रकार का अभ्यास न कर सकें तो वे क्या करें। उन्हें भी योग में रुचि रखना और यथाशक्ति अभ्यास तो जरूर करना चाहिए। किन्तु बहुत-सी बातों का यदि अभ्यास न भी किया जा सके तो भी बौद्धिक ज्ञान याने थ्योरेटिकल ज्ञान भी रखना अच्छा होता है। ज्ञान रखना भी बहुत बड़ी चीज है।

डॉक्टर सभी नहीं बनते किन्तु डॉक्टर का नाम-पता सब लोग मालूम करके रखते हैं। पोस्ट-ऑफिस में हम भले ही काम नहीं करते पर उपयोग और व्यवहार लायक सभी जानकारी तो हम जरूर रखते हैं। हम प्रशासक नहीं बनते तो भी प्रशासन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण बातों की जानकारी हम अवश्य रखते हैं। हम जानते हैं कि साइन्स पढ़ने वाले सभी विद्यार्थी जगदीश बोस और आइन्सटाइन नहीं बनेंगे, तो भी साइन्स की शिक्षा विद्यालयों में दी जा रही है। इसी प्रकार योग से भी प्रत्येक स्त्री-पुरुष, बच्चे और बूढ़े का परिचय होना जरूरी है। योग से अधिक उपयोगी विद्या दूसरी नहीं, क्योंकि योग का सीधा सम्बन्ध मनुष्य के अपने अस्तित्व और जीवन से है। यौगिक क्रियाएँ साधुओं की बपौती नहीं वरन् गृहस्थों के दैनिक काम की चीज है। हर प्रकार के योग का प्रारम्भिक रूप सर्वसाधारण के उपयोग के लिए है।

स्वरों का परिचय

'स्वर' का यहाँ अर्थ नाक के दोनों छिद्रों में निरन्तर प्रवाहित होने वाली प्राणवायु है। 'दाहिने स्वर' से दाहिनी नासिका में प्रवाहित होने वाली वायु तथा 'बायें स्वर' से बायीं नासिका में प्रवाहित होने वाली वायु का तात्पर्य है। इन्हें 'इड़ा' और 'पिंगला' नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। 'नाड़ी' शब्द भी स्वर का ही पर्यायवाची है। दाहिने स्वर को सूर्य नाड़ी और बायें स्वर को चन्द्र नाड़ी कहते हैं। स्वर योग के सन्दर्भ में जब योगी सूरज के प्रकाश और चाँद के प्रकाश के बारे में कहते, सुनते व लिखते हैं, तो उसका अर्थ बाहर के सूर्य और चन्द्र के प्रकाश से न होकर, सूर्य और चन्द्र नाड़ी से होता है।

जिस समय दाहिनी नाक से अधिक स्वर चलता हो, उस समय सूर्य नाड़ी चल रही है ऐसा समझना चाहिए। यदि बायीं नाक से अधिक प्रवाह हो तो समझें कि चन्द्र नाड़ी चल रही है। नाक का प्रवाह एक-एक घंटे के बाद परिवर्तित होता रहता है। इसे ही स्वर का बदलना कहा जाता है। एक घंटे सूर्य स्वर चलता है तो एक घंटा चन्द्र स्वर। स्वर परिवर्तन के समय स्वरों का सन्धि-समय भी आता है। सन्धि-काल में नाक के दोनों स्वरों का प्रवाह समान हो जाता है। समान प्रवाह अध्यात्म के अभ्यास का समय होता है। स्वर योगी अनेक क्रियाओं के अभ्यास के द्वारा इच्छानुसार समान प्रवाह चलाते हैं।

समान-प्रवाह ही सुषुम्ना नाड़ी है। इसे 'शून्य स्वर' या 'जीव स्वर' भी कहते हैं। दोनों नाड़ियों के संधि-काल में सुषुम्ना नाड़ी बहती है। इसे कोई-कोई 'रिक्त स्वर' भी कहते हैं। चूँकि सुषुम्ना के प्रवाह काल में कोई भी सांसारिक कर्त्तव्य शुभफलदायक नहीं होता इसीलिए इसे रिक्त स्वर कहा जाता है।

इस स्वर विज्ञान को सबसे पहले शिव जी ने, जो 'योग विद्या' के आदि गुरु माने जाते हैं, पार्वती जी को सिखलाया। पार्वती जी ने जगत् के कल्याण के लिए शिव जी से अनेक साधनाओं और उपयोगी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त किया था।

स्वर योग के अधिकारी

स्वर योग के ग्रन्थों में स्वर योग की दीक्षा का पात्र कैसा हो, इस बात पर प्रकाश डाला गया है। जो शान्त और शुद्ध स्वभाव के व्यक्ति हैं, वे ही इस योग के अभ्यास के अधिकारी हैं। सभी मनुष्यों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। दृढ़ चित्त वाला पुरुष, जो सदाचारी हो, कृतज्ञ भाव वाला हो तथा गुरु का भक्त हो, उसी को यह विद्या सिखलाई जानी चाहिए। स्वर योग की कक्षा में प्रवेश पाने के लिए इतने सर्टिफिकेट आपको जरूरी हैं। ऐसा क्यों?

प्राय: साधारण व्यक्ति ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, घृणा, ममता, स्वार्थ इत्यादि भावनाओं का शिकार रहते हैं। ऐसे व्यक्तियों को किसी प्रकार की गूढ़-विद्या सिखलाने में उनको भी हानि तथा दूसरों को भी हानि होने की सम्भावना है। ऐसे व्यक्ति जो संवेगों के वेग को रोक नहीं सकते, नियंत्रण में नहीं रख सकते, उनका चित्त चंचल और विक्षुब्ध रहता है। इस कारण उनका मन उस ज्ञान को ग्रहण करने के लिए सर्वथा अनुपयुक्त समझा जाता है। यदि किसी मनुष्य में हिंसा, प्रतिकार और भय की भावना हो और वह भविष्य की शुभ या अशुभ घटना को जान ले तो उस पर स्वाभाविक प्रतिक्रिया क्या होगी, आप स्वयं अनुमान कर सकते हैं। अपने स्वार्थ से प्रेरित होकर तो मनुष्य अनुचित कार्य भी कर सकता है। स्वर योग के समुचित साँगोपांग अभ्यास से मनुष्य को 'त्रिकाल' का ज्ञान होता है। इसलिए मनुष्य को शांत, शुद्ध, दृढ़, कृतज्ञ, गुरु-भक्त एवं सदाचारी होना आवश्यक बतलाया गया है। अशुद्ध प्रकृति वालों को स्वर योग का सही-सही ज्ञान नहीं हो पाता। और यदि ज्ञान हो भी तो सुख और दु:ख, हानि और लाभ के द्वन्द्व उन्हें मथ डालेंगे। वे अपने दिल और दिमाग को अपने वश में नहीं रख पाएँगे।

अयोग्य व्यक्तियों को विद्या सिखलाने से वे दुरुपयोग करते हैं, या फिर विद्या सिद्ध न कर पाने पर विद्या की निन्दा करते हैं। इससे इन गुप्त विद्याओं के प्रति लोगों का विश्वास कम हो जाता है तथा गलत धारणाएँ समाज में प्रचलित हो जाती हैं। इसीलिए शास्त्रों में अनधिकारियों की भी चर्चा की गई है। दुष्ट, दुर्जन, क्रोधी, नास्तिक, अधीर और दुराचारी को स्वर योग कभी नहीं सिखलाना चाहिए। वास्तव में विनयी, शीलवान्, कुशाग्रबुद्धि और मेधावी शिष्यों को कोई भी ज्ञान देने से वह विद्या फलवती होती है और गुरु का यश भी बढ़ता है। जिस प्रकार बालू को सींचने से वह उपजाऊ नहीं हो

सकता किन्तु मिट्‌टी को सींचने से फल की प्राप्ति होती है, उसी प्रकार स्वर योग अधिकारी को देने से मान-यश की वृद्धि होगी।

योग्य व्यक्तियों को योग विद्या सिखलाने से वह अच्छी तरह फैलती और मनुष्यों का कल्याण करती है। अच्छी जमीन में बीज डालने से वह पनपता है और अच्छा फल लाता है। प्राचीन काल में गुरु योग्य व्यक्तियों को ही अपनी विद्या सिखलाते थे। अधिकारत्व का आधार मनुष्य का स्वभाव और चरित्र होता है। occult विद्याओं को सीखने के लिए eligible होना पड़ता है। ज्ञान और सत्य का स्वरूप एक समान होता है पर अधिकारी के प्रयोग और प्रस्तुत करने के ढंग में अन्तर पड़ जाता है। इसलिए स्वर योग की दीक्षा अधिकारी शिष्य को ही मिलनी चाहिए। यह शास्त्र मत है। अधिकारी शिष्य साधना सच्चाई से कर सिद्धि को प्राप्त करेगा। अनधिकारी शिष्य प्रमाद से अभ्यास में नियमित नहीं रहेगा और योग सिद्धि में असफलता प्राप्त कर विद्या को ही अपरिपक्व समझेगा।



स्वर योग का महत्त्व

स्वर शास्त्र में स्वर को आत्म-स्वरूप बतलाया गया है। स्वर ही सब कुछ है, ऐसा अनेक स्थानों पर उल्लेख आता है। कहीं लिखा हुआ मिलता है कि स्वर ही सम्पूर्ण वेद है और स्वर ही सम्पूर्ण शास्त्र है। इसका मतलब क्या है? स्वर को इतना अधिक महत्त्व क्यों दिया गया है? यह विचारने की चीज है। वास्तव में स्वर के ही माध्यम से प्राण-शक्ति का संचार होता है। प्राणशक्ति अथवा प्राण के ही द्वारा हमारे सारे ज्ञान और कर्म के व्यापार सम्पन्न होते हैं। प्राणशक्ति के ही सहारे पुरी में रहने वाला पुरुष इस जड़ और स्थूल शरीर को भी चेतन, सक्रिय और ज्ञानमय बनाए रखता है।

मनुष्य के अन्दर ही सारा ज्ञान भण्डार है पर उस ज्ञान को प्रकट करने के लिए बढ़िया साधन या अच्छा यन्त्र उसके पास नहीं। मन, बुद्धि, चित्त और इन्द्रियाँ—ये ही उस ज्ञानमय पुरुष के यंत्र हैं। ये यंत्र जिस क्वालिटी के होंगे, उतनी ही मात्रा और क्वालिटी में हमारे अन्दर का पुरुष ज्ञान प्रकट करता है। किन्तु इन सब यंत्रों का पोषण करने वाला 'प्राण' है। प्राण भी पुरुष की ही उपाधि है। स्वर का मतलब प्राण ही है। इसीलिए स्वर को आत्म-स्वरूप, ब्रह्म-स्वरूप, वेद और शास्त्र कहा गया है। योग के ज्ञान और अभ्यास में प्रवृत्त होने पर आपको स्वर और प्राण का पूर्ण महत्त्व मालूम होगा। प्राणायाम में प्राणों को ही साधने की क्रिया बतलाई जाती है। अजपा में भी प्राण के ही सहारे साधना करनी पड़ती है। प्राण साधना से ही टेलीपैथी सिद्ध होती है। वेद-वेदान्त, शास्त्र-पुराण सभी प्राण विज्ञान के अन्दर ही आते हैं।

स्वर योग की महिमा

स्वर शास्त्र के अनुसार स्वर ज्ञान से मुक्ति प्राप्त होती है। स्वर के भेद को जानने वाला परम सुखी होता है। जो मनुष्य नाड़ी की गति और भेद ठीक-ठीक जान पाता है, वह धन, कीर्ति, यश एवं मोक्ष प्राप्त करता है। स्वर योगी सर्वज्ञ बनता है। मित्र, शत्रु और लक्ष्मी पर विजय प्राप्त करता है। इच्छानुकूल सन्तान

की प्राप्ति करता है। पीछे की घटित व आगे घटने वाले परिणाम को पहचान सकता है। स्वर ज्ञान को भगवान शंकर सबसे उत्तम ज्ञान और सबसे उत्तम धन मानते हैं। सचमुच ही यदि कोई व्यक्ति प्राणशक्ति पर विजय प्राप्त कर ले, तो वह सबसे बड़ा ज्ञानी और धनी है। इसीलिए पार्वती जी से शंकर जी ने कहा–

स्वरज्ञानात्परं गुह्यं स्वरज्ञानात्परं धनम्।
स्वरज्ञानात्परं ज्ञानं न वा दृष्टं न वा श्रुतम्॥

अर्थात् स्वर ज्ञान से बढ़कर गुह्य ज्ञान या धन न मैंने देखा है और न सुना है। संसार में जो कुछ शुभ अथवा अशुभ घटता रहता है, उसे योगी स्वरों पर पड़ने वाले प्रभाव के सहारे जानते हैं। इसी तरह योगियों को भूत और भविष्य का ज्ञान होता है। मनुष्य का चलना, घूमना, सोना, खाना, मल व मूत्र त्यागना, बोलना इत्यादि सभी कर्मों का आधार है स्वर याने प्राणक्रिया। स्वर ही सृष्टि के सभी जीवों के पालन का आधार है और स्वर से ही उनका नाश भी निश्चित होता है। सारे ब्रह्माण्ड का आधार भी स्वर है। मनुष्य की आयु का आधार भी स्वर ही है। स्वर में प्राण बहता है और प्राण ही ब्रह्म का रूप है। प्राण की महिमा बड़े विस्तार से आप प्राचीन ग्रन्थों में पाएँगे। इसीलिए वही योगी है, वही ज्ञानी है, जो स्वर के ज्ञान, भेद, क्रिया, उपयोग और परिणाम को ठीक-ठीक जानता हो। स्वर योग का अभ्यास बड़ा ही उपयोगी और सिद्धि याने सफलता देने वाला है। स्वर शास्त्र तो यहाँ तक कहता है कि स्वर ज्ञानी के चरणों के नीचे लक्ष्मी रहती है और वह जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ सुख और ऐश्वर्य की उसे प्राप्ति होती है।

ऋषियों के मत के अनुसार स्वर ज्ञानी मृत्युलोक में उसी प्रकार पूज्य है, जिस प्रकार वेदों ने ॐकार, ब्राह्मण और सूर्य को पूज्य माना है। तीनों प्रकार की नाड़ियों के भेद को जानने वाला पुरुष दुनिया के किसी भी रसायन (रस+आयन=आनंददायक वस्तु) से लाख गुना श्रेष्ठ माना जाता है। ऋषियों ने नाड़ी-भेद का विवेचन करने वाले व्यक्ति द्वारा दिया गया थोड़ा-सा ज्ञान भी इतना अमूल्य माना है कि वे कहते हैं कि लाखों-सहस्त्रों मुद्राएँ देकर भी मनुष्य उसकी पूर्त्ति नहीं कर सकता। किन्तु अधिकारी शिष्य ही इस विद्या में सिद्धि प्राप्त कर सकता है। ये सब बातें प्रथम बार पढ़ने पर आपको अपरिचित या अविश्वनीय लगेंगी, परन्तु अभ्यास और साधना में आगे बढ़ने पर योग के नियम मालूम पड़ेंगे।

यह विद्या जनसाधारण के उपयोग में भी आ सकती है। सरलहृदयी, सहज-विश्वासी व्यक्ति स्वर योग के माध्यम से अपने अंतर की आवाज और सन्देश को ग्रहण कर सकता है। अंदर की आवाज कभी भी आपको गलत डाइरेक्शन नहीं दे सकती। उस आवाज को पहचानने के लिए आप स्वरों को मीडियम बनाइए। अंदर की आवाज ही टेलीपैथिक साइन्स है। परन्तु उसे अनूदित करने का साधन स्वर है। स्वर ही घटनाओं का इन्डिकेटर और सिग्नल बन जाता है। यदि गृहस्थ नित्यप्रति के कर्म करते समय स्वरों का आधार लेकर उस कर्म को करने या न करने का निश्चय करे, तो वह 75 प्रतिशत कार्यों में सफलता पा सकता है। सिद्ध हो सकने वाले कर्म में पुरुषार्थ लगाने से अवश्यमेव कीर्ति, यश और आनन्द की प्राप्ति होगी। असफल होने वाले कर्म में प्रवृत्त न होने से व्यक्ति अनेक परेशानियों, धन के अपव्यय, समय की बरबादी, अशान्ति, निराशा, अन्तर्द्वन्द्व और पश्चात्ताप इत्यादि यन्त्रणाओं से मुक्ति पा जाता है।

स्वर योग का विज्ञान

स्वरों के पीछे कौन-सा विज्ञान है, इसे कहना बड़ा मुश्किल है। ईश्वर और उसकी सृष्टि, दोनों अद्‍भुत एवं अनन्त हैं। ईश्वर की सृष्टि की विचित्रता का मूर्तिमान् रूप है मनुष्य। मनुष्य की रचना कैसी है और उसमें कितनी शक्तियाँ हैं, यह बतलाना बहुत कठिन है। योगी और ऋषि तो यही मानते हैं कि मनुष्य उसी ब्रह्म का अंश है जो स्वयं अनिवाशी, अजन्मा, अव्यक्त, अनादि, सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ और सर्वसमर्थ है। महान् संतों की जीवनियों और घटनाओं को आप पढ़ें तो ईश्वर-प्रदत्त अद्‍भुत शक्तियों का पता चलेगा। अभी हमें मनुष्य नामी जीवधारी की सभी सुप्त शक्तियों एवं शारीरिक रचना का पूर्ण ज्ञान नहीं है। किन्तु हमारे प्राचीन ऋषियों और योगियों को इसका पता पहले से था।

मानव-शरीर एक ऐसा यंत्र है जिसके माध्यम से अनेक प्रकार का ज्ञान संचित किया जा सकता है। सृष्टि में कई ऐसे तत्त्व तथा शक्तियाँ हैं जो अदृश्य रूप से हमारे शरीर, मन एवं विचारों पर प्रभाव डालते रहते हैं। इसका प्रमाण आप ऐसे लें। हमारा कोई भी विचार बिल्कुल नया नहीं होता। सभी विचारों के पीछे ज्ञान एवं कर्म इन्द्रियों के ही अनुभूत विषय होते हैं। उन्हीं का आधार लेकर कोई विचार हमारे मन में आता है। इसी प्रकार कोई सपना भी पिछले अनुभवों के आधार पर ही प्रकट होता है। इस प्रकार हमारे वर्तमान कर्म और क्रिया की डोर अतीत में बहुत दूर तक है।

सूक्ष्म जगत् में प्रत्येक विचार और घटना का रेकॉर्ड कायम रहता है और इन्हीं से अदृश्य प्रभाव हमारे ऊपर सदा-सर्वदा पड़ते रहते हैं। इसके अतिरिक्त नक्षत्र, ग्रह, तिथि, वार, सूर्योदय, सूर्यास्त इत्यादि का भी हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता रहता है। बहुत-से लक्षणों के द्वारा हमें बहुत-सी घटनाओं का ज्ञान हो जाता है। इसी प्रकार स्वरों के प्रवाह और तत्त्वों के ज्ञान से बहुत-सी घटनाओं को जाना जा सकता है। राख देख कर यह अनुमान किया जा सकता है कि यहाँ अग्नि जली होगी। धुआँ देखकर अग्नि के होने का अनुमान, आंधी देखकर पानी आने की आशंका, काले बादल देखकर वर्षा की प्रतीक्षा या सर्द हवा बहती देख कहीं हिमपात होना जैसे समझा जा सकता है, वैसे ही स्वर के द्वारा अनेक बातों की जानकारी प्राप्त की जाती है। समुद्र में रहने वाले मल्लाह आकाश का रंग देखकर ही तूफान के आगमन को समझ लेते हैं। ठीक इसी प्रकार स्वरों के प्रवाह में जो प्रेशर या force रहता है उससे शुभ या अशुभ को जाना जा सकता है।

स्वर क्यों बदलता है? क्यों एक स्वर में कम प्रवाह और दूसरे में पूरा प्रवाह रहता है? यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। पर ऐसा ही होता और रहता है। इसका सम्भावित कारण यह हो सकता है कि मनुष्य के दोनों फेफड़े एक समान गति से नहीं चलते। एक घंटे तक एक फेफड़ा अधिक कार्य करता है और उतनी देर दूसरा फेफड़ा कम काम करता याने विश्राम लेता है। एक-एक घंटे के अनन्तर दोनों फेफड़ों की ड्यूटी बदलती रहती है। ड्यूटी बदलने के समय कुछ देर के लिए दोनों नासिकाओं का प्रवाह समान हो जाता है। बदलने का तथा प्रत्येक स्वर के प्रवाह का क्या समय और क्या नियम है, इसे अधिकारी व्यक्तियों को गुरु से अवश्य सीखना चाहिए। यहाँ पर भी इस विषय को सरल कर समझाया जायेगा। पुस्तक से भी यथासम्भव मदद लेकर सीखें।

इन सब विज्ञानों का आज जगत् में प्रचार करना एवं उनमें लोगों की श्रद्धा और विश्वास उत्पन्न करना अत्यन्त आवश्यक है। यह है आध्यात्मिक टैक्स जो आध्यात्मिक पूँजी या सम्पत्ति के उपार्जन होने पर सभी को देना पड़ता है। इस योग के ज्ञान-दरबार में कोई पूर्णरूपेण प्रवेश तब तक नहीं पा सकता जब तक वह जगत्-कल्याण करने के लिए तैयार नहीं है। थोड़ी बहुत 'स्वान्त:सुखाय साधना' तो सभी कर सकते हैं पर इन सब विद्याओं का सिद्ध ज्ञान विरले अधिकारी शिष्य ही पाते हैं। सिद्धि चित्त शुद्धि, आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि और नाड़ी शुद्धि पर निर्भर करती है।

स्वर योग का विज्ञान

गुह्याद् गुह्यतर सारमुपकारप्रकाशनम्।
इदं स्वरोदयं ज्ञानं ज्ञानानां मस्तके मणि:॥

स्वरोदय ज्ञान अत्यन्त गोप्य एवं छिपी हुई वस्तु है किन्तु इसका सार उपकारों का प्रकाशक है। यह सब ज्ञानों का शिरोमणि है।

स्वर ज्ञान अपने शरीर में स्थित उत्तम ज्ञान है। यह सारा ब्रह्माण्ड पंच तत्त्वों से पैदा हुआ है—आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी। इन्हीं पाँच तत्त्वों से मनुष्य का शरीर भी निर्मित है। ये पाँच तत्त्व सूक्ष्मरूप से हमारे शरीर में स्थित और क्रियावान् हैं। स्वर का सम्बन्ध वायु तत्त्व से भी है और अन्य तत्त्वों से भी। योगीजन तत्त्वों और नाड़ियों के भेद का ज्ञान रखते हैं और उनके अनुसार ही स्वरों का फल निश्चित करते हैं। स्वर विज्ञान की सफलता के लिए तत्त्व-साधना भी करनी चाहिए। नाड़ी, प्राण और तत्त्व—तीनों के ज्ञान से स्वर-सिद्धि होती है।

स्वर योग में नाड़ियों का स्थान

शरीर के मध्य में नाभि-स्थान से असंख्य नाड़ियाँ निकली हुई हैं। योगीजनों का कहना है कि शरीर में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं। सब नाड़ियों में दस नाड़ियाँ प्रधान एवं श्रेष्ठ हैं। ये दस नाड़ियाँ हैं—इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी। दसों में पहली तीन नाड़ियाँ उत्तम हैं। इड़ा नाड़ी का स्थान वाम भाग में, पिंगला का दक्षिण भाग में और सुषुम्ना का मध्य देश में है। गान्धारी बाएँ नेत्र में और हस्तिजिह्वा दाहिने नेत्र में है। दाहिने कान में पूषा नाम की नाड़ी है, बाएँ कान में यशस्विनी और मुख में अलंबुषा है। लिंग देश में कुहू और गुदा स्थान में शंखिनी है। इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना प्राण मार्ग में आश्रित समझी जाती हैं।

स्वर योग और वायु

नाड़ियों का आश्रय वायु है इसलिए शरीर में स्थित वायु के बारे में भी स्वर योगी को जानना आवश्यक है। पाँच वायु प्रधान हैं, जो शरीर के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित हैं। उनके नाम हैं—प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान। प्राण वायु शरीर के ऊपरी भाग में रहता है और अपान वायु निम्न भाग में। समान वायु नाभि देश में, उदान कण्ठ में और व्यान सारे शरीर में व्याप्त रहता है। इसके अतिरिक्त नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त और धनंजय नाम के वायु हैं जिनके द्वारा विभिन्न कर्म जैसे उगलना, छींकना, नेत्रोन्मीलन, विजृंभण इत्यादि कर्म सम्पन्न होते हैं। ये दस वायु सब नाड़ियों में व्याप्त हैं।

इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का प्रवाह प्राणवायु के द्वारा होता है। इन्हीं नाड़ियों के आधार पर स्वर ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इड़ा का स्थान वाम भाग में है इसलिए जब बायां स्वर चलता हो तो समझना चाहिए कि इड़ा नाड़ी चल रही है। जब दाहिना स्वर चलता हो तो समझना चाहिए कि पिंगला नाड़ी का कार्य अभी प्रधान है। सम स्वर होने का अर्थ है कि सुषुम्ना में प्राण प्रवाहित हो रहे हैं। इड़ा में चन्द्रमा स्थित है और पिंगला में सूर्य। सुषुम्ना में हंस स्थित है। हंस जीवात्मा को कहते हैं और इसे शम्भु रूप भी कहा जाता है।

श्वास में 'सकार' और प्रश्वास में 'हकार' की ध्वनि होती है। हकार शिव या सूर्य रूप है और सकार शक्ति या चन्द्रमा रूप। जो योगी एकाग्रचित और समाहित होकर सूर्य और चन्द्र मार्ग को जानने का अभ्यास करते हैं वे कालान्तर में सर्वज्ञ बनते हैं। उन्हें भूत और भविष्य का ज्ञान प्राप्त होता है—

चन्द्र-सूर्य-समभ्यासं ये कुर्वन्ति सदा नराः।
अतीतानागतज्ञानं तेषां हस्तगतं भवेत्॥

नाड़ी-विचार या स्वर-विचार चंचलता की अवस्था में करना निषिद्ध है। तत्त्व का भी ध्यान हलचल के समय नहीं करना चाहिए। जब मन और प्राण दोनों स्थिर हों तब तत्त्व का ध्यान करना उचित है। स्वर-विचार के साथ-साथ तत्त्व-विचार भी करना आवश्यक होता है।

स्वरों की पहचान

अब स्वर के विषय को लें। नासिका के दोनों छिद्रों से एक समान प्रवाह हमेशा नहीं होता। इसे जानने के लिए आप नाक के बाएँ छिद्र को बन्द कर दाहिने

से जोर से नि:श्वास बाहर निकालें। पुन: दाहिने छिद्र को बंद कर बाएँ से श्वास फेंकिए। अब दोनों प्रवाहों की तुलना कर पहचानिए कि किस नासिका से श्वास पूरे प्रवाह के साथ आ रहा है और किसमें अवरुद्ध मालूम होता है। कभी-कभी दोनों में समान प्रवाह केवल एक मिनट के लिए होता है। इस तरह कभी चन्द्रस्वर, कभी सूर्यस्वर और कभी सुषुम्ना में स्वर बहता रहता है।

स्वरों के बहने का समय प्रकृति द्वारा नियत किया हुआ है। जिस प्रकार दिन, रात, मौसम, ग्रह इत्यादि की गति और नियम निश्चित हैं, उसी प्रकार स्वरों का भी समय निश्चित है। इसलिए स्वर योग के अभ्यासी को स्वर-प्रवाह के समय को अच्छी तरह जान लेना व कण्ठस्थ कर लेना चाहिए। यह याद रखें कि–

- स्वर-प्रवाह का समय सूर्योदय से निश्चित किया जाता है।
- स्वर-प्रवाह प्रति एक घंटे के बाद बदल जाता है।
- स्वर-बदलने के संधि समय में सुषुम्ना चलती है।
- सुषुम्ना का प्रवाह एक से तीन मिनट रहता है।
- स्वरों का प्रवाह अभ्यास से इच्छानुसार बदला जा सकता है।

स्वरों का समय

स्वर प्रवाह जानने के लिए पक्ष-ज्ञान आवश्यक है। हर पक्ष में स्वर प्रवाह का समय नियमित रूप से बदलता रहता है।

शुक्ल पक्ष–शुक्ल पक्ष के प्रथम तीन दिन सूर्योदय के समय से एक घंटे तक चन्द्र नाड़ी बहती है। एक घंटे के पश्चात् सूर्य नाड़ी। पुन: एक घंटे के बाद चन्द्र नाड़ी। यह क्रम दिन के चौबीस घंटे तक चलता रहता है। किन्तु यह भी याद रखो कि प्रथमा, द्वितीया और तृतीया में सूर्योदय के साथ चन्द्रनाड़ी बहनी शुरू होती है। तीन दिन के बाद क्रम बदलता है और चतुर्थी, पंचमी तथा षष्ठी को सूर्योदय के साथ सूर्य नाड़ी का बहाव प्रारम्भ होता है। पुन: सप्तमी, अष्टमी अैर नवमी को पहले घंटे से चन्द्रनाड़ी बहनी शुरू होती है। दशमी, एकादशी और द्वादशी को सूर्यनाड़ी से शुरूआत तथा त्रयोदशी, चतुर्दशी और पूर्णिमा को चन्द्रनाड़ी का प्रथम घंटे में बहना निश्चित है।

कृष्ण पक्ष–कृष्ण पक्ष में प्रथमा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी तथा अमावस्था को सूर्योदय के प्रथम घंटे में सूर्यनाड़ी का बहना निश्चित है। चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी और द्वादशी को पहले चन्द्र नाड़ी का बहाव शुरू होगा।

चूँकि स्वर एक-एक घंटे पर बदलते रहते हैं, इसलिए दिन के चौबीस घंटे में कुल बारह घंटे सूर्यनाड़ी बहती है। स्वर के ये नियम अटल हैं। जब इनमें परिवर्तन आए तो समझो कि अशुभ, हानि, मृत्यु, बीमारी आदि का अंदेशा है।

साधकों की सुविधा के लिए यहाँ दोनों पक्षों में हर तिथि को बहने वाले स्वरों की तालिका बना कर दी जा रही है। इस साल में हर महीने की पहली तारीख को सूर्योदय का क्या समय रहा इसकी भी तालिका अन्तिम पृष्ठ पर देखें।

स्वर आरम्भ की तालिका

सूर्योदय के बाद प्रथम एक घंटे में कौन-सा स्वर प्रत्येक पक्ष की प्रत्येक तिथि को बहना चाहिए, यह इस तालिका से पता लगाएँ।

तिथि	कृष्ण पक्ष में प्रथम स्वर	शुक्ल पक्ष में प्रथम स्वर
1	सूर्य (दाहिना) स्वर	चन्द्र (बायां) स्वर
2	,,	,,
3	,,	,,
4	चन्द्र स्वर	सूर्य स्वर
5	,,	,,
6	,,	,,
7	सूर्य स्वर	चन्द्र स्वर
8	,,	,,
9	,,	,,
10	चन्द्र स्वर	सूर्य स्वर
11	,,	,,
12	,,	,,
13	सूर्य स्वर	चन्द्र स्वर
14	,,	,,
15	,,	,,

स्वर के अनुसार कार्य

स्वर शास्त्र का यह कथन है कि स्थिर और शुभ कार्य हमेशा वाम नाड़ी याने चन्द्र नाड़ी के प्रवाह के समय करने से सफल और सिद्ध होते हैं। इसी प्रकार जो कठिन कार्य हों, उन्हें हमेशा सूर्यनाड़ी के प्रवाह के अवसर पर करना चाहिए। सुषुम्ना के चलते समय किसी भी सांसारिक कार्य को प्रारम्भ करना अच्छा नहीं। जो काम पहले से कर रहे हों, उसे करते रहने में नुकसान नहीं। किन्तु नया काम नहीं शुरू करना चाहिए।

इड़ा, गंगा या चन्द्र-स्वर में

जब चन्द्र-स्वर चल रहा हो तो उस समय स्थिर कार्य किए जाने चाहिये। प्रत्येक शुभ कार्य चन्द्र-स्वर में करना चाहिए, जैसे यात्रा, दान, विवाह, विद्यारम्भ, यज्ञ, मित्रता इत्यादि।

आश्रम में प्रवेश करना, दीक्षा लेना, देव-दर्शन को जाना, देवमूर्ति की स्थापना, मंत्रसिद्धि करना, मोक्ष-प्राप्ति के लिए कर्म करना, गुरु-पूजा करना, गृह में पशु लाना, कुआँ-जलाशय इत्यादि बनवाना, राजमन्दिर बनवाना, द्रव्य संचय करना, बंधु से मिलने जाना, अपने अधिकारी के पास जाना, नगर या गाँव में प्रवेश करना, अन्न और लकड़ी से सम्बन्धित वस्तुओं का संग्रह करना, गीत-नृत्य-शास्त्र सम्बन्धी कार्य, अपने अधिकारी से किसी बात को कहने के लिए जाना—ये सब कार्य चन्द्र नाड़ी के प्रवाह के समय प्रारम्भ व करने से सफल होते हैं।

वस्त्र धारण, आभूषण धारण, तिलक धारण, दिव्य-औषधियों का सेवन, पौष्टिक कर्म, व्याधि-चिकित्सा, ये सब कार्य इड़ा याने चन्द्र नाड़ी के प्रवाह के समय करने योग्य हैं।

तत्त्व-विचार—स्वर-ज्ञान के साथ तत्त्वों का भी विचार किया जाता है। कुछ तत्त्व सिद्धिदायक होते हैं और कुछ अनिष्टकारी। तत्त्व पाँच होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। किस तत्त्व के उदय काल में कार्य

में सफलता प्राप्त होगी, इसका सविस्तार विवेचन आगे बतलाऊँगा। यहाँ पर आपको मुझे यही बतलाना है कि स्वर-ज्ञान के साथ-साथ तत्त्व-ज्ञान भी होना चाहिए। स्वर और तत्त्व दोनों का विचार साथ-साथ किया जाता है। तत्त्व का ज्ञान पाने के लिए कुछ साधना व अभ्यास करना पड़ता है। तत्त्व के विषय की प्रत्येक आवश्यक जानकारी आगे दी जायेगी।

स्वर-शास्त्र-विचार में तत्त्व को स्वर-योग का ही एक आवश्यक अंग समझना चाहिए। इसके बिना स्वर-ज्ञान अधूरा है। यद्यपि तत्त्व-ज्ञान न होने पर केवल स्वर-ज्ञान भी होना लाभदायक है, किन्तु निश्चित परिणाम जानने में तत्त्व-ज्ञान से सहायता मिलती है।

यमुना, पिंगला, सूर्य-स्वर में

जब दाहिना स्वर चले तो परिश्रम वाले, कठिनता से सिद्ध होने वाले कार्य किए जाने चाहिए। दाहिने स्वर को ही सूर्य नाड़ी, पिंगला या यमुना कहते है। सूर्य स्वर में शरीर में अधिक गर्मी व शक्ति पैदा होती है।

पिंगला या सूर्य स्वर में अध्यापन, कठिन विद्याओं का अध्ययन, नौकारोहण, शस्त्र-अभ्यास, संगीत का अभ्यास, किले-पहाड़ इत्यादि पर चढ़ना, हाथी-घोड़े इत्यादि की सवारी सीखना, कल-पुर्जों को चलाना सीखना, नदी पार करना, शत्रु-दमन करना, शस्त्र ग्रहण और धारण करना– इस प्रकार के कार्य किए जा सकते हैं।

सूर्य नाड़ी के ही प्रवाह में कठिन साधनाओं का अभ्यास करना चाहिए, जैसे वीरमंत्र की उपासना, यंत्र-तन्त्र आदि बनाना, षट्कर्मों का साधन, यक्षिणी-वेताल-भूतादि का साधन, मारण, मोहन, उच्चाटन, स्तम्भन इत्यादि सीखना, प्रेत-आकर्षण करना, इत्यादि।

सूर्य के प्रवाह में ही व्यायाम करना, औषधि सेवन करना, स्नानादि करना, दान करना, खेती करना, विरोध करना, मदिरा लेना, भोजन करना, अन्य शारीरिक कर्म करना, लेन-देन करना, विष-भूतादि उतारना इत्यादि कार्य करना चाहिए। संक्षेप में जितने भी चर कार्य, जितने भी परिश्रम-साध्य काम हों, उनके करने के लिए अच्छा समय सूर्यनाड़ी के प्रवाह का समय है। लिपि-लेखन, किसी कठोर वस्तु को घिसना, तोड़ना, छीलना, दान, क्रय-विक्रय, युद्ध, राजदर्शन, वैरी को दण्ड इत्यादि सूर्य नाड़ी के समय होना चाहिए।

बलवान् को वश में करना, कठिन और असम्भव को सिद्ध करने में तत्पर होने के लिए सूर्य-नाड़ी के समय ये सब कार्य करने चाहिए। यदि समीप के देश में कार्य हो तो सूर्य-स्वर के चलते समय जाने से सिद्धि प्राप्त होती है।

यात्रा के समय सूर्य स्वर चलता हो तो दाहिना पैर आगे बढ़ाकर जाना चाहिए। सायंकाल में यदि सूर्य नाड़ी न चले, समय के विपरीत नाड़ी चलती हो तो कर्म को छोड़ देना चाहिए, नहीं तो उल्टा फल होता है।

गृह में प्रवेश करना हो तो सूर्य-नाड़ी के समय करना शुभदायक है।

सरस्वती, सुषुम्ना, रिक्त, शून्य-स्वर में

भयंकर कर्म शून्य-स्वर याने सुषुम्ना प्रवाह में करना चाहिए। शुभ कर्म सुषुम्ना के समय करने से असफल हो जाते हैं। सुषुम्ना के समय कोई भी चर अथवा अचर, शुभ अथवा अशुभ कार्य न किया जाए तो अच्छा है। सुषुम्ना को स्वर-शास्त्र में दुष्टा नाड़ी कहते हैं। इस समय दो ही प्रकार का कर्म करना उचित है, या तो दुष्ट याने भयंकर कर्म या योग का अभ्यास। सुषुम्ना जब चलने लगे तो मोक्ष-प्राप्ति के लिए उद्योग करना चाहिए। माया की बेड़ी काटने के लिए एवं काम, क्रोध, मोह, लोभ इत्यादि शत्रु-दल पर विजय प्राप्त करने के लिए सुषुम्ना का काल उत्तम है। योगाभ्यास के पूर्व किसी उपाय से सुषुम्ना को चालू कर लेना चाहिए।

यदि शुभ और सांसारिक सफलता प्राप्त करने वाले कर्मों को इस काल में किया जाय तो उल्टा फल होता। कार्य निष्फल हो जाता है।

सुषुम्ना काल दोनों नाड़ियों के संक्रमण का काल है। इस समय किसी प्रकार के कार्य की चिन्ता नहीं करनी चाहिए। सुषुम्ना में यात्रा करने से हानि होने की सम्भावना रहती है। यदि विनष्टकारी तत्त्व का भी उस समय उदय एवं संयोग हो जाय तो निश्चय ही क्लेश, मृत्यु व गहरा नुकसान होकर रहता है।

यदि सुषुम्ना में कार्य पड़ जाय तो कुछ मिनट स्वर बदलने की प्रतीक्षा कर लेनी चाहिए और स्वर बदलने पर कार्यारम्भ करना चाहिए।



स्वर योग में तत्त्व-विचार

यदि नाड़ी के अनुसार अनुकूल सिद्धि के काम किए जाएँ तो अयोग्य व्यक्ति की भी योग्यता प्रमाणित हो सकती है। यदि नाड़ी के विपरीत कार्य किए जाएँ तो मनुष्य में योग्यता रहते हुए भी वह प्रकाशित नहीं हो पाती। स्वयं को योग्य प्रमाणित करने में सक्षम होते हुए भी व्यक्ति असमर्थ और असहाय हो जाता है।

स्वरों की सहायता से मनुष्य अलौकिक कर्म भी करने में समर्थ होता है। भूत और भविष्य को बतला सकता है। कोई मनुष्य किसी प्रश्न को पूछे, तो उसका विचार कर तदनुकूल उत्तर दिया जा सकता है। किन्तु प्रश्न का उत्तर, यात्रा, युद्ध, हानि-लाभ, जय-पराजय, मृत्यु-जीवन एवं शुभ-अशुभ के ज्ञान के लिए तत्त्वों का ज्ञान आवश्यक है। इसलिए पहले तत्त्व के विषय में बतलाना जरूरी है।

तत्त्वों की पहचान

तत्त्व पाँच प्रकार के होते हैं, और इन तत्त्वों के दो रूप होते हैं, एक स्थूल और दूसरा सूक्ष्म। स्थूल तत्त्व तो हमें दिखलाई पड़ता है। उसे locate कर सकते हैं। पर उसके सूक्ष्म स्वरूप का location साधारण मनुष्यों के लिए जानना कठिन है। सूक्ष्म तत्त्वों के उदय का काल होता है। एक तत्त्व अस्त होता है तो फिर दूसरे तत्त्व का उदय होता है। प्रत्येक तत्त्व का अलग-अलग फल और गुण होता है। कुछ तत्त्व कुछ कार्यों के लिए शुभ होते हैं और कुछ के लिए अशुभ। इसलिए उन तत्त्वों को पहचानने का तरीका जानना भी बहुत जरूरी है।

तत्त्व को जानने के विभिन्न तरीके हैं। यद्यपि ये तत्त्व स्वरूप में सूक्ष्म हैं, तथापि उनका रूप है, रंग है, आकार है, गति है, स्वाद है, गुण है, लक्षण है, स्थान है और दिशा है। इन्हीं का आधार लेकर तत्त्वों को पहचाना जा सकता है।

पृथ्वी-तत्त्व में स्थिर कार्य करना चाहिये। जल-तत्त्व में चर कार्य करना अच्छा है। तेज अर्थात् अग्नितत्त्व के उदय होने में क्रूर अर्थात् कठिन काम करना चाहिए। वायु-तत्त्व में मारण और उच्चाटन सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। आकाश-तत्त्व में केवल योगाभ्यास ही करना चाहिए।

तत्त्वों का रंग – पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला, जल तत्त्व का श्वेत, अग्नि तत्त्व का लाल, वायु तत्त्व का श्याम या धूम्र वर्ण और आकाश तत्त्व का मिश्रित रंग होता है।

तत्त्वों का आकार – पृथ्वी का आकार चतुष्कोण है, जल तत्त्व अर्धचन्द्राकार है, अग्नि तत्त्व का आकार त्रिकोण है, वायु तत्त्व का आकार षट्कोण है और आकाश तत्त्व बिन्दु-रूप और छिटके तारों के समान है।

तत्त्वों का स्वाद – पृथ्वी तत्त्व का स्वाद मीठा, जल तत्त्व का खारा, अग्नि तत्त्व का तीखा, वायु तत्त्व का आम्ल याने खट्टा और आकाश तत्त्व का स्वाद कटु होता है।

तत्त्वों का स्थान – तत्त्वों का शरीर में अलग-अलग स्थान माना जाता है। अग्नि का स्थान दोनों कन्धों में, पवन का नाभि देश में, पृथ्वी तत्त्व का जानु में, जल तत्त्व का पैरों के अन्तिम भाग में और आकाश तत्त्व का स्थान मस्तक में होता है।

तत्त्वों की गति – प्राणों की गति से तत्त्वों की गति मालूम पड़ती है। प्रत्येक तत्त्व में प्राण की गति भिन्न-भिन्न होती है। तत्त्वों को पहचानने के लिए प्राणों की गति पहचानने का अभ्यास होना चाहिये। अग्नि तत्त्व के उदय में प्राणों की गति ऊपर की ओर होती है। जल तत्त्व में नीचे की ओर होती है। जब मध्य में प्राण की गति हो तो पृथ्वी तत्त्व समझना चाहिये। जब प्राण की गति तिरछी चलती हो तो वायु तत्त्व समझना चाहिये। आकाश तत्त्व में प्राण की अस्पष्ट एवं मिश्रित गति रहती है।

तत्त्वों में प्राणों का संख्यान– प्रत्येक तत्त्व में प्राण की लम्बाई अलग-अलग रहती है। प्राणों के दर्शन और अनुभूति पर संयम करने से इसका ज्ञान सबको हो सकता है। स्वर चलने के समय तत्त्व बदलते रहते हैं। प्राय: प्रत्येक स्वर में बारी-बारी से सभी तत्त्वों का उदय होता रहता है। तत्त्वों के उदय का क्रम सर्वदा एक-सा तो नहीं रहता। किन्तु कुछ देर के लिए सभी तत्त्वों का उदय होता है। इस प्रकार बाएँ स्वर में पाँच बार तत्त्व बदलते हैं और दाहिने में भी पाँच बार जरूर बदलते हैं।

जब हम श्वास बाहर निकालते हैं तो प्राणों की लम्बाई नापने से हमें यह पता चल सकता है कि इस समय कौन-सा तत्त्व उदय है।

अग्नि तत्त्व के उदय के समय प्राणों की लम्बाई चार अंगुल रहती है। पवन तत्त्व के समय प्राण आठ अंगुल लम्बे रहते हैं। पृथ्वी तत्त्व में प्राण बारह अंगुल की दूरी तक बाहर जाते हैं। जल तत्त्वोदय में प्राणों की लम्बाई सोलह अंगुल रहती है। आकाश तत्त्व में अनिश्चित रहती है।

तत्त्वों का सुनिश्चित फल– पृथ्वी और जल तत्त्व रहने पर प्रत्येक कार्य में सिद्धि प्राप्त होती है। अग्नि तत्त्व रहने पर मृत्यु होती है। वायु तत्त्व होने से क्षय होता है। आकाश तत्त्व में सभी कार्य निष्फल होते हैं।

तत्त्वों की दिशा– पूर्व में पृथ्वी तत्त्व का होना माना जाता है। पश्चिम में जल तत्त्व का होना कहा गया है। उत्तर दिशा में वायु तत्त्व बहता है। दक्षिण दिशा में तेज अर्थात् अग्नि तत्त्व प्रधान होता है। और आकाश तत्त्व ऊपर में रहता है।

तत्त्वों के गुण– हमारा शरीर पंच भूतों का परिणाम है। पृथ्वी तत्त्व के प्रभाव से शरीर में माँस, त्वचा, नाड़ी, रोम और अस्थि निर्मित होते हैं। जल तत्त्व के गुण से वीर्य, रुधिर, मज्जा, मूत्र एवं लार बनता है। अग्नि तत्त्व के रहने से क्षुधा, तृषा, निद्रा, कांति, आलस्य आदि कर्म होते हैं। वायु तत्त्व के प्रभाव से दौड़ना, चलना, बांधना, संकोच करना और प्रसारण करना, ये सब कर्म सम्पादित होते हैं। आकाश तत्त्व के प्रभाव से मनुष्य में प्रीति, वैर, लज्जा, भय, मोह इत्यादि संवेग उत्पन्न होते हैं।

तत्त्वों के नक्षत्र– तत्त्वों के नक्षत्र भी अलग-अलग होते हैं। प्रत्येक तत्त्व के सात-सात निम्न नक्षत्र होते हैं। पृथ्वी तत्त्व–धनिष्ठा, रोहिणी, ज्येष्ठा, अनुराधा, श्रवण, अभिजित और उत्तराषाढ़। जल तत्त्व–पूर्वाषाढ़, अश्लेषा, मूल, आर्द्रा, रेवती, उत्तर भाद्रपदा और शतभिषा। तेज तत्त्व–भरणी, कृत्तिका, पुष्य, मघा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपदा और स्वाति। वायु तत्त्व– विशाखा, उत्तरा फाल्गुनी, हस्त, चित्रा, पुनर्वसु, अश्विनी और मृगशिरा।

तत्त्वों को पहचानने का साधन

प्रथम–तत्त्व साधना– योग साधना में तत्त्व-साधना एक अलग और स्वतंत्र साधना है। जिस प्रकार मंत्रों या तंत्रों की सिद्धि की जाती है, उसी प्रकार प्रत्येक तत्त्व का यंत्र बनाकर उस पर त्राटक और मंत्र जप करने से तत्त्वों की सिद्धि

होती है। प्रत्येक तत्त्व का यंत्र बनाने के लिए अलग-अलग धातु और रंग का प्रयोग होता है। प्रत्येक तत्त्व के अलग-अलग बीज मंत्र होते हैं। त्राटक और सोपचार पूजा के पश्चात् उन्हीं बीज मंत्रों पर जप करना पड़ता है। इस साधना की सविस्तार विधि गुरु से पूछकर अलग से सीखनी चाहिए।

द्वितीय–प्राण की लम्बाई– प्राणों की लम्बाई के सूक्ष्म अनुभव व दर्शन का अभ्यास कर तत्त्वों को पहचानिए। प्रतिदिन आँखें बन्द कर, आसन में निष्ठापूर्वक बैठकर प्राणों को देखिए। उनकी लम्बाई को नापिए। इस अभ्यास की सिद्धि होने पर तत्त्व पहचाने जा सकते हैं।

तृतीय–प्राण की गति से– प्राणों की गति को भी उपर्युक्त तरीके से ही जानने की कोशिश कीजिए। ऊपर, नीचे, मध्य व तिरछी गति से तत्त्वों को जानिए।

चतुर्थ–रंग, आकार– षण्मुखी मुद्रा में तत्त्वों का निर्णय कीजिए। षण्मुखी मुद्रा में हाथ के दोनों अंगूठों से कान के छेद बन्द कीजिए। तर्जनियों से दोनों आँख, मध्यमा उँगलियों से नाक के दोनों छिद्र, अनामिका उँगलियों से ऊपर का ओष्ठ और कनिष्ठा उँगलियों से निचला ओष्ठ बन्द कर लीजिए। अब अपने अन्दर में देखिए कि कैसा रंग और कैसा आकार दिखता है। उसी रंग और आकार के आधार पर तत्त्वों को पहचानिए।

पंचम–स्वाद– अपने स्वाद पर संयम कीजिए। मुख का स्वाद बराबर बदलता रहता है। मुँह में जैसा स्वाद मालूम हो, उसी आधार पर तत्त्व निर्णय होगा।

षष्ठम–नि:श्वास– दर्पण या अन्य किसी ठण्ढी वस्तु पर मुँह से नि:श्वास डालिए। नि:श्वास से जैसा आकार बने उसे देखकर तत्त्व को जानने का प्रयत्न कीजिए।

ये सब अभ्यास एक दिन में सिद्ध नहीं होते। निरन्तर, दीर्घकाल और सत्कार-सेवित अभ्यास से इनकी सिद्धि होती है। किन्तु गुरु के पास सरल युक्तियाँ होती हैं, जिनकी दीक्षा पूर्ण-दीक्षितों को दी जाती है।

अन्त में साधकों और जिज्ञासुओं की सुविधा के लिए तत्त्व-तालिका भी यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

तत्त्व-तालिका

इस तालिका में तत्त्वों के नाम, रंग, आकार, स्वाद, गति, प्राणों की लम्बाई, फल, तत्त्व-फलानुसार कितने आदमी गमन करेंगे, दिशा और कार्य प्रकृति विवरण साधकों की सुविधा के लिए दिया गया है।

	1	2	3	4	5	6	7	8	9
नाम	रंग	आकार	स्वाद	गति	प्राण की लंबाई	फल	कितने आदमी जाएँगे	दिशा	कार्य
पृथ्वी	पीला	चौकोर	मधुर	मध्य	12 अंगुल	भोगदाता	कई आदमी	पूर्व	स्थिर कार्य
जल	श्वेत	अर्धचन्द्र	कसैला	निम्न	16 ”	लाभ	एक आदमी	पश्चिम	चर कार्य
अग्नि	रक्त	त्रिकोण	तीक्ष्ण	ऊपर	4 ”	न हानि न लाभ	दो आदमी	दक्षिण	क्रूर कार्य
पवन	नीला	गोल	खट्टा	तिरछा	8 ”	हानि	एक आदमी	उत्तर	नष्टकारी
आकाश	वर्णहीन या मिश्रित	तारों के समान या आकार रहित	मिश्रित	अव्यक्त	मिश्रित अनिश्चित	निष्फल	कोई नहीं	अनिश्चित	योगाभ्यास

स्वर शास्त्र से आगम ज्ञान

कौन से स्वर में कौन-सा कार्य करना चाहिए, किस स्वर के चलने में कौन-सा अर्थ छिपा है, यह भी जानिए और जानकर नित्य जीवन में उसी प्रकार कार्य कीजिए। यदि कोई आपसे किसी तरह का प्रश्न करे तो उसका उत्तर कैसे निकाला जाय सुनिए।

जो प्रश्न किया गया हो, उसके अक्षर पहले गिन लीजिए। फिर यह भी नोट कीजिए अपने मन में कि प्रश्न करने वाले व्यक्ति ने आपके वाम भाग में बैठकर प्रश्न किया है या दक्षिण भाग में बैठकर। प्रश्न के अक्षर यदि सम संख्या में हों और प्रश्नकर्त्ता वाम भाग में अधिष्ठित है तो उत्तर जय और सफलता का सूचक है, ऐसा समझ कर तदनुकूल उत्तर दीजिए।

यदि प्रश्नाक्षरों की संख्या विषम हो और प्रश्नकर्त्ता दक्षिण भाग में बैठा हो तो कार्य में जय, सफलता और सिद्धि की सूचना है।

बाएँ भाग से प्रश्न हो और अक्षर संख्या विषम हो या दाहिने तरफ से प्रश्न हो एवं अक्षर संख्या सम हो तो कार्य में सिद्धि प्राप्त नहीं होगी, यह समझकर प्रश्नकर्त्ता को उसी के अनुरूप उत्तर दे देना चाहिए। यदि प्रश्नकर्त्ता आपके रिक्त स्वर की ओर बैठा हो तो प्राय: ही अनिष्ट या नाश होता है। जो स्वर पूरे प्रवाह के साथ बह रहा है, उस ओर यदि प्रश्नकर्त्ता हो तो इसका अर्थ है कि नाश नहीं होगा।

प्रश्न दिशा	अक्षर संख्या	फलाफल
दक्षिण वाम	विषम सम	जय, सफलता ,, ,,
दक्षिण वाम	सम विषम	हानि, असफलता ,, ,,
बन्द स्वर खुला स्वर	रुद्ध स्वर प्रवाह स्वर	असफल सफल

स्वर शास्त्र का प्रयोग स्वर-ज्ञानी अपने ऊपर ही करता है। प्रश्नकर्त्ता को यह सब विदित नहीं होना चाहिए। स्वर की पद्धति, याने जानने की टेकनीक से प्रश्नकर्त्ता का कोई सम्बन्ध नहीं है। स्वर योगी को अपने ही तन के स्वर-प्रवाह के अनुसार सब जानना चाहिए।

यात्रा के समय

इसी प्रकार यात्रा के समय भी स्वर शास्त्र से आगम का ज्ञान कीजिए। यदि पृथ्वी तत्त्व के उदय के समय के बीच कोई यात्रा विषयक प्रश्न पूछे तो इसका अर्थ है कि वह अकेले नहीं बल्कि बहुत-से लोगों के साथ यात्रा पर जाने वाला है। यदि प्रश्न के समय जल तत्त्व का उदय हो तो इसका उत्तर है कि प्रश्नकर्त्ता अकेले ही यात्रा पर जाएगा। वायु तत्त्व के उदय में भी ऐसा समझिए कि उसे अकेले जाना होगा। यदि तेज तत्त्व का उदयकाल हो तो इसका अर्थ है कि दो आदमी यात्रा पर जाएँगे। यदि आकाश तत्त्व का उदय हो तो इसका अर्थ है कि वह जायेगा ही नहीं। यात्रा की तैयारी भी यदि उसने कर ली होगी तो किसी कारण से रुक जायेगा।

स्वर प्रवाह से यात्रा फल

यात्रा पर जाने के समय जाने वाले को अपने स्वर-प्रवाह से यात्रा का फल जानना चाहिए और अनुकूल समय में ही यात्रा प्रारम्भ करनी चाहिए। स्वर शास्त्र जैसा कहते हैं उसके अनुसार चलकर कार्य में सिद्धि प्राप्त करनी चाहिए और निष्फल उद्योग व दुर्घटना या असफलता देने वाले कार्यों को यथासम्भव न करने की कोशिश करनी चाहिए।

स्वर शास्त्रानुसार जब जो स्वर बहता हो उस समय उसी ओर का कदम बढ़ाकर कार्य पर जाने से उस काम में सिद्धि प्राप्त होती है। यदि आपको किसी शुभ, स्थिर और शान्ति प्रदायक कर्म के लिए जाना हो तो जल और पृथ्वी तत्त्व के उदय काल में जाना श्रेयस्कर है। यदि कार्य उलझा हुआ, कठोर, उग्र और परेशानी लिए हुए हो तो अग्नि और वायु तत्त्व के उदय काल में जाना चाहिए। याद रखें कि आकाश तत्त्व हमेशा विनाशकारी तथा निष्फलतासूचक होता है, इसलिए आकाश तत्त्व के उदय काल में कहीं जाना नहीं चाहिए।

यदि पवन तत्त्व बह रहा हो तो जो स्वर चल रहा हो उसी स्वर से प्राण वायु को कान तक खींच कर अपने अन्दर आकर्षण किया करें और श्वास को

अन्दर रोक कर यात्रा पर जाएँ। ऐसा करने से यदि पवन तत्त्व विनाश करने वाला भी हो तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता और कार्य में सिद्धि प्राप्त होती है।

यदि विदेश में मित्र-सम्बन्धी हों

अब यदि कोई मित्र या सम्बन्धी जो किसी दूर स्थान में या विदेश में होने पर प्रश्न पूछे तो उसका उत्तर स्वर योग के अनुसार इस प्रकार होना चाहिये। प्रश्न करने के समय यदि राहु ग्रह हो और आपकी सूर्य नाड़ी चल रही हो तो यह समझना चाहिये कि वह व्यक्ति उस स्थान से कहीं अन्यत्र चला गया है। यदि जल तत्त्व का उदय हो और परदेश में रहने वाले व्यक्ति के सम्बन्ध का प्रश्न हो तो यह समझना कि फल या उत्तर शुभ सूचना देने वाला है। इसका अर्थ यह समझना चाहिये कि वह विदेश से स्वदेश को शीघ्र ही लौटने वाला है।

प्रश्न के समय यदि पृथ्वी तत्त्व बह रहा हो, तो यह समझें कि वह जहाँ है वहाँ बहुत सुखी है। यदि वायु तत्त्व बह रहा हो तो समझें कि जिस स्थान में वह पहले था वहाँ अब नहीं है। किसी दूसरे स्थान पर चला गया है।

शत्रु सम्बन्धी प्रश्न

इसी प्रकार शत्रु के सम्बन्ध में भी स्वर-शास्त्र के अनुसार जानिये। यदि शत्रु के सम्बन्ध की जिज्ञासा की गई हो, तो जल तत्त्व में शत्रु का आगमन होता है। पृथ्वी तत्त्व उदय हो तो समझें कि शत्रु होने के बावजूद भी कुछ शुभ ही घटने वाला है। यदि प्रश्न के समय वायु तत्त्व बहता हो तो जानिये कि शत्रु अन्यत्र स्थान में चला जाएगा और पूछने वाले की कोई हानि नहीं होगी। यदि आकाश और अग्नि तत्त्व हो तो इसका अर्थ होगा कि शत्रु की मृत्यु अथवा शत्रु की हानि होगी।

शत्रु के विरोध में यदि सेना भेजनी हो तो वायु तत्त्व जिस दिशा में बहता हो, उसी दिशा की ओर सेना भेजने से विजय होती है। यदि चन्द्र और सूर्य स्वर में वायु तत्त्व बह रहा हो तो समझना चाहिये कि युद्ध में आने वाले शत्रु अच्छे स्वभाव के होंगे और युद्ध में सुलह, शान्ति या सफलता की आशा की जा सकती है। चन्द्र स्वर के बहते समय यदि प्रश्न हो तो इसका मतलब है कि युद्ध में सन्धि होगी। यदि सूर्य स्वर चलता हो तो लड़ाई जारी रहेगी, यह समझना चाहिये।

युद्धभूमि, आपत्ति और संकट के समय श्वास में 'रक्ष जीवं, रक्ष जीवं' जपने से आपत्ति और संकट दूर होते हैं।

पृथ्वी तत्त्व के उदय में यदि युद्ध आरम्भ होता है तो युद्ध में दोनों पक्ष समान बल वाले होते हैं और किसी की भी हार या जीत नहीं होती। जल तत्त्व में यदि युद्ध शुरू हुआ हो तो निश्चय ही विजय होगी ऐसा समझना चाहिए। तेज तत्त्व में युद्ध के आरम्भ होने से युद्ध में नाश होता है। वायु और आकाश तत्त्व रहने से युद्ध में मृत्यु बहुत अधिक होती है।

चन्द्र नाड़ी के प्रवाह के समय युद्ध में जाने से हार होती है। सुषुम्ना के प्रवाह काल में जाने से युद्ध स्थगित हो जाता है और सूर्य में जाने से विजय निश्चित रहती है।

युद्ध में पुरुष का दाहिना स्वर और स्त्री का बायां स्वर चलना अच्छा होता है। वह शुभसूचक होता है।

प्रश्नों का उत्तर जानने की विधि तथा शत्रु सम्बन्धी सूचना प्राप्त करने के नियम मैंने तुम्हें बतलाए। निरंतर तपस्वी की भाँति स्वर योग का अभ्यास और ज्ञान प्राप्त करने में तुम यदि सतत् चेष्टायुक्त रहोगे तभी इसकी पूर्ण सिद्धि तुम्हें प्राप्त होगी। सिद्धि का मतलब तमाशा और चमत्कार नहीं होता, बल्कि परफेक्शन यानी पूर्णता होता है। इसी प्रकार संतान के सम्बन्ध में, मृत्यु के सम्बन्ध में, हानि-लाभ, कीर्ति-अकीर्ति, रोगी और रोग, सभी के सम्बन्ध में जाना जा सकता है। वास्तव में ये चीजें अभ्यासगत होती हैं। इसे सीखो, किन्तु अपने स्वार्थ के लिये इनका प्रयोग कभी मत करो। नहीं तो न सिद्धि मिलेगी और न ही अन्य किसी प्रकार से यह विद्या तुम्हारे काम में आ सकेगी। त्याग-भावना सिद्धि की सफलता की कुंजी है और गुरुमुख से प्राप्त करना ही मनोवांछा की पूर्ति के लिये पर्याप्त पूँजी है।

तत्त्वों से शुभाशुभ की सूचना

एक बात और आपको बतला दूँ। तत्त्वों के विशेष गुण और प्रकृति होती हैं। उन्हीं के अनुसार शुभ, अशुभ और निष्फलता की सूचना होती है। इसे इसी प्रकार जानने से धर्मानुसार फल प्राप्त होता है।

पृथ्वी तत्त्व में हमेशा अत्यधिक लाभ की प्राप्ति होती है पर बहुत दिनों में। जल तत्त्व रहने पर लाभ की मात्रा तो कम रहती है परन्तु परिणाम की प्राप्ति तत्क्षण होती है। लाभ तुरन्त या कम समय के अन्दर ही प्राप्त होता है। यदि

आकाश तत्त्व का उदय रहता है तो लाभ एकदम ही नहीं होता। वायु तत्त्व में लाभ बहुत थोड़ा और हानि बहुत ज्यादा होती है। वायु तत्त्व में हमेशा चर कार्य, चलने-फिरने वाले कार्य करने चाहिये। अग्नि तत्त्व में हमेशा हानि ही हानि होती है। अग्नि तत्त्व में सिद्ध कर्म भी नष्ट हो जाते हैं। पृथ्वी तत्त्व में जीवन, जय, लाभ, कृषि, धन सम्बन्धी कर्म, सफलता और सिद्धि दिलाने वाले ही कर्म करने चाहिये। दिन के समय पृथ्वी तत्त्व का होना शुभदायक होता है। रात्रि में जल तत्त्व का होना मंगलकारी पाया जाता है।

चन्द्र स्वर में पृथ्वी तत्त्व या जल तत्त्व तथा सूर्य स्वर में अग्नि तत्त्व होने से कार्यों में सफलता अवश्य मिलती है। पृथ्वी और जल तत्त्व में सभी सुख-आनन्द देने वाले कर्म जैसे संतोष, प्रीति, क्रीड़ा, जय और हर्ष सम्बन्धी कर्म ही करना अच्छा होता है। जो स्वर चलता हो, उसी स्वर की दिशा सामने हो तो कार्य में लाभ और सफलता की आशा करनी चाहिये।



स्वर योग में रोगी का जीवन निर्णय

स्वर शास्त्र का पूर्ण ज्ञान बिना गुरु के नहीं होता। इस योग में सिद्धि के कुछ और रहस्य हैं जो 'बन्द' समझे जाते हैं। कुछ साधनाऐं ऐसी हैं, जिनकी सिद्धि होने पर स्वर योग का साधक स्वर योग में सफलता प्राप्त करता है। स्वर शास्त्र का ज्ञान पढ़ने से नहीं होता, बल्कि गुरुवाक्य से होता है। श्रद्धा की उर्वरा जमीन में ज्ञान बीज फलता है।

स्वर शास्त्र को सूर्य ग्रहण या चन्द्र ग्रहण के अवसर पर गुरु से सीखना चाहिए। स्वर योगी को छायोपासना भी सिद्ध होनी चाहिए।

यद्यपि स्वर योग की सिद्धि गुरूपदिष्ट मार्ग से ही होगी, पर इस सनातन विद्या को जीवित रखने के लिए इसका अभ्यास व प्रचार आवश्यक है।

स्वर योग की सिद्धि पुन: उसी को होगी जो अल्पाहारी और अल्प-निद्रा लेने वाला होता है। विषयासक्त और चंचल वृत्ति वाले को यह विद्या सिद्ध नहीं हो सकती। जिनके आसन में दृढ़ता होगी, वही स्वर योगी बन सकेंगे। सबसे जरूरी है स्व-आश्रमानुसार शास्त्रोक्त ब्रह्मचर्य का पालन।

प्राय: योगीजन अपनी मृत्यु के बारे में पहले ही पता लगा लेते हैं। दूसरों की मृत्यु का भी उन्हें आभास मिल जाता है। सन्तान के विषय में भी भविष्यवाणी कर दिया करते हैं। इन चीजों को वे कैसे जानते हैं एवं स्वर शास्त्र इसकी क्या विधियाँ बतलाते हैं, उन सब में से कुछ उपयोगी बातें यहाँ बतलाई जाएँगी। ज्योतिषी और भविष्य-वक्ता स्वर का थोड़ा-बहुत ज्ञान रखते हैं, पर वे स्वर योगी नहीं होते। इसलिए कभी-कभी उनकी बातों में गलती भी हो जाने की सम्भावना रहती है।

रोगी के विषय में कुछ जानना हो तो फल का निश्चय सूर्य और चन्द्र-नाड़ियों के प्रवाह से जाना जा सकता है।

यदि किसी रोगी के विषय में आपसे किसी ने प्रश्न पूछा हो तो पूछने वाला व्यक्ति किधर से आया और आपके किस ओर आकर बैठा है, इन दो बातों को नोट कीजिए।

यदि प्रश्नकर्त्ता आया हो आपकी रिक्त नाड़ी की ओर से, किन्तु आकर पूर्ण स्वर की ओर बैठ गया हो तो समझिए कि भले ही रोग असाध्य हो, रोगी मृत्यु के मुख में हो तो भी बच जायेगा।

यदि आपके बहते हुए स्वर की ओर बैठकर किसी ने रोगी के विषय में प्रश्न किया है तो रोगी चंगा हो जायेगा, यह जानिए।

यदि प्रश्न पूछते समय आपका सूर्य-स्वर चलता हो तथा प्रश्नकर्त्ता भयानक और निराशाजनक स्वर बोल रहा हो तो भी समझिए कि रोगी अच्छा हो जायेगा और जीवित रहेगा।

यदि दूत प्राणवायु को अन्दर खींच कर और शरीर के अन्दर निश्चल रोककर रोगी के विषय में प्रश्न करे तो रोगी को जीवन प्राप्त होता है।

जब स्वर बदलता है और सूर्य या चन्द्र नाड़ी में से किसी का प्रवाह बहना तुरन्त आरम्भ ही हुआ हो, उस समय यदि कोई प्रश्न करे किसी भी सम्बन्ध का तो समझिए कि उत्तर मंगलदायक ही है।

यदि प्रश्न करने के समय आपकी प्राणवायु शरीर के निम्न भाग में हो तो समझिए कि रोगी निश्चय ही जिन्दा रहेगा। और यदि प्राण शरीर के ऊपर के भाग में हो तो समझिये कि रोगी के प्राण ऊपर आ रहे हैं अर्थात् वह मृत्यु को प्राप्त होगा।

यदि प्रश्नकर्त्ता ने सुषुम्ना के उदय काल में आपसे प्रश्न पूछा है और प्रश्न के अक्षरों की संख्या विषम हो तो पूछे हुये प्रश्न के ठीक विपरीत फल होगा।

यदि अपनी चन्द्रनाड़ी बहे और प्रश्नकर्त्ता की सूर्यनाड़ी बहे तो रोगी का इलाज कितना भी किया जाये वह बचेगा नहीं, यह समझ लीजिए। उसकी मृत्यु अवश्य हो जायेगी।

यदि आपकी सूर्यनाड़ी चलती हो और प्रश्न पूछने वाला दूत आपके वाम भाग में बैठकर प्रश्न करे तो यही समझ लीजिए कि रोगी अच्छा होने का नहीं है। उसकी मृत्यु हो जाएगी।



स्वर योग में अरिष्ट ज्ञान के अनुभूत लक्षण

मृत्यु का समय जानने के भी अनेक तरीके हैं। कुछ लक्षणों से मृत्यु का आभास मिलता है। होनी का ज्ञान प्रकृति अनेक लक्षणों से देती है। जिस तरह आसमान के रंग से आने वाले तूफान, धूम्र से अग्नि, खेती से आबादी होने का अन्दाज मिलता है, उसी तरह बहुत-सी भविष्य की घटनाओं का भी अनेक लक्षणों से अनुमान लगाया जाता है। मृत्यु-विज्ञान के पीछे यही रहस्य है।

मृत्यु का पता देने वाले कुछ लक्षण आप सुनिए। बराबर प्रयोग में लाने से आपको इन चीजों का ज्ञान अपने आप होने लगेगा और आप किसी की मृत्यु के विषय में पूर्व लक्षणों से सूचना पा सकेंगे।

जिस व्यक्ति को हथेलियों में पीड़ा का अनुभव हो, जिह्वामूल में रक्त नीला हो जाय तथा अंगों को दबाने या नोचने से दर्द का अनुभव न हो, ऐसा व्यक्ति केवल सात महीने और जिन्दा रहेगा।

यदि किसी मनुष्य की बीच की तीन उँगलियाँ मुड़ती न हों, बिना कारण ही कण्ठ सूखता हो, स्मृति न रहती हो और आगे का ध्यान न रहता हो तो यह समझें कि वह छः महीने से अधिक नहीं जीयेगा।

यदि मनुष्य को अपने दाँतों और अण्डकोषों को दबाने से भी पीड़ा का अनुभव न होवे तो समझें कि उसकी आयु के केवल तीन महीने ही अब बच गए हैं।

यदि किसी मनुष्य को बिना कारण अपने कानों से स्वर न सुनाई दे तब समझिए कि उसकी मृत्यु सात दिन के अन्दर हो जाएगी।

यदि किसी मनुष्य को अपने नेत्रों में प्रकाश न दिखे, दोनों नेत्रों में पीड़ा का अनुभव हो तो समझें कि उसकी आयु अब केवल चार महीने की है।

यदि किसी मनुष्य को अपनी छाती की पूरी चमड़ी में संवेदना का ज्ञान न होता हो तो ऐसा व्यक्ति पाँच महीने के अन्दर मृत्यु को प्राप्त होगा।

यदि किसी मनुष्य का पन्द्रह दिनों तक बराबर सूर्य-स्वर ही चलता रह जाय तो समझिए कि अगले पन्द्रह दिनों के अन्दर ही मृत्यु हो जाएगी।

यदि किसी व्यक्ति का निरन्तर चन्द्र-स्वर ही बराबर बहे तो समझो कि उसकी मृत्यु एक महीने के अन्दर हो जाएगी।

यदि किसी व्यक्ति का दिन में निरन्तर सूर्य-स्वर बहता हो और रात्रि में चन्द्र-स्वर बहे तो ऐसे व्यक्ति की मृत्यु छ: महीने के अन्दर होती है।

किसी एक बड़े बर्त्तन में जल भर कर रख लो और उसमें सूर्य की छाया पड़ने दो। उस प्रतिबिम्ब को देख कर कोई व्यक्ति अपनी मृत्यु को इस हिसाब से जान सकता है।

यदि जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब किसी को धूम्र के समान दिखे तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति की उसी दिन मृत्यु होने वाली है।

जिसे अपनी भृकुटी न दिखे तो यह समझे कि उसकी मृत्यु नौ दिन के अन्दर होवेगी।

यदि किसी को जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब के मध्य में छिद्र दिखाई दे तो समझिए कि उसकी आयु के दस दिन ही शेष हैं।

यदि जल में सूर्य प्रतिबिम्ब का पूर्व भाग किसी को क्षीण याने कटा हुआ दिखे तो समझिए कि उसकी आयु केवल एक महीने ही शेष रह गई है।

जल में सूर्य का प्रतिबिम्ब देखने पर सूर्य का उत्तर भाग यदि कटा हुआ किसी को दिखे तो समझें कि उसकी आयु अब दो महीने ही शेष है।

यदि किसी मनुष्य को अपनी जिह्वा बाहर निकालने पर भी न दिखे या दर्पण में देखने पर भी न दिखे तो समझिए कि उसकी मृत्यु एक दिन के अन्दर ही होगी।

यदि जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब का पश्चिम भाग क्षीण या कटा हुआ दिखे तो समझना चाहिए कि उस व्यक्ति की आयु अब से तीन महीने ही शेष रह गई है।

यदि किसी को आसमान में तारे रहने पर भी वे न दिखें तो समझ लें कि उसकी मृत्यु तीन दिन के अन्दर होगी।

यदि किसी व्यक्ति को जल में सूर्य के प्रतिबिम्ब का दक्षिण भाग कटा हुआ दिखे तो समझें कि उसकी आयु केवल छ: मास ही शेष रह गई है।

इस प्रकार शास्त्रों से तथा अनुभव से भी यह ज्ञान होता है कि मनुष्य के मरने के पहले प्रकृति उसे अनेक माध्यमों से सूचना देती है पर अन्धकार में रहने के कारण मनुष्य उसे समझ नहीं पाता। यदि मनुष्य अपनी आत्मशक्ति की चेतना सतत् रखे तो उसे हर चीज अपनी अन्तर्प्रज्ञा और प्रकृति के लक्षणों

से मालूम पड़ सकती है। जैसे, बायीं आँख फड़कने से स्त्रियाँ समझ लेती हैं कि आज कुछ अच्छा होने वाला है। दाहिने के फड़कने से अप्रिय घटना का अनुमान कर लेती हैं। पैर खुजलाने पर कहीं जाने की निश्चित सम्भावना और कौवा बोलने पर किसी के आगमन की सूचना मिलती है। इसी तरह अरिष्ट का ज्ञान भी कुछ लक्षणों से हम बराबर प्राप्त कर सकते हैं। मृत्यु-काल की सूचना देने वाले कुछ और लक्षण निम्नलिखित हैं।

मृत्यु के अन्य लक्षण

जिस मनुष्य का स्वभाव अत्यन्त चलायमान् हो और अचानक ही शरीर में, स्वभाव में परिवर्तन आ जाय, कोई विपरीतता दिखे तो समझिए कि उसकी आयु आठ महीने की है।

यदि किसी मनुष्य को हर एक वस्तु उल्टी दिखे, दीपक की लौ भी उल्टी दिखे तो उसकी मृत्यु नौ महीने के अन्दर हो जाएगी।

जिस मनुष्य को जागृति अथवा स्वप्न में जलाशय में मल, मूत्र, स्वर्ण अथवा चाँदी दिखे, उसकी मृत्यु दस महीने के बाद द्वार पर आ जाएगी, ऐसा समझें।

जिस मनुष्य को सूर्य अथवा चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब न दिखे तथा अग्नि का ताप न मालूम पड़े तो समझो कि उसकी आयु के ग्यारह महीने शेष हैं।

यदि किसी व्यक्ति का तीन रात और तीन दिन तक एक ही स्वर चलता रहे तो उसकी आयु बारह महीने ही बची है, समझिए।

यदि किसी व्यक्ति की श्वास अड़तालीस घंटे तक केवल सूर्य नाड़ी से प्रवाहित होती रहे तो उस मनुष्य की मृत्यु दो वर्ष के बाद होगी।

पुन: यदि किसी की श्वास चौबीस घंटे तक केवल एक ही स्वर से चलती रहे तो उसकी मृत्यु तीन वर्ष के बाद होगी।

इसी प्रकार मृत्यु के और भी अनेक लक्षण हैं। सबको लिख डालना सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ साधारण पहचान इस प्रकार है।

जिसकी ठण्ढी नि:श्वास निकलती हो, किन्तु फूत्कार गर्म हो, उसकी मृत्यु निकट है, यह समझना चाहिए।

जो मनुष्य हमेशा बुरे शब्दों का ही प्रयोग करने लगे तथा हर उच्चारण अशुद्ध करे और अन्त में पश्चात्ताप भी करे, ऐसे व्यक्ति की मृत्यु निकट होती है।

इसी तरह यदि मरणासन्न रोगी के विषय में कोई प्रश्न पूछने आवे तो–

- यदि प्रश्न पूछने वाला व्यक्ति काले वस्त्र धारण करके आवे तो मृत्यु होगी।
- यादि आने वाले दूत के 'दाँतों में' घाव हो तो रोगी मरने वाला है, समझा जाए।
- यदि दूत का सिर मुड़ा हुआ हो तो रोगी की मृत्यु होगी।
- यदि दूत तेल लगा कर आया है तो मृत्यु होगी।
- यदि दूत के हाथ में रस्सी हो तो वह मृत्यु का संकेत है।
- यदि आने वाला व्यक्ति दीन, अश्रुपूर्ण और अस्फुट वचन कहता हो तो रोगी मृत्यु के मुख में है।
- यदि दूत के हाथ में भस्म, अग्नि और भूसल में से कोई एक वस्तु हो तो वह मृत्यु-सूचक है।
- यदि दूत सूर्यास्त के समय आवे तो रोगी की मृत्यु होगी, यह समझे।
- यदि पूछने वाले के हाथ-पैर कटे हों तो मृत्यु की सूचना है।

मृत्यु को प्राण वायु से जीतने के उपाय

यह तो हुई मृत्यु की बात। किन्तु योगीजनों का अनुभव है कि मृत्यु को भी प्राणवायु के नियंत्रण के अभ्यास से जीता जा सकता है। उसका उपाय यह है–

जो योगी दिन में चन्द्र स्वर को चलाता है और सूर्य स्वर को रोककर रखता है, वह व्यक्ति अपनी मृत्यु को टाल सकता है।

आकाश-तत्त्व का जब उदय हो, उस समय चन्द्र-स्वर चलाने से मनुष्य दीर्घजीवी और निरोग होता है।

जो दिन में सूर्य-स्वर का निवारण और रात्रि में चन्द्र-स्वर का निवारण करता है, वह योगी वास्तव में योगी है और मृत्यु को भी जीत लेता है, अर्थात् इच्छा-मृत्यु को प्राप्त करता है।

इसके अतिरिक्त अरिष्ट की सिद्धि 'छायोपासना' से होती है। छाया-पुरुष को सिद्ध करने से मृत्यु का पूरा-पूरा ज्ञान व्यक्ति को होता है।



छायोपासना से अरिष्ट-ज्ञान

एक बड़ी महत्त्पूर्ण और उपयोगी साधना स्वर शास्त्रानुसार होती है, जिसे छायोपासना कहा जाता है। छायोपासना में छाया-पुरुष की उपासना की जाती है। छाया-पुरुष को सिद्ध करने से अरिष्ट ज्ञान होता है। यह छाया ही व्यक्ति को हर प्रकार के अनिष्ट, अमंगल, दुर्घटना इत्यादि की सूचना देती है। परन्तु यह साधना उनके लिए कदापि नहीं है, जो कच्चे साधक हैं और जिनमें वैराग्य की कमी है।

यह छाया केवल अनिष्ट की सूचना भर देती है। मार्गदर्शन, सलाह, निराकरण का उपाय इत्यादि नहीं देती। इसलिए साधक को छायोपासना की सिद्धि से लाभ नहीं, हानि ही है। प्रिय की मृत्यु या दुर्घटना इत्यादि की सूचना पाकर वह विचलित हो सकता है, चिन्ता से पागल हो सकता है। इसके विपरीत, देव और इष्ट की उपासना से आदेश, चेतावनी, रक्षा व अभय की प्राप्ति होती है। इसलिए यह छायोपासना सबके लिए नहीं है। इसे सिद्ध कर अपने भविष्य को आप स्वयं चौपट न करेंगे, इस विश्वास से यहाँ यह उल्लिखित की जाती है। छाया-योग के मार्ग में सबसे जरूरी तत्त्व गुरु-तत्त्व है। छाया-योग-साधना कभी भी बिना गुरु के संरक्षण एवं मार्गदर्शन के नहीं करनी चाहिए। यह योग तो एक विज्ञान है, यदि आपकी क्रिया-पद्धति एकदम ठीक हुई तो सिद्धि में जरा भी देर नहीं होती।

छायोपासना की विधि

छायोपासना के लिए उत्तम समय प्रात:काल सात से आठ बजे तक है। सूर्य की रोशनी की ओर पीठ करके खड़े हो जाइए, जिससे आपकी छाया आपके सामने रहे। अपनी छाया की गर्दन के भाग पर पन्द्रह मिनट त्राटक कीजिए। गर्दन के भाग पर पन्द्रह मिनट त्राटक करने के बाद सामने आसमान की ओर देखिए। छायोपासना का मंत्र गुरु से लीजिए। साधना एकान्त स्थल में कीजिए। आसमान में आपको अपनी छाया दिखेगी। यही छाया आपको

अरिष्ट का ज्ञान अनेक तरह से देगी। इसके बाद गुरुमुख से सब कुछ जानिए।

छाया के कार्य

छाया-सिद्धि होने पर आपको अपनी छाया पृथ्वी पर नहीं दिखेगी। इस छाया को आप सेवक की भाँति हमेशा अपने साथ रख सकते हैं। इससे हर प्रकार की सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु इस बात को हमेशा याद रखेंगे कि यह छायापुरुष देव शक्तियों का दूत नहीं और न आपको हितैषी और रक्षक देव की तरह से कोई आदेश, चेतावनी या रास्ता बतला सकता है।

कभी-कभी ऐसा भी अनुभव में आया है कि छाया बिना सिद्धि के भी किसी-किसी को गाइड करती पाई गई है। छाया, छाया की तरह, एक साथी की भाँति अकेले रास्ते में, भयावह स्थान में व्यक्ति के साथ-साथ रहती पाई गई है, जिससे लोगों को काफी मदद मिली है। छाया-सिद्धि से अनेकों लाभ हो सकते हैं और इसका विभिन्न कार्यों के लिए उपयोग किया जा सकता है। किन्तु यहाँ आवश्यक और ध्यान में रखने की दो ही बातें हैं।

पहली बात, व्यक्ति योग में दीक्षित हो। दूसरी बात, एक गुरु हो जिसके आदेश और सलाह पर ही यह साधना की जाय। गुरु ही वह मास्टर है जो विद्यार्थी की योग्यता को ठीक-ठीक समझकर उचित रूप से मार्गदर्शन कर सकता है और खतरे की आशंका या अन्य कुछ गड़बड़ी होने पर उचित साधना बतला सकता है।

छाया किस प्रकार से सूचना देती है, यह साधना की चीज है, कहने की चीज नहीं। और न ही कहना चाहिए। गुरु से ही सब जानिए, करिए और पाइए। प्राप्त-सूचना अपने तक ही रखनी चाहिए।

छाया पुरुष के लक्षण

छाया के कुछ लक्षण होते हैं। छाया पर त्राटक करते-करते छाया अदृश्य हो जाती है। पुन: आकाश में प्रकट होती है। आकाश की छाया जैसी दिखे उसी के अनुसार फल का अनुमान करना चाहिए।

यदि छाया की बायीं भुजा न दिखे तो समझना चाहिए कि व्यक्ति की स्त्री की मृत्यु होगी। यदि दाहिनी भुजा न दिखे तो बन्धु और मित्रों का नाश तथा अपनी भी मृत्यु होगी, ऐसा समझना चाहिए।

यदि छाया का सिर न दिखे तो व्यक्ति की मृत्यु एक महीने में होती है। यदि जाँघ न दिखे तो आठ दिनों में होती है।

यदि छाया के कन्धे भी न दिखें तो आठ दिन में व्यक्ति की मृत्यु होगी, समझ लें।

छाया-सिद्ध को यदि छाया ही न दिखे तो उसी क्षण में अपनी मृत्यु जाननी चाहिए।

यदि छाया की उंगली, कन्धे या पार्श्व न दिखे तो समझे कि छः महीने में उसकी मृत्यु होगी।

यदि छाया के पैर, पेट या भुजा न दिखे तो जानना चाहिए कि निश्चय ही अपनी मृत्यु निकट है।

यदि छाया का सिर कटा हुआ दिखे तो समझें कि मृत्यु आ गई है।

छाया की उपासना निर्जन स्थान में करनी चाहिए। त्राटक करते समय एक सौ आठ बार छायोपासना का मंत्र पढ़ना चाहिए। छायोपासना का मंत्र है *'ह्रीं परब्रह्मणे नमः'*, पर इसे गुरुमुख से सुनिए।

छाया के रंग से मृत्यु का अनुमान

छाया का रंग भी होता है। इस रंग से भी मृत्यु के समय का अनुमान लगाया जाता है। आकाश में जिस आकार और रंग की छाया दिखे, उसी के अनुसार मृत्यु का काल निश्चित करे। छः महीने की निरन्तर साधना से मृत्यु का आभास मिलता है और एक वर्ष की साधना व अभ्यास से साधक मृत्यु का निश्चित समय, वर्ष, महीना, दिन और घंटा जान सकता है।

छायोपासना का निरन्तर अभ्यास करने से भूत, भविष्य और वर्त्तमान, तीनों समय के अरिष्ट का ज्ञान होता है।

यदि आकाश की छाया का रंग काला दिखे तो छः महीने में मृत्यु होती है।

यदि छाया का रंग पीला दिखे तो साधक को व्याधि होगी, यह जानें। यदि छाया का रंग लाल दिखे तो भय उत्पन्न होगा, यह समझें।

यदि छाया का रंग नीला दिखे तो इसका अर्थ है कि हानि होने वाली है।

यदि छाया में अनेक रंग दिखें तो योगी को अनेक सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

इस तरह से छाया से सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं। एक बार एक व्यक्ति के साथ में छाया बहुत देर तक बराबर उसके साथ रही थी, जब तक

कि वह भय के स्थान से बाहर नहीं चला गया। मध्य रात्रि में कब्रिस्तान से होकर घर वापस जाने के समय वह छाया उसके साथ निर्जन स्थान में रही। उस छाया से उस व्यक्ति को भय का आभास नहीं होता था। केवल एक साथी-सा लगता था।

इसी प्रकार एक अन्य व्यक्ति के साथ भी छाया उस समय मौजूद थी, जब वह दुर्घटना के स्थल में था। दुर्घटना-स्थल से बाहर आने पर वह छाया उसे नहीं दिखी। वास्तव में अत्यधिक भय इत्यादि के वातावरण में मन की सभी वृत्तियों के एकाग्र हो जाने पर यह छाया स्वयं प्रकट हो जाती है।



स्वर योग में गर्भ-निर्णय

गर्भ और सन्तान के विषय में भी स्वर योग कुछ काम की बातें बतलाता है। गर्भ में कौन-सी संतान है, कैसी संतान है, उसका कैसा भविष्य है—यह सब स्वर योग के माध्यम से जाना जा सकता है।

यदि गर्भवती प्रश्न पूछे और तुम्हारा चन्द्र-स्वर चलता हो तो गर्भ में कन्या होती है। यदि सूर्य-स्वर चलता हो तो गर्भ में पुत्र होता है। यदि गर्भवती के प्रश्न के समय सुषुम्ना नाड़ी चलती हो तो गर्भ नष्ट हो जाता है।

प्रश्न के समय यदि पृथ्वी तत्त्व का उदय हो तो कन्या उत्पन्न होती है। यदि जल तत्त्व हो तो पुत्र पैदा होता है। यदि तेज तत्त्व हो तो गर्भपात होता है। और यदि आकाश तत्त्व का उदय हो तो संतान नपुंसक होती है।

यदि गर्भ सम्बन्धी प्रश्न कोई और भी पूछे तो उसमें भी चन्द्र-स्वर होने से कन्या, सूर्य-स्वर होने से पुत्र और सुषुम्ना में सन्तान नपुंसक होती है।

तत्त्वों के उदय काल में गर्भाधान का फल

वायु तत्त्व के उदय-काल में गर्भाधान होने से संतान दु:ख देने वाली होती है। जल तत्त्व के उदय में यदि संतान गर्भ में आए तो वह दिशाओं में विख्यात, सुख देने वाली और धनवान होती है। अग्नि तत्त्व के समय गर्भ में संतान आने से गर्भ का नुकसान होता या फिर अल्पजीवी संतान होती है। पृथ्वी तत्त्व में गर्भधारण से सुन्दर और धनवान् पुत्र होता है। आकाश तत्त्व में गर्भ का नुकसान होता है। यदि पृथ्वी तत्त्व के उदय काल में गर्भाधान हो तो पुत्र और जल तत्त्व में हो तो कन्या का जन्म होता है। सूर्य-स्वर के अंत और सुषुम्ना के प्रवाह के आरम्भ के समय संतान के गर्भ में आने से वह अंगहीन एवं कुरूप होती है।

यदि पुरुष का सूर्य-स्वर और स्त्री का चन्द्र-स्वर बहे एवं पृथ्वी, जल या अग्नि तत्त्व बह रहा हो तो नि:संतान को भी संतान की प्राप्ति हो सकती है।

अत: दम्पत्तियों को स्वर के अनुसार ही चलना चाहिए, जिससे संतान स्वस्थ, भाग्यवान्, विख्यात और दीर्घजीवी हो।

स्वर योग से इष्ट-फल प्राप्ति

स्वर योग एक विज्ञान है। दुनिया में जो कुछ है, वह सब मनुष्य के ही कारण है। मनुष्य की शक्तियों का विस्तार ही समाज में दिखता है। किन्तु मनुष्य स्वयं अपनी शक्तियों को, अपनी बनावट को पूरा-पूरा नहीं जानता। मेडिकल साइन्स, शरीर विज्ञान, साइकोलौजी या अन्य शास्त्र जो कुछ भी ज्ञान हमें दे रहे हैं वे सब अधूरे हैं। किसी ने भी अन्तिम सत्य तक पहुँच जाने का दावा नहीं किया है।

किन्तु योग और अध्यात्म ने मनुष्य के रहस्यों का पता लगाया है। जो भी बातें वह सामने रखता है, वह केवल सिद्धान्त नहीं, अनुभूत और सिद्ध तथ्य है।

स्वर योग के ही अन्तर्गत कुछ और ऐसी छोटी-छोटी पर महत्त्वपूर्ण बातें हैं जो आपके बहुत उपयोग में आ सकती हैं।

दैनिक जीवन में स्वर योग का प्रयोग

1. जब आप प्रात:काल बिस्तर से उठें तो सबसे पहले लेटे-लेटे ही यह देखें कि आपका कौन-सा स्वर चल रहा है। जो स्वर चलता हो उसी ओर के हाथ की हथेली टेक कर उठना चाहिए और उसी हथेली से अपने मुख का स्पर्श करना चाहिए। इससे इच्छित फल की प्राप्ति होगी।
2. यदि किसी से कोई वस्तु ग्रहण करनी हो तो जो स्वर चलता हो उसी ओर का हाथ बढ़ा कर वस्तु लेनी चाहिए। यदि दान भी देना हो तो भी जो स्वर चलता हो, उसी ओर का हाथ बढ़ाकर दान देना चाहिए।
3. यदि किसी पूज्य और प्रिय के हाथ से कोई वस्तु ग्रहण करनी हो तो खाली हाथ से कभी न लो। हाथ में फल लेकर ग्रहण करने से मनोवांछा पूरी होती है।
4. भोजन करते समय और उसके बाद सूर्य-स्वर चलायें। सूर्य-स्वर से शरीर में अग्नि दीप्त होती है और पाचन-क्रिया ठीक होती है। यदि भोजन के बाद बाएँ करवट सो जाओ तो सूर्य-स्वर अपने आप चलने लगेगा।

5. किसी कठोर कर्म, शास्त्र से असम्मत कर्म, दण्ड देने के समय अथवा अग्निदाह, इत्यादि जैसे कर्म के लिए जाना हो तो खाली हाथ ही जाना और कार्य करना चाहिए।
6. यदि किसी समय आपको चित्त की चंचलता या किसी कारण प्रमाद से स्वर और तत्त्व की पहचान न हो सके तो निम्न उपाय काम में ले आओ। एक फूल ले लो। प्राणवायु को अन्दर खींच कर रोक लो। फूल को उछाल कर पृथ्वी पर गिराओ। यदि पुष्प तुम्हारे सामने ही गिरे तो समझो कि जिस कार्य को करने जा रहे हो या कर रहे हो, उसमें तुम्हें सफलता प्राप्त होगी। यदि पुष्प कुछ दूर गिरे तो कार्य में असफलता होगी, ऐसा समझो।
7. जिस व्यक्ति से काम लेना हो उसे चलते श्वास की ओर रख कर अपनी बात कहो। तुम्हारा काम सिद्ध होगा।
8. यदि आपका कोई शत्रु हो, या रूठा हुआ मित्र हो, या अफसर क्रोधित हो गया हो तो निम्न उपाय काम में लावें। धीरे-धीरे श्वास अन्दर खींच कर अपनी नाभि में रोको। उस पुरुष की मूर्ति नाभि में देखो। फिर धीरे-धीरे श्वास को बाहर निकालो। इसके पश्चात् नाराज व्यक्ति के पास जाओ और जिधर का स्वर तुम्हारा बन्द हो, उसी ओर उस व्यक्ति को रख कर अपनी बातचीत करो। तुम्हारी इच्छा पूरी होगी।
9. इसी प्रकार एक ओर गुप्त भेद सुनो। शुक्ल पक्ष के प्रथम रविवार को सूर्यनाड़ी के प्रवाह के समय दृढ़ इच्छा से किसी को पत्र लिखो। तुम्हारा काम पूरा होगा। लेकिन इतना याद रखो कि किसी की आत्मा को किसी अनैतिक और प्रकृति के प्रतिकूल कार्य करने को प्रेरित मत करो, नहीं तो उसकी आत्मा विरोध करेगी और तुम्हारा अहित होगा। प्रकृति किसी का भी नुकसान नहीं देखना चाहती। यह नियम है।

अग्नि-शान्ति का उपाय

जीवन में अनेक दुर्घटनाएँ होती रहती हैं। कुछ तो दैविक होती हैं, पर बहुत-सी मनुष्य की गलती, लापरवाही और समय पर बचाव का उपाय न करने से होती हैं। इसलिए यदि युक्ति से काम लिया जाय तो दैवी कृपा भी प्राप्त होती है और कार्य भी पूर्णरूपेण सिद्ध होता है। हमारे देश में अग्नि द्वारा दुर्घटनाएँ बहुत अधिक होती हें। इसलिए आग बुझाने का एक यौगिक उपाय सुनिये। इस उपाय से आप अपनी एवं दूसरों की भी सेवा कर सकते हैं।

यदि कहीं आग लग गयी हो तो आग की लपटें जिधर बढ़ती जाती हों उसी ओर को खड़े हो जाइए। एक लोटे या ग्लास में जल मंगाइए। आपका जो स्वर चल रहा हो उसी नासिका से जल पीजिये। पुनः अग्नि बुझाने का मंत्र पढ़कर सात बून्द जल अग्नि में गिरा दीजिये। अग्नि की ज्वाला कम हो जाएगी। और अग्नि बुझ जाएगी। आपको नुकसान अधिक नहीं होगा। अग्नि बुझाने का मंत्र यह है–

उत्तरस्यां च दिग्भागे मारीचो नाम राक्षसः।
तस्य मूत्रपुरीषाभ्यां हतो वह्निं स्तम्भ स्वाहा॥

ऐसा करने से अग्नि का प्रकोप बढ़ता नहीं और थोड़े ही प्रयास से अग्नि बुझ जाती है।

इसका प्रयोग विधिपूर्वक करें और अपने अनुभव हमें लिखकर भेजें। अनुभवों में प्रयोग का स्थान, तिथि, समय, अग्निकाण्ड का विस्तार और प्रयोगकर्त्ता का पूरा परिचय भेजें।



स्वर योग में स्वर परिवर्तन

अब समस्या यह है कि यदि किसी निश्चित समय में किसी विशेष काम को करना जरूरी हो और उस समय उस कर्म के अनुकूल स्वर न चलता हो तो ऐसी परिस्थिति में क्या किया जाय? यदि विपरीत स्वर चलने से रोगी होने की आशंका हो तो स्वास्थ्य के लिए क्या किया जाय? क्या स्वरों को इच्छानुसार बदला जा सकता है? क्या स्वरों को बदल कर कर्म के अनुकूल स्वर प्रवाहित कर सफलता की प्राप्ति या अशुभ और अवांछित का निवारण किया जा सकता है?

तो सबका उत्तर है हाँ। तुम स्वरों को इच्छानुसार बदल सकते हो। स्वर बदलने का अभ्यास सिद्ध हो जाने से तुम इच्छानुसार कर्म फल की प्राप्ति कर सकते हो। यहाँ पर स्वर बदलने के अनुभूत तरीके बतलाए जाएँगे। मनोवांछित फल की प्राप्ति के लिए स्वर बदलने का अभ्यास सीखना जरूरी है, क्योंकि ऐसा सम्भव और व्यवहारिक नहीं है कि प्रत्येक कार्य के लिए स्वर के बदलने की प्रतीक्षा की जाय। स्वर की प्रतीक्षा में कार्य में देर, परेशानी और असुविधा उठानी पड़ सकती है। इसलिए उत्तम है कि स्वर बदलने के उपाय जान लिए जाएँ व उनका अभ्यास कर लिया जाए।

सबसे सरल पहला उपाय

जिस स्वर को तुम चलाना चाहते हो उसके विपरीत करवट में सो जाओ। यदि सूर्य स्वर प्रवाहित करना है तो बायीं करवट लेट जाओ। दो मिनट के पश्चात् अपने आप तुम्हारा दाहिना स्वर चलने लगेगा और बायाँ स्वर रुद्ध हो जाएगा। जब तक स्वर चलने न लगे तब तक लेटे रहो। इस प्रकार जब जो स्वर चलाना चाहो चला सकते हो। इसे सभी कर सकते हैं।

करवट की तरफ बगल में तकिया रख कर लेटना भी अच्छा है। तकिये से एक फेफड़े की ओर दबाव पड़ने से दूसरा स्वर जल्दी प्रवाहित होने लग जाता है। तकिये से स्वर शीघ्र बदलता है।

दूसरा उपाय

यदि किसी विशेष अवसर पर आप किसी स्वर को चलाना चाहते हैं तो यह उपाय कीजिये। जो स्वर खुला हुआ हो उससे श्वास अन्दर लीजिए और जो स्वर बन्द हो उससे श्वास बाहर निकालिये। यह क्रिया अनेक बार तब तक करते जाइये जब तक आपका बन्द स्वर प्रवाहित न होने लग जाय। ऐसा करने से निश्चय ही जो स्वर आप चलाना चाहते हैं वह चला सकेंगे।

तीसरा उपाय

जिस स्वर को चलाना चाहते हो उस स्वर पर चित्त एकाग्र करके ध्यान करो। जो नासिका बन्द है और जिसके स्वर को प्रवाहित करना चाहो उस पर पूरा ध्यान लगाओ और ध्यान के द्वारा उसी नासिका से श्वास अन्दर लेने और बाहर निकालने का प्रयत्न करो। यदि तुम्हारा ध्यान पक्का होगा तो केवल ध्यान के द्वारा, दृढ़ इच्छा और चित्त की एकाग्रता द्वारा इच्छित स्वर को चला सकोगे।

चौथा उपाय

दवाखाने में जो साफ रूई मिलती है उसकी दो ऐसी गोलियाँ बना लो जिससे नाक के छेद बन्द किये जा सकें। उस रूई को एक कपड़े के अन्दर सिल लो जिससे रूई बिखरने न पाय। ये गोलियाँ इस आकार की होनी चाहिये जिससे नाक के छेदों को आसानी से बन्द किया जा सके।

जब दीर्घकाल के लिये किसी एक स्वर को चलाना हो तो रुई की इन्हीं गोलियों से जिस स्वर का चलना बन्द करना हो उस नाक को बंद कर देना चाहिए। रात्रि में सोते समय या रुग्णावस्था के समय इस उपाय को काम में लाना सरल है।

पाँचवाँ उपाय

जो स्वर खुला हुआ हो उस ओर के नासिका-छिद्र को उंगली से दबाकर बन्द कर दो। उसके बाद कुछ देर नासिकाग्र-दृष्टि करो। जब तक बन्द स्वर प्रवाहित न होने लगे, इच्छित स्वर न चलने लगे तब तक नासिकाग्र का अभ्यास करो। चार-पाँच मिनट के बाद दूसरा स्वर चलने लगेगा।

स्वर बदलने के ये पाँच उपाय हैं और जब जिस स्वर के योग्य कार्य करना हो तब उस स्वर को चलाकर कार्य किया जाना चाहिये।

परन्तु साथ ही गृहस्थों को एक बात का ध्यान रखना चाहिये कि साधारण अवस्था में जब कभी विपरीत स्वर चलने लगे तो यही समझना चाहिये कि कुछ अनिष्ट या अनहोनी की सूचना है।

विपरीत स्वर का अर्थ

यदि प्रात:काल उल्टा स्वर चले तो समझो कि मन की अशान्ति, धन की हानि, इष्ट का नाश, राज्य का विध्वंस, व्याधि, दु:ख, सम्पूर्ण अर्थ का नाश या मृत्यु होने वाली है। प्रात:, मध्याह्न और सन्ध्या, तीनों मे किसी समय विपरीत स्वर चलने से अशुभ ही होता है।

ऐसा संकेत पाने पर कष्ट-शान्ति का कुछ उपाय अवश्य करना चाहिये। व्रत, दान, तप, पूजा, अनुष्ठान उन कष्टों का रूपान्तर करते हैं, जिससे उनकी तीव्रता और वेग कम पड़ जाता है। यह बिल्कुल वैज्ञानिक है।



स्वर योग और प्राण साधना

स्वर और प्राण, ये दो अलग वस्तुएँ नहीं। तो भी प्राण की साधना यदि विस्तार से ली जाए तो वह एक अलग ही साधना हो जायेगी। प्राणवायु प्राण नहीं है तो भी यही प्राण का वाहक और वाहन है।

प्राण पर विजय प्राप्त करने वाला अनेक सिद्धियों का स्वामी हो जाता है। प्राण पर विजय से यह अर्थ नहीं कि वह बिना श्वास लिये हुये रहे बल्कि उसका यह अर्थ समझना चाहिये कि प्राण उसके वश में है और उसे वह इच्छानुसार घटा-बढ़ा, कम-ज्यादा कर सकता है। प्राण की महिमा उपनिषदों में विस्तार से वर्णित है। यहाँ पर मैं बहुत ही संक्षेप में प्राण का कुछ परिचय दूँगा।

प्राणों का रंग भी होता है और लम्बाई भी। साधारणत: प्राणों की लम्बाई स्वस्थ मनुष्य में बारह अंगुल की होती है किन्तु किसी परिश्रमजनक काम करते समय इसकी लम्बाई बढ़ जाती है। योगी जन साधना के द्वारा प्राणों की लम्बाई घटाते जाते हैं।

भोजन करते समय प्राण की लम्बाई अठारह अंगुल रहती है, चलने के समय चौबीस और दौड़ते समय बयालीस हो जाती है। वमन करते समय प्राण की लम्बाई अठारह रहती है, सोते समय प्राण बहुत अधिक लम्बे चलते हैं और शरीर में डीकार्बोनाइज़ेशन अधिक होता है। वस्तुत: निद्राकाल में प्राणों की लम्बाई सौ अंगुल हो जाती है। इसी प्रकार अन्य क्रियाओं में प्राणों की लम्बाई परिश्रम की मात्रा के अनुसार घटती-बढ़ती रहती है। निद्रा की अवस्था के अलावा परिश्रम वाले कार्यों में ही प्राण की लम्बाई साधारण अवस्था में अधिक रहती है।

प्राण की लम्बाई का कम होना सिद्धियों का लक्षण होता है। यदि साधारण लम्बाई याने बारह अंगुल से एक अंगुल प्राण की लम्बाई कम हो तो वह व्यक्ति निष्पक्ष, निष्काम और निष्कपट होता है।

यदि दो अंगुल प्राण कम हों तो उस व्यक्ति को आनन्द की प्राप्ति होती है। वह हमेशा आनन्दमग्न रहता है।

यदि प्राण तीन अंगुल कम हों तो उसे कवित्व शक्ति प्राप्त होती है और वह कवि बनता है।

यदि प्राण चार अंगुल कम हों तो ऐसे व्यक्ति को वाणी सिद्धि प्राप्त होती है। वह व्याख्याता और वक्ता होता है। वह जो कुछ कहता है वह सत्य निकलता है।

जिस व्यक्ति के प्राण पाँच अंगुल कम होते हैं उसे दूर-दृष्टि प्राप्त होती है। अन्यत्र घटी हुई घटनाओं को भी वह जान लेता है।

जिस व्यक्ति के प्राण छ: अंगुल कम होते हैं उसे आकाश गमन की शक्ति प्राप्त होती है। वह वायु मार्ग से कहीं भी जा सकने में समर्थ होता है।

प्राण कम करने का उपाय

प्राणों को साधन करने से सूक्ष्म बनाया जा सकता है। प्राणायाम और नाड़ी शोधन की क्रिया करने से प्राण में हल्कापन आता है और धीरे-धीरे लम्बाई घटती जाती है। प्रारम्भ में आसन में बैठ कर चार मात्रा में श्वास अन्दर, सोलह मात्रा में अन्तर्कुम्भक, बारह मात्रा में रेचक और सोलह मात्रा में बहिर्कुम्भक कीजिये। धीरे-धीरे अनुपात बढ़ाते जाइये। और क्रमश: 8:32:24:32 के अभ्यास में आइये। पुन: कुछ दिन बाद 16:64:48:64 के अनुपात से प्राण साधना कीजिये। अंत में 20:80:60:80 के अनुपात की प्राण साधना कीजिये। किन्तु इस साधना में किसको कितनी अनुपात का अभ्यास करना चाहिये, यह जरूर गुरु से पूछ कर करना चाहिये। प्राणों का अभ्यास मनमाने ढंग से करने में खतरा है।

एक दूसरा सरल प्राणों का अभ्यास है अजपा जप। अजपा जप की साधना करने से प्राण सूक्ष्म होते जाते हैं। यह साधन सरल है और अजपा जप की पुस्तक में उसका विस्तार आप पाएँगे। बिना निर्देशन के भी यह अभ्यास प्रारम्भ किया जा सकता है।



स्वर योगी कैसे बनें

स्वर योग गृहस्थों के नित्यप्रति काम की वस्तु तो जरूर है, किन्तु वे पूर्ण स्वर योगी नहीं बन सकते। स्वर योग की सिद्धि के लिए एक साधक और शिष्य की योग्यता जरूरी है। साधक और शिष्य, इन्हीं दो शब्दों में स्वर योगी बनने के पूर्ण नियम आ जाते हैं। अब स्वर योगी को क्या करना चाहिये और क्या नहीं, इसका उल्लेख किया जाएगा।

स्वर योगी को अल्प-भोजन लेना चाहिये। अधिक खाने वाला आलसी, प्रमादी और तामसी स्वभाव का हो जाता है और तामसिक कर्म करने लग जाता है। भोजन का प्रभाव मनुष्य के मन और उसके वेगों पर पड़ता है। मिताहार लेने वाला अपने चित्त पर संयम रख सकता है। एक पेटू आदमी योग कभी नहीं प्राप्त कर सकता, चाहे वह स्वर योग हो या कोई अन्य योग। भोजन का प्रभाव शरीर और मन दोनों पर होता है, यह सिद्ध हो चुका है।

स्वर योगी को अल्प-निद्रा वाला होना चाहिये। अधिक सोने वालों की बुद्धि अन्त:प्रज्ञा के सूक्ष्म संकेतों को पकड़ने में असमर्थ होगी। वह बुद्धि से काम कर सकता है पर intuitive नहीं हो सकता। इन्ट्यूशन या अन्त:प्रज्ञा से प्राप्त आदेशों के पीछे बुद्धि और reason नहीं होता। सूचनाएँ प्राप्त होती हैं पर प्राप्त सूचनाओं का प्रकट में कोई बुद्धि-संगत और यथार्थ आधार न होने पर भी वे सूचनाएँ एकदम सही निकलती हैं और कल्याणमयी तथा उन्नतिदायक होती हैं। अधिक सोने वाले को अन्तरात्मा से जो संकेत मिलेगा उसे वह समझेगा नहीं। समझेगा भी तो ध्यान नहीं देगा, ध्यान भी देगा तो उसको सहज विश्वास नहीं होगा और तर्क-वितर्क करेगा। किन्तु अल्पाहारी और अल्पनिद्रानुरागी के चित्त की शुद्धि हो जाती है, क्योंकि प्रमाद की जड़ ही कट जाती है।

स्वर योगी को स्थिर चित्त वाला होना चाहिये। जिनकी बुद्धि अनिश्चय में रहती है, जो जल्दी ही उद्वेगों को प्राप्त हो जाते हैं, जो विपरीत परिस्थिति में चित्त-संयम खो देते हैं और जो हर क्षण में अपने विचार को बदलते रहते हैं,

उन्हें स्वर योग का साधन नहीं करना चाहिये। यह बात बिल्कुल सही है कि जो इन तीन नियमों—स्वल्प भोजन, स्वल्प निद्रा और स्थिर चित्तता का अभ्यास नहीं करेगा, वह स्वर योग में दीक्षित नहीं हो सकता।

योग में एक और विचित्रता पाई जाती है। जो इस विद्या में रुचि रखते हैं और इसका अभ्यास करना शुरू करते हैं, उनमें फिर आवश्यक गुण स्वत: आना शुरू हो जाते हैं। बुराइयाँ तथा अनुचित आदतें और व्यवहार अपने आप छूटने लग जाते हैं।

देखा जाए तो स्वर योग प्रत्येक साधक से उतने ही अनुशासन व willing obedience की माँग करता है जितना कि किसी भी भौतिक विज्ञान या टेकनिकल कॉलेज की संस्थाएँ करती हैं। फर्क यही है कि स्वर योग जैसी सूक्ष्म विद्याओं के योग्य गुरुओं और ट्रेनिंग सेन्टर्स की नितान्त कमी है।

इसलिये आज जरूरत यही है कि इन पुरानी विद्याओं के प्रति लोगों के खोए हुये विश्वास को पुन: स्थापित किया जाय। स्वर योग का अभ्यास करने से इन विद्याओं की उपयोगिता, वैज्ञानिकता तथा सत्यता स्वयं प्रामाणित हो जाती है। अभी हाल में मद्रास की एक अंग्रेजी पत्रिका में यह समाचार छपा था कि एक व्यक्ति के लड़के की बस-दुघर्टना से मृत्यु हो गई। लोगों ने ड्राइवर पर मुकदमा चलाना चाहा पर लड़के के पिता ने मना कर दिया और कहा कि लड़के की मृत्यु इस महीने में होने वाली थी, यह मुझे बहुत पूर्व से मालूम था। इसलिये ड्राइवर पर मुकदमा चलाना बेकार है। लड़के का पिता ज्योतिषी था। स्वर ज्ञान भी उसे रहा होगा, क्योंकि स्वर ज्ञान के बिना ज्योतिष अधूरा माना जाता है।

सिद्ध स्वर-योगी बनने के लिए कुछ और साधनाएँ भी आवश्यक होती हैं। ये साधनाएँ हैं—त्राटक साधना, प्राण साधना, तत्त्व साधना और ध्यान योग। अन्तिम तथा सबसे जरूरी चीज है गुरु-तत्त्व। विद्याएँ तो सभी सीखी जा सकती हैं, पर सद्य: फलप्रदायिनी और यशस्विनी विद्या 'गुरु कृपा' से ही प्राप्त होती है। हर एक क्षेत्र में जानकार लोग तो हजारों-लाखों होते हैं पर सिद्ध कोई-कोई ही होता है। ऐसा क्यों? केवल गुरु की कृपा दृष्टि से सिद्धि मिलती है। इसे orthodox view कहने के लिये सबको स्वतंत्रता है, परन्तु जो बात सनातन सत्य है उसे लोक-आलोचना के भय से छिपाना या न स्वीकार करना हम से नहीं हो सकता। ये विद्याएँ गुरु-परम्परा से ही अभी तक चली आ रही हैं और चलती रहेंगी। इसी कारण ये अभी तक जीवित हैं। योग विद्या की धारा

के नीचे सिद्धों के ज्ञान-भण्डार के अजस्त्र स्रोत बह रहे हैं और जिनके ऊपर उनकी कृपा हो जाती है, वे कुछ पा लेते हैं।

सूर्योदय-तालिका

साधकों की सुविधा के लिये यहाँ अंग्रेजी महीने की पहली तारीख का सूर्योदय समय दिया जा रहा है। इसी समय के अनुसार स्वर योग का अभ्यासी यह पता लगाये कि कितनी देर तक कौन-सा स्वर बहना चाहिये। एक-एक घंटे पर चन्द्र और सूर्य स्वर बारी-बारी से बहते हैं। सूर्योदय का समय तो प्रतिदिन बदलता रहता है, परन्तु यह अन्तर कुछ मिनटों का ही होता है। गर्मियों में सूर्योदय जल्दी और जाड़ों में देर से होता है। सबसे जल्दी सूरज उगने का समय गर्मियों में 5.12 बजे (मध्य जून) है और सबसे देर में सूर्योदय का समय जाड़ों में 6.48 बजे (मध्य दिसम्बर) होता है। इस तालिका से साधकों को एक अन्दाज भर लग जाएगा। यहाँ पर सम्वत् 2020 अर्थात् 1963-64 के महीनों की पहली तारीख के सूर्योदय काल का समय दिया गया है।

सूर्योदय काल 1963-64 में–

1 मई 1963	5.31
1 जून 1963	5.15
1 जुलाई 1963	5.13
1 अगस्त 1963	5.23
1 सितम्बर 1963	5.43
1 अक्टूबर 1963	6.05
1 नवम्बर 1963	6.28
1 दिसम्बर 1963	6.44
1 जनवरी 1964	6.46
1 फरवरी 1964	6.36



जप योग

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 1970, 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

जप योग

सन् 1970 में मुंगेर में संचालित प्रथम त्रिवर्षीय संन्यास सत्र के शुभारम्भ के अवसर पर प्रकाशित इस पुस्तक में श्री स्वामी सत्यानन्द जी ने जप योग के समस्त पहलुओं को अत्यंत स्पष्ट, सरल, सुबोध और व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया है।

जप योग पर इस प्रामाणिक रचना के अनुशीलन और अनुसरण से इस मार्ग के नए और अनुभवी, दोनों तरह के साधक आशातीत लाभ उठा सकते हैं।

– *सम्पादक*

भूमिका

प्रस्तुत पुस्तिका 1 जुलाई 1967 से 31 मार्च 1968 तक बिहार योग विद्यालय, मुंगेर में योग-शिक्षक-प्रशिक्षण शिविर में, 'जपयोग' पर परमहंस स्वामी सत्यानन्द सरस्वती द्वारा अंग्रेजी में दिये गये प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद है।

स्वामीजी ने जपयोग के विषय को यहाँ अत्यन्त स्पष्ट, सरल, सुचारु और व्यावहारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। ये प्रवचन इस मार्ग के एकदम नये तथा अनुभवी, दोनों साधकों के लिये उपयोगी होंगे। इस विषय पर स्वामीजी का पूर्ण व्यावहारिक दृष्टिकोण इस विषय को समझने में पाठकों की बहुत ही मदद करेगा। जपयोग के सूक्ष्म पहलुओं को भी यहाँ अत्यन्त सरलतापूर्वक स्पष्ट किया गया है। विषय की व्याख्या शास्त्रीय न होकर एकदम वैज्ञानिक है। यही इस पुस्तक की विशेषता है। इसे पढ़ने के बाद एक अश्रद्धालु नास्तिक भी जपयोग की मनोवैज्ञानिक तथा व्यावहारिक महत्ता को स्वीकार किये बिना न रह सकेगा।

पूज्य स्वामीजी के हम अत्यन्त आभारी हैं, जिन्होंने इन पृष्ठों में छिपे गूढ़ ज्ञान को हिन्दी पाठकों के लाभ के लिये अनुवादित कर प्रकाशित करने की अनुमति हमें दी। चुम्बक की तरह आकर्षित करने वाला उनका सरल प्रेम, उनकी आध्यात्मिक शक्ति तथा सत्य के प्रति उनकी अटूट निष्ठा को उनके शिष्य-गण तथा उनके संपर्क में आने वाला कोई भी व्यक्ति अनुभव किये बिना नहीं रह सकता।

स्वामीजी सभी के लिये अनवरत प्रकाश के केन्द्र बिन्दु तथा प्रेरणा के स्रोत हैं और आने वाली पीढ़ियों के लिये आशा की किरण हैं।

इस पुस्तक को अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करने का मुझे जो अवसर मिला उसे मैं अपना सौभाग्य समझता हूँ।

—स्वामी साधनानन्द सरस्वती

जपयोग

परिभाषा

हम जपयोग के विषय पर इस दृष्टि से विचार करेंगे जिससे इस अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा आश्चर्यजनक विषय का महत्त्व आपकी समझ में अच्छी तरह आ जाए। जपयोग की विधि तथा मार्ग किसी भी प्रकार के खतरे से एकदम खाली है। यह तीव्र मुमुक्षुओं तथा जन-साधारण, सब के लिये एकदम सरल तथा सुगम भी है।

जपयोग की परिभाषा देने के लिये हमें इसके दोनों शब्दों को अलग-अलग लेना पड़ेगा। 'जप' शब्द का अर्थ होता है किसी शब्द को बिना रुके बार-बार बोलना या दुहराना। इस तरह जपयोग की परिभाषा ऐसे कर सकते हैं कि यह एक ऐसी आश्चर्यजनक विधि है जिसके द्वारा हम अपनी चेतना को बार-बार दुहराते हुए उच्चतम चैतन्य से एकता प्राप्त कर सकते हैं। चेतना एक सूक्ष्म तत्त्व है और उसे दुहराने के लिये हमें एक आधार की आवश्यकता है। इसे विस्तार के साथ हम आगे समझायेंगे।

लाभ

जपयोग अंतश्चेतना से संपर्क स्थापित करने का एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। व्यक्तिगत अंतश्चेतना की जागृति तथा आध्यात्मिक शक्तियों के विकास का यह एक पूर्ण विज्ञान है। सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में इस विषय पर हमेशा विशेष जोर दिया गया है। ईश्वर पर विश्वास रखने वाले धर्म, जैसे हिन्दु धर्म, इस्लाम तथा ईसाई धर्म, तथा ईश्वर पर विश्वास न रखने वाले धर्म, जैसे बौद्ध धर्म, सभी ने जपमाला के उपयोग की सलाह दी है। सभी भाषाओं के ग्रन्थों में जपयोग के विषय की चर्चा की गई है। इनमें सबसे

महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है जॉन वुडरुफ की 'द सरपेंट पावर'। श्री स्वामी शिवानन्द जी भी कहा करते थे कि जपयोग आत्म-साक्षात्कार का 'सबसे सस्ता और सबसे सरल' तरीका है।

जपयोग का महत्त्व इसलिए है कि यह एक स्थिर तथा बिना किसी खतरे का मार्ग है, और इसका अभ्यास हर कोई कर सकता है।

जपयोग का मार्ग छोटा नहीं है, परन्तु है निश्चित। योग के अन्य मार्गों में एक न्यूनतम योग्यता अथवा कम-से-कम एक साधारण समझदारी की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु जपयोग एक सामान्य व्यक्ति तथा एक बुद्धिजीवी, दोनों के लिए समान रूप से उपयोगी तथा उपयुक्त है। इसके लिये किसी विशेष तैयारी की आवश्यकता नहीं। इसके लिये कोई पूर्व ज्ञान भी जरूरी नहीं। इसके लिये सिर्फ कुछ मंत्रों की आवश्यकता पड़ती है। यदि उनका अभ्यास विशेष परिस्थितियों तथा नियमों के अनुसार किया जाए तो वे आपको उन्नत बनाने के लिये पर्याप्त हैं। मंत्र विशेष रूप से शक्तिशाली तब बनते हैं जब उनका अभ्यास भाव और भक्ति के साथ किया जाए। वे कभी-कभी आध्यात्मिक विचार-तरंगों के माध्यम बन जाते हैं। जिस प्रकार नौकर अपने मालिक की सेवा करता है तथा उसकी सुख-सुविधा का ध्यान रखता है, उसी प्रकार मंत्र भी मानव व्यक्तित्व की सेवा करता है, तथा उसकी देखभाल करता है। उदाहरण के लिये, जप उन लोगों को भी लाभ पहुँचाता है जो असामान्य विचार, मानसिक विकृति अथवा आत्मविश्वास की कमी के शिकार हों। अन्य प्रकार के मानसिक विकारों में भी जप से लाभ होता है। यह कैसे होता है? मुख्य बात यह है कि जप से मनुष्य की चेतना में परिवर्तन होता है—मनुष्य ईश्वरत्व के समीप पहुँचता है। यह तभी संभव है, जब मंत्र-जप में कुछ प्रगति हो जाए। आगे चलकर हम 'सिद्ध मंत्र' के विषय पर विचार करेंगे।

विधि

प्रारम्भ में जपयोग की विधि किसी गुरु से सीखनी चाहिये। जप का अभ्यास माला से अथवा बिना माला के भी किया जा सकता है। माला से जप का अभ्यास और बिना माला या किसी अन्य बाहरी आधार के अजपा-जप का अभ्यास किया जाता है। जप में सबसे महत्त्वपूर्ण बात है अपनी चेतना को बार-बार दुहराना—यह एक वृत्त में भी हो सकता है और त्रिकोण में भी। एक खास गिनती के बाद आपकी चेतना वहीं लौट जाती है जहाँ से वह शुरू हुई

थी। अपनी चेतना को एक विशेष संख्या में घूमने दीजिये। उदाहरण के लिये, 108 बार या उससे अधिक भी, जब तक आपका मन शिथिल न हो जाए। मंत्र को बार-बार दुहराने से तथा साथ-ही-साथ माला के स्पर्श की चेतना से मन एक चक्र में फँसकर अंतर्मुख हो जाता है।

जप का अभ्यास यद्यपि किसी भी समय किया जा सकता है परन्तु इसके लिये सबसे उपयुक्त समय माना गया है प्रातः ब्रह्म-मुहूर्त, कोई भी काम करने से पहले। दूसरा उपयुक्त समय है रात्रि, सोने से पहले। जप सोने से पूर्व अंतिम कार्य हो। जो जप द्वारा अपनी अंत:शक्तियों को जागृत करना चाहते हों, उन्हें अपने गुरु के आदेशानुसार हमेशा निश्चित समय पर जप का अभ्यास करना चाहिये। जिन्हें अपने जीवनयापन के लिये कठिन श्रम करना पड़ता है उनके लिये सुविधा को दृष्टि में रखते हुए समय में कुछ हेरफेर किया जा सकता है, परन्तु आध्यात्मिक साधकों के लिये अपने गुरु के आदेशों का पूर्णरूपेण पालन करना अत्यन्त आवश्यक है। यद्यपि जप अपेक्षाकृत सरल पद्धति है, फिर भी उसके लिये कुछ समय, धैर्य, दृढ़ निश्चय, इच्छा शक्ति तथा निरन्तर ध्यान तथा श्रद्धा की आवश्यकता तो है ही।

मंत्र-दीक्षा

मंत्र-दीक्षा लेना शिष्य के लिये उसी तरह आवश्यक है, जिस तरह छोटे बच्चे के लिये पाठशाला में प्रवेश लेना। जपयोग के अभ्यास के लिये दीक्षा प्रथम आवश्यकता है। परम्परा के अनुसार गुरु से व्यक्तिगत रूप से विधिवत् मंत्र दीक्षा लेना अथवा गुरु से स्वप्न में दीक्षा प्राप्त करना आवश्यक है। मंत्र का चुनाव शिष्य की व्यक्तिगत रुचि पर निर्भर करता है। मंत्र तभी प्रभावशाली होगा जब साधक का मन उससे काफी प्रभावित हो।

जब मंत्र स्वप्न में प्रकट होता है, तब उससे मन पर बहुत गहरा असर पैदा होता है, और वह साधक का प्रथम मंत्र होगा। उसके लिये वह एक बहुत ही आश्चर्यकारक शब्द होगा, जिसे उसे कभी नहीं बदलना चाहिये। कभी-कभी मन के अचेतन स्तर से ऐसी भावनाएँ उठती हैं, जो मंत्र पर से आपकी श्रद्धा के विरुद्ध विचार पैदा करती हैं। उन पर ध्यान नहीं देना चाहिये। आपका प्रथम मंत्र ही आपके जीवन का अन्तिम मंत्र होना चाहिये। ऐसे दृष्टिकोण से ही आपको अधिक लाभ होगा। कहा भी गया है कि 'ऐकै साधे सब सधे, सब साधे सब जाय'।

इष्ट-देवता अथवा रूप-चैतन्य

मंत्र-जप से जब मन शिथिल हो जाता है उस समय आपको इष्ट-देवता अथवा रूप-चैतन्य की आवश्यकता होती है। जब आप अपने मंत्र द्वारा अपनी चेतना को बार-बार दुहराते हैं, तब उसके फलस्वरूप आपका मन अन्दर जाता है। अन्दर जाने पर वह कहाँ टिकेगा? रूप-चैतन्य अथवा इष्ट-देवता उसके ठहरने के स्थान का काम करेगा।

'इष्ट-देवता' रूप-चैतन्य (psychic symbol) का हिन्दी नाम है। इष्ट का अर्थ है इच्छित और देवता का अर्थ है दिव्य-पुरुष। मंत्र विचार-तरंगों का ऐसा मेल है, जिससे एक विशिष्ट रूप का निर्माण होता है। मंत्र का उच्चारण चाहे मौखिक हो अथवा मानसिक, उससे नि:सृत ध्वनि-तरंगों से एक मानसिक रूप का निर्माण होता है। इष्ट का चुनाव चाहे तो आप स्वयं कर सकते हैं, अथवा आपके गुरु जाग्रत या स्वप्न अवस्था में उसका बोध आपको करा सकते हैं।

सभी मंत्रों के इष्ट-देवता होते हैं। इसका मतलब यह हुआ कि उन सबके रूप होते हैं जो भौतिक नहीं सूक्ष्म होते हैं। ये किसी देवता अथवा ईश्वर के रूप हो सकते हैं। जब आप मंत्र का जप करते हैं, तब जिस रूप का निर्माण होता है वह आपकी चेतना की ही छाया होती है। जब आपका मन अन्दर जाता है तब इष्ट का रूप मन के टिकने का सहारा बन जाता है। संस्कृत में उसे 'मूर्ति' कहते हैं, जिसका अर्थ है मानसिक शक्तियों की अदृश्य अभिव्यक्ति।

सभी मंत्रों का एक विशेष 'बीज-मंत्र' भी होता है। उदाहरण के लिये 'ॐ' को लें। उसकी अपना एक विशिष्ट ध्वनि-तरंग है। उच्चारित शब्द-तरंगों से एक सूक्ष्म ध्वनि-तरंग की उत्पत्ति होती है, जो इष्ट-रूप से साम्य रखती है। संस्कृत के प्रत्येक शब्द, प्रत्येक अक्षर का अपना एक विशिष्ट ध्वनि-तरंग-क्षेत्र होता है। जब उन्हें मंत्र में विशेष रूप से एक-दूसरे से मिला दिया जाता है तब उनके उच्चारण से एक सूक्ष्म रूप का निर्माण होता है। उनके द्वारा किसी देव या देवी, किसी फूल अथवा किसी गन्ध की भी अभिव्यक्ति हो सकती है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस विज्ञान की जानकारी आर्य जाति को थी और उन्होंने इसका प्रचार तथा संरक्षण भी किया है।

इस तरह इष्ट ऐसे सूक्ष्म-रूप हैं जिनका भौतिक अस्तित्व से पूर्ण मेल है। इसलिये यह नितान्त आवश्यक है कि आपका मंत्र ऐसा हो जिसे आप पसन्द करें तथा वह आपकी श्रद्धा और बौद्धिक विश्वास के अनुरूप हो।

माला

मालाएँ अनेक प्रकार की होती हैं जिनमें आम तौर से 108 मनके या दाने होते हैं। जिन मालाओं का व्यापक प्रचार तथा उपयोग है, वे हैं तुलसी, चन्दन, स्फटिक और रुद्राक्ष।

तुलसी की माला आमतौर से राम, कृष्ण तथा विष्णु के भक्त जपते हैं। यह माला विशेष रूप से उन साधकों के लिये उपयोगी है जो पूर्ण निरामिष, अत्यधिक संवेदनशील तथा भावुक प्रकृति के हैं।

भावुक प्रकृति के लोगों को चन्दन की माला का उपयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि वह सूक्ष्म मानसिक तरंगों का एक बहुत ही संवेदनशील माध्यम है। इसकी सुगन्ध बहुत मीठी, और साथ ही तीक्ष्ण होती है। यह अपने चारों ओर सूक्ष्म मानसिक तरंगों को आकर्षित करती है। आमतौर से लोग तुलसी के बाद चन्दन की माला ही पसन्द करते हैं।

स्फटिक की माला देवी के भक्त अदृश्य तथा अचेतन शक्तियों की जागृति के लिये जपते हैं। स्फटिक के मनके बड़े शक्तिशाली होते हैं। इन मनकों में बहने वाली दिव्य तरंगों को साधक आमतौर से बर्दाश्त नहीं कर सकते।

राजयोग तथा ध्यान की सिद्धि हेतु शिव की पूजा करने के लिये रुद्राक्ष की माला का उपयोग किया जाता है। रुद्राक्ष के मनके नेपाल में पाये जाने वाले एक प्रसिद्ध फल की गुठली हैं। वे जपयोग के अभ्यास के लिये बहुत शक्तिशाली माने जाते हैं। भारत में वे हाथ तथा गले में भी पहने जाते हैं। रक्तचाप, हृदय रोग तथा अनिद्रा जैसी शिकायतों के लिये उन्हें उपयोगी माना जाता है।

जप-साधना

जप के 5 तरीके हैं–

(1) बैखरी–मुँह से बोलकर।

(2) उपांशु–फुसफुसाहट के साथ।

(3) मानसिक–मन ही मन।

(4) लिखित–लिखकर।

(5) अजपा–बिना माला के श्वास के साथ।

आप इनमें से एक या एक से अधिक तरीका अपने लिये चुन सकते हैं। तंत्र-शास्त्र में मंत्रों का जप विशेष विधि या ढंग से करने का विधान है, जिसमें मंत्रों के उच्चारण की गति, ध्वनि आदि सम्मिलित हैं।

बैखरी जप मुँह से आवाज करते हुए किया जाता है। आवाज की गति सम होनी चाहिये। बैखरी जप करते समय समताल में ध्वनि पैदा की जाती है जिसका असर मस्तिष्क पर होता है। कुछ देर ऐसा करने से मन शान्त हो जाता है तथा उसमें दिव्य-भाव प्रकट होता है।

उपांशु जप फुसफुसाहट के साथ मंत्र का जप करने को कहते हैं, जिसे कोई दूसरा न सुन सके। जप इतना धीमा होना चाहिये कि जप करने वाला सुन भर सके। मंत्र का उच्चारण करते समय सिर्फ ओंठ हिलते हैं तथा ध्वनि-यंत्र में साधारण संकोच तथा विस्तार होता है। इस जप में आवाज पैदा नहीं करते हैं। इस जप की विधि में बैखरी से अधिक ध्यान की आवश्यकता होती है, जिसके फलस्वरूप मानसिक शक्तियाँ अधिक आसानी से सिमटने लगती हैं।

मानसिक जप में मन के सिवाय और किसी भी अंग में गति या स्पंदन की आवश्यकता नहीं पड़ती। इस प्रकार के जप में अभ्यासी को अपने मंत्र को मन-ही-मन दुहराना पड़ता है।

लिखित जप का अभ्यास उस समय कराया जाता है जब अभ्यासी जप के अन्य अभ्यासों द्वारा कुछ एकाग्रता की स्थिति प्राप्त कर चुका हो। लिखित जप अधिकतर किसी नोट-बुक या कॉपी में, लाल, हरी या नीली स्याही से कई सौ बार किया जाता है। अक्षर अत्यन्त छोटे होने चाहिये तथा उन्हें पूरी एकाग्रता, सुन्दरता, सफाई तथा सावधानी से लिखना चाहिये। यदि उपरोक्त सभी बातों का ध्यान रखा जाए तो लिखित जप मानसिक जप से भी अधिक शक्तिशाली हो जाता है। लिखित जप के बाद मानसिक जप आवश्यक है, क्योंकि जप को लिखने के बाद उसे मन-ही-मन दुहराना भी आवश्यक है।

अजपा जप, जप की अगली सीढ़ी है जिसका अभ्यास तब तक नहीं करना चाहिये, जब तक पहले अभ्यासों में पूर्णता प्राप्त न हो जाए। अजपा-जप में माला, कलम, पेन्सिल या कागज, किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है। आपको केवल अपने श्वास की चेतना रखनी है तथा श्वास की गति के साथ मन-ही-मन मंत्र को दुहराना है।

मानसिक जप का अभ्यास करने से पहले बैखरी तथा उपांशु जप का अभ्यास काफी हो जाना चाहिये। जिनका मन स्थिर नहीं है, वे जब तक अन्य प्रकार के जप का अभ्यास न कर लें तब तक उन्हें मानसिक जप में सफलता नहीं प्राप्त होगी। यदि कोई व्यक्ति मूढ़ है, अथवा अशान्त तथा विक्षिप्त है तो उसे जप के ऊँचे अभ्यासों से प्रारम्भ नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से

हो सकता है कि वह ऊँघने लगे, माला उसके हाथ से गिर पड़े या वह मनका घुमाना ही भूल जाए। साधक को निद्रा, अनमनस्यकता तथा अचैतन्यता से बचना चाहिये। कभी-कभी यह भी होता है कि साधक अपने इष्ट-मंत्र को दुहराना भूलकर कोई ऐसी बात दुहराने लगता है जो उसके अर्धचेतन में रहती है। कुछ समय के लिये मन भटक जाता है तथा मंत्र जपना छोड़कर इधर-उधर चक्कर काटने लगता है। कई बार मन को इन भटकावों का ज्ञान भी नहीं रहता।

कभी-कभी साधकों को यह भ्रम हो जाता है कि उनका मन एकाग्र हो गया है, लेकिन बैखरी या उपांशु जप करते-करते ज्योंही वे आँखें मूँदते हैं, उन्हें यह पता भी नहीं चलता कि वे कहाँ हैं। यदि उनसे पूछा जाय कि उन्हें कैसा लग रहा है, तो वे तुरन्त जवाब देंगे कि 'बहुत अच्छा'। इसका मतलब यह है कि जब वे सोने लगे थे या उनका मन भटक रहा था तब उसका उन्हें पता ही नहीं था। मन पूरे समय मंत्र-जप में तल्लीन था या नहीं, इसका पता लगाने का एक तरीका है। मान लीजिये कि आपको एक लाल बिन्दु की लगातार चेतना रखने को कहा जाता है। इस बात को कैसे समझा जाए कि आपकी चेतना लगातार उस बिन्दु पर थी या नहीं? हो सकता है कि मन इस बीच कई बार इधर-उधर भटक गया हो। जब मन भटकता है तब मंत्र के शब्दों का सिलसिला चेतना से लुप्त हो जाता है। इसलिए इन गलतियों को रोकने के लिये बैखरी-जप सबसे अच्छा तरीका है। प्रारम्भ में ही चेतन स्तर पर इन गलतियों को रोकना सरल है। नहीं तो बाद में चित्त की गहराइयों में होने वाली गड़बड़ियों को सुधारना कठिन हो जाता है।

बैखरी जप से एक और भी लाभ है। उससे मस्तिष्क शब्द-तरंगों से भर जाता है। लगातार एक घण्टे तक महामंत्र का बैखरी-जप करने के बाद मुझे ऐसा लगता था मानो मेरे मस्तिष्क का एक आवरण दूर हो गया हो। मुझे अनुभव होता था कि मैं शक्ति से भर गया हूँ। सभी साधकों का यह आम अनुभव है। औपचारिक सम्मोहन में भी इसी सिद्धान्त से काम लिया जाता है। यदि किसी व्यक्ति से लगातार कई घण्टों तक किसी मंत्र का जप कराया जाए तो उसका मन चेतना के एक विशेष स्तर पर जा पहुँचता है। मन की वह एक अत्यन्त संवेदनशील स्थिति होती है। उस स्थिति में यदि उसे कोई सुझाव दिया जाए तो उसका मन उस बात को अवश्य स्वीकार कर लेगा। बुरी आदतों से ग्रस्त व्यक्ति अपनी आदत सुधारने के लिये इस उपाय का सहारा ले सकते हैं।

जपयोग के अभ्यासी को हमेशा गुरु के निर्देशन में अपना अभ्यास करना चाहिये। परम्परागत गुरु एक भला और परोपकारी व्यक्ति होता है। उसका कोई निजी स्वार्थ नहीं होता। इसलिए भारत में अधिकांश व्यक्ति गुरु से ही मंत्र-दीक्षा लेते हैं। उन्हें इस बात का पूरा विश्वास होता है कि गुरु एक ऐसा व्यक्ति है जो कभी भी उनसे अपना कोई स्वार्थ-साधन नहीं करेगा। न भौतिक स्तर पर और न ही मानसिक, सामाजिक या मनोवैज्ञानिक स्तर पर। वह वीतरागी है, याने व्यक्तिगत स्वार्थ के परे है। गुरु में इन गुणों के रहने पर बुजुर्ग उनसे मंत्र-दीक्षा लेने की सलाह देते हैं। भारत में विवाह के समय प्रत्येक लड़के-लड़की को मंत्र में दीक्षित किया जाता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि मंत्र-दीक्षा न लेने से मनुष्य की प्रगति तथा मुक्ति नहीं हो सकती। कुछ समय पूर्व तक तो भारत में अदीक्षित स्त्री को रसोईघर में घुसने नहीं दिया जाता था।

जप का उद्देश्य मन की एक ऐसी स्थिति पैदा करना है जिसमें मन सुझाव ग्रहण कर सके। इस प्रकार गुरु आपके आध्यात्मिक विकास में मदद कर सकता है। गुरु आपके मन को तो नहीं बदल सकता लेकिन इस कार्य में आपकी मदद अवश्य कर सकता है, क्योंकि मनुष्य की कमियों तथा कमजोरियों की उसे पूरी जानकारी रहती है।

जपयोग के अभ्यास से आप अपनी चित्त-भूमिका को इस भाँति तैयार कर सकते हैं जिसमें इष्ट-रूप का चित्र आसानी से उभर सके। यदि आप किसी लक्ष्य पर ध्यान करना चाहते हैं और यह कार्य आपको कठिन मालूम होता है, तो आप ध्यान करने के एक घण्टे पहले बैखरी जप का अभ्यास कर लें।

बैखरी जप का अभ्यास बहुधा वाद्य यंत्रों सहित, अलग-अलग ध्वनियों में कई लोग मिलकर भी करते हैं। कई स्थानों में तो एक ही मंत्र को बिना रुके लगातार कई वर्षों तक जपा जाता है। कुछ स्थानों में तो लगातार 800 वर्षों से मंत्र का जप चालू है। इस कार्य के लिये विशेष समितियाँ गठित हैं, जिनपर यह कार्यभार सौंपा गया है। शिवानन्द आश्रम, ऋषिकेश में सन् 1943 से लगातार चौबीसों घण्टे महामंत्र का जप चालू है। आज तक इस क्रम में एक मिनट की भी रुकावट नहीं हुई है। मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि मंत्र के इस प्रकार निरंतर उच्चारण से वातावरण में अत्यन्त शक्तिशाली ध्वनि लहरियाँ भर जाती हैं। जब मैंने सर्वप्रथम स्वामी शिवानन्द जी के आश्रम में प्रवेश किया, उस समय वहाँ चल रहे अखण्ड-जप की ध्वनि और स्पंदन मुझे अभी भी याद है।

जब सर्वप्रथम मैं स्वामीजी से मिलने गया तो मुझे उस बड़े हॉल से गुजरने का अवसर मिला जहाँ अखण्ड-कीर्तन जारी था। उसका मुझ पर जबरदस्त प्रभाव पड़ा। मुझे लगा मानो मैं एकदम बदला हुआ व्यक्ति हूँ। वह अनुभव उसी प्रकार का था जिस प्रकार तपती धूप में घण्टों काम करने के बाद एक वातानुकूलित कमरे में पहुँचने पर किसी व्यक्ति का हो सकता है। मेरा ख्याल है कि वह एक संवेदनशील व्यक्तित्व पर एक शक्तिशाली वातावरण का प्रभाव था। इस तरह बैखरी, जप के अभ्यास का बड़ा ही शक्तिशाली तरीका है, क्योंकि उससे शक्तिशाली चुम्बकीय तरंगों का निर्माण होता है।

उपांशु जप, मंत्र को फुसफुसाहट की ध्वनि के साथ जपने को कहते हैं। जप का यह तरीका उन लोगों के लिये अच्छा है जो किसी विशेष उद्देश्य के लिये अधिक समय तक किसी मंत्र का जप करना चाहते हैं। मंत्र-विज्ञान के अनुसार मंत्र जप का उपयोग प्रारब्ध को बदलने तथा जीवन-धारा को सुचारु गति से संचालित करने के लिये भी किया जा सकता है। आप विश्वास करें या न करें, बहुत लोगों का ऐसा विश्वास है कि विभिन्न मंत्र भिन्न-भिन्न उद्देश्यों की सिद्धि में सहायक हो सकते हैं। यहाँ मैं कलकत्ता हाईकोर्ट के एक भूतपूर्व न्यायाधीश, सर जॉन वुडरुफ का उदाहरण प्रस्तुत करूँगा। किसी एक मुकदमे में वे एक व्यक्ति के विरुद्ध फैसला देने में स्वयं को असमर्थ अनुभव करने लगे, क्योंकि उनका मन डाँवाडोल होने लगा। अपने मन की स्थिति पर उन्हें आश्चर्य होने लगा, क्योंकि यह उनके स्वभाव के विपरीत था। जब उन्होंने स्वयं जाँच की तो पता चला कि उस मामले की दोनों पार्टियाँ उनका मन अपने पक्ष में करने के लिये मंत्र का प्रयोग कर रही थीं।

इस घटना के बाद उन्होंने मंत्र तथा तंत्र-शास्त्र का अध्ययन किया। इस विषय पर उन्होंने गहरी खोज की। जैसा कि सर्वविदित है, उन्हें इस विषय की जानकारी रखने वाला पहला यूरोपीय माना जाता है।

यह प्रसंग मंत्र के प्रभाव के अनेकों उदाहरणों में से एक है। यह उदाहरण मैंने इस उद्देश्य से दिया है कि आपको इस बात का आभास मिल जाए कि जाग्रत तथा अर्ध-जाग्रत मन पर मंत्र का क्या असर हो सकता है। जो इस दिशा में पुरुषार्थ करते हैं, वे मंत्रों के द्वारा वस्तुओं को चलायमान कर सकते हैं। इन उद्देश्यों के लिये विशेष मंत्र होते हैं जो आमतौर से लोगों को जाहिर नहीं किये जाते। तंत्र एक ऐसा विज्ञान है जिसके द्वारा मन की तरंगों को शक्ति में

परिणत किया जाता है और फिर उस शक्ति का प्रयोग किसी विशेष उद्देश्य के लिये किया जाता है।

लिखित जप में जैसा कि आपको बतलाया जा चुका है, बिना माला और बिना उच्चारित ध्वनि के ही मंत्र का अभ्यास किया जाता है। दुनियाभर के हिन्दुओं में एक प्रथा प्रचलित है कि श्रावण के महीने में वे बेल के पत्तों को इकट्ठा कर उस पर मंत्र लिखते हैं। आमतौर से लोग इन पत्तों पर चन्दन अथवा लाल रंग की स्याही से 'ॐ नमः शिवाय' का मंत्र लिखते हैं। उसके बाद उन पत्तों को देवार्पण कर दिया जाता है। यह अभ्यास पूरे एक माह तक चलता है, जिसमें सुबह से शाम तक लिखने का यह क्रम चलते रहता है। दूसरे दिन सुबह लोग मन्दिर में जाकर, मंत्र का मौखिक उच्चारण करते हुये ये बेल-पत्र अपने देवता को चढ़ा देते हैं।

अजपा जप का अभ्यास यदि बैखरी, उपांशु, मानसिक और लिखित जप के बाद किया जाए तो उसका असर बहुत शक्तिशाली होता है। साधक यदि ठीक ढंग से तैयार हो चुका है और सही ढंग से जप का अभ्यास करता है, तो अजपा बहुत प्रभावशाली होता है।

बैखरी, उपांशु तथा मानसिक जप का अनुपात 3:2:1 का होना चाहिये। यदि आप तीन माला बैखरी करते हैं, तो दो माला उपांशु तथा एक माला मानसिक जप करें। साधक की रुचि तथा समय के अनुसार इस अनुपात में परिवर्तन भी किया जा सकता है। दीक्षा लेने के समय से लेकर सफलता प्राप्त करने तक साधक में जबरदस्त विश्वास तथा स्थायी धैर्य का होना जरुरी है।

जपयोग का प्रभाव

जप का प्रभाव इन्द्रियों पर, मन पर, शरीर की गतिविधियों पर, अतीन्द्रिय स्वभाव पर, वातावरण पर, और आध्यात्मिक चेतना के स्तर पर देखा जा सकता है।

जपयोग का अभ्यास साधारण व्यक्तियों को मुख्यतः उनकी अंतश्चेतना के जागरण के उद्देश्य से कराया जाता है। जप के अभ्यास से शरीर पर भी प्रभाव पड़ता है। स्थूल शरीर के माध्यम से जप सूक्ष्म चेतना को जागृत करता है। जब तक शरीर, मन अथवा इन्द्रियों पर जप का प्रभाव लक्षित न हो, तब तक उसके प्रभाव पर विश्वास करना असम्भव है। शरीर के प्रभावों को देखकर अंतश्चेतना के प्रभावों को जाना जा सकता है। हम सब को मालूम है

कि अंगों से इन्द्रियाँ परे हैं, मन इन्द्रियों से परे है, अंतश्चेतना मन से परे है तथा आत्मा अंतश्चेतना से भी परे है। आत्मा का अनुभव ही जप का लक्ष्य है।

जप के अभ्यास द्वारा व्यक्ति केवल विश्वास के क्षेत्र में ही प्रगति नहीं करता। मनोविज्ञान तथा परा-मनोविज्ञान के क्षेत्र में जिन लोगों ने खोज की है उनका दावा है कि इसके द्वारा मनुष्य शरीर में स्पष्ट परिवर्तन होते हैं। शब्द द्वारा मानव मस्तिष्क में होने वाले परिवर्तनों पर काफी प्रयोग किये गये हैं। विभिन्न प्रकार की ध्वनियों से मस्तिष्क में जो परिवर्तन होता है उसे रिकॉर्ड किया गया है। बाद के वैज्ञानिकों ने जो प्रयोग किये, उससे यह पता लगा कि विभिन्न ध्वनियाँ विभिन्न रूपों का निर्माण करती हैं। कई मनोवैज्ञानिक तथा परामनोवैज्ञानिक इन प्रयोगों से होने वाले नतीजों से आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पता चला कि विचार दूसरों के मस्तिष्क पर चोट करते हैं। इस सम्बन्ध में साइकिक रिसर्च इन्स्टीट्यूट, दिल्ली द्वारा काफी तथ्य इकट्ठे किये गये हैं। 'क्या विचार एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाते हैं?' इस विषय पर काफी अनुसन्धान किया गया है।

देश तथा देश के बाहर जो प्रयोग किये गये उनकी जाँच से पता चला कि तीव्र इच्छाशक्ति से भेजे गये शक्तिशाली विचार-स्पंदन दूसरे व्यक्ति तक अवश्य पहुँचते हैं, चाहे वह व्यक्ति कहीं भी रहता हो। वे इस नतीजे पर भी पहुँचे कि विचारों को वस्तुओं का रूप भी दिया जा सकता है। जप के विषय को ठीक से समझने के लिये अनेक भ्रांत धारणाओं को हटाना जरूरी है, परन्तु अन्त में यह निश्चित है कि शब्दों की गति तथा एकलयता का विचारों पर अवश्य प्रभाव पड़ता है।

मूलत: जप का इन्द्रियों पर पाँच प्रकार का प्रभाव पड़ता है। इन्द्रियों से मेरा मतलब पाँच ज्ञानेन्द्रियों तथा पाँच कर्मेन्द्रियों से है। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ आँख, कान, नाक, त्वचा और जीभ हैं, जिनका सम्बन्ध देखने, सुनने, सूँघने, स्पर्श करने और स्वाद लेने से है। पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं–हाथ, पैर, मुँह, गुदा तथा जननेन्द्रिय। जप का अभ्यास करने वालों का ऐसा अनुभव है कि जप से एक प्रकार की बेहोशी की स्थिति पैदा होती है, जिससे इन्द्रियाँ अंतर्मुखी होती हैं। उसे चेतना का लोप होना नहीं कह सकते, लेकिन कहा जा सकता है कि इन्द्रियों की चेतना लुप्त होती है, तथा वे अपने उद्गम-स्थान में लौटती हैं। यह उन लोगों के लिये लाभदायी है जिनकी इन्द्रियाँ चंचल हैं। जप उन्हें शांत करता है।

दूसरी बात, जप मन की गतिविधियों को भी प्रभावित करता है। लगातार कई घण्टों तक जप करने से मन पर एक सौम्य प्रभाव पड़ता है और मन की अशान्ति दूर होती है। चिन्ताएँ, मनोविकार तथा मन की दूसरी गड़बड़ियाँ भी मिटती हैं। मन स्थिर होकर शांत तथा पवित्र बनता है। मन की स्थिति वैसी ही हो जाती है जैसे प्रशान्तक दवा लेने के बाद। अंतर इतना ही है कि जप का प्रभाव स्थाई होता है। जप के बाद एक नशा-सा होता है।

लोग शांति प्राप्त करने के उद्देश्य से मादक-पदार्थों का सेवन करते हैं, परन्तु इनसे मन सुस्त हो जाता है। उसे उदासी घेर लेती है। कुछ समय के लिये मानसिक क्रियाएँ धीमी पड़ जाती हैं, जिससे शांति का अनुभव तो होता है, परन्तु क्षणिक ही। जप में अन्य प्रभावों के अलावा जागरूकता भी रहती है। मादक द्रव्यों से मन की निम्न प्रवृत्तियाँ अर्द्धचेतन स्तर पर सरक जाती हैं, जिससे इन्द्रियाँ शांत प्रतीत होती हैं, परन्तु जपयोग का साधक उच्च प्रवृत्तियों के क्षेत्र में उठ जाता है। वह उच्च मन के क्षेत्र में प्रवेश करता है, जो अधिक शक्तिशाली है। उच्च मन के क्रियाशील होने के कारण भौतिक-स्तर पर इन्द्रियाँ स्वयमेव शांत हो जाती हैं।

अभ्यास काल में मन चुस्त, चौकन्ना तथा आत्म-चेतना से भरपूर रहता है, और वासना, क्रोध, ईर्ष्या आदि दुर्भावनाओं से पूरी तरह मुक्त रहता है। बिना श्रद्धा के भी जप का अभ्यास उन लोगों के लिये अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हो सकता है जो अकस्मात् रूप से चिन्ता, संशय अथवा अशांति के शिकार हो जाते हैं। यदि कोई निश्चित नियमों के साथ जप का अभ्यास करे तो उसे दस-पन्द्रह दिनों में ही इसका लाभ पता चल जाएगा। वह आत्मज्ञानी भले ही न बन जाए, परन्तु वह अनेक प्रकार की स्वनिर्मित, झूठी तथा अपने ऊपर लाद ली गई अनेक प्रकार की कल्पित, व्यर्थ की मानसिक धारणाओं से मुक्त अवश्य हो जाएगा। सजग शांति तथा विचारों की दिव्य पृष्ठभूमि का निर्माण करने के लिये जप से उत्तम अन्य कोई साधन नहीं है।

तीसरी बात, जप का प्रभाव मानव शरीर के अवयवों के कार्यकलापों पर भी देखा जा सकता है। जप का जितना अधिक अभ्यास किया जाता है उतनी ही शरीर की आंतरिक कार्य-पद्धति (metabolic speed) धीमी होती है। इसके फलस्वरूप अधिक समय तक यौवन कायम रहता है। जबकि प्राणायाम का प्रभाव दूसरा ही होता है। जपयोग में विशेष आसन तथा प्राणायाम के साथ-ही-साथ नियमित हल्का भोजन लेने की भी व्यवस्था है।

भोजन शरीर के अवयवों की कार्य पद्धति को नियंत्रित करता है, जिससे जप का शरीर पर अधिक स्वास्थ्यकर प्रभाव होता है और हृदय को शांति तथा आराम पहुँचता है।

चौथा बिन्दु, जप मनुष्य के अन्तर्मन को, उसकी सूक्ष्म अन्तर्प्रज्ञा को भी प्रभावित करता है। यह निर्विवाद तथ्य है कि मनुष्य एक प्रज्ञाशील प्राणी है। जीवन के इस साधारण से सत्य को मनुष्य यदि समझ जाए तो उसका बड़ा हित हो सकता है। कुछ लोग प्रज्ञा की दृष्टि से अधिक विकसित होते हैं, कुछ विकास के क्रम में कुछ ही आगे बढ़े होते हैं और कुछ अपनी प्रज्ञात्मक प्रकृति से अनजान ही रहते हैं। अपने इस प्रज्ञाशील स्वभाव को मनुष्य ने सृष्टि के प्रारम्भ से ही विरासत के रूप में प्राप्त किया है। यदि मनुष्य प्रज्ञाशील प्राणी न होता तो शायद धर्म की आवश्यकता ही नहीं रहती।

मूलत: ईश्वर पर हमारा विश्वास मनुष्य इसी प्रज्ञाशील स्वभाव का परिचायक है। ईश्वर के बारे में हमारी धारणायें भिन्न-भिन्न हैं और उसके अस्तित्व का हमारे पास कोई 'प्रमाण' नहीं है। एक वैज्ञानिक, एक दार्शनिक, एक अनपढ़ तथा एक पढ़े-लिखे आदमी की ईश्वर के सम्बन्ध में अपनी अलग-अलग धारणाएँ होती हैं। किसी-न-किसी रूप में हम सभी ईश्वर या उसके विचार पर आस्था रखते हैं। जो ईश्वर को सिद्धान्तत: नहीं मानते वे भी अपने हृदय के किसी स्तर पर उस पर विश्वास करते हैं या फिर वे विचार-प्रेक्षण (telepathy) तथा दिव्य-दृष्टि (clairvoyance) आदि विद्याओं पर विश्वास करते पाये जाते हैं। मनुष्य स्वभाव की इन प्रवृत्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनुष्य मुख्यत: एक प्रज्ञाशील प्राणी है।

इस प्रज्ञात्मक या अतीन्द्रिय स्वभाव (psychic nature) का वास्तविक अर्थ क्या है? इसे समझाना कठिन है। किसी ऐसी बात का ज्ञान या झलक, जिसे व्यक्ति ने न देखा है, न सुना है, न किया है और न विश्वास ही किया है, इसी को प्रज्ञात्मक अनुभूति कहते हैं। मनुष्य ऐसी किसी चीज को सुनने लग जाता है जिसे उसने कभी नहीं सुना था। वह ऐसी किसी चीज पर विश्वास करने लग जाता है जिसपर उसने कभी विश्वास नहीं किया था। इस तरह के लोगों को प्रज्ञात्मक स्वभाव वाले लोग कह सकते हैं। मेरा तो ऐसा विश्वास है कि हर मनुष्य में किसी-न-किसी रूप में यह प्रवृत्ति पाई जाती है, जिसके कारण वह ऐसी चीजों को मानता है तथा उनकी खोज करता है। वह अनुभव करता है कि भौतिक संसार के परे भी कोई सत्य है। उसका जिज्ञासु स्वभाव

उसे अज्ञात को जानने के लिये प्रेरित करता है। आमतौर से वह अपने अन्दर ही इस बात की खोज करता रहता है और धीरे-धीरे अपने बुजुर्गों तथा पुस्तकों से इस बारे में अधिकाधिक जानकारी प्राप्त करता जाता है। एक अविश्वासी, नास्तिक व्यक्ति भी मनुष्य के इस स्वभाव से परिचित है।

जप के अभ्यास द्वारा अन्तर्मन की झलकें जाग्रत मन में उतरती हैं। ये झलकें पहले उसके अवचेतन तथा अचेतन स्तर पर ही छिपी तथा संचित पड़ी हुई थीं। आप जप का जितना अधिक अभ्यास करेंगे, उतना ही अधिक आप अपने अन्तर्मन का, अपने प्रज्ञात्मक व्यक्तित्व का ज्ञान प्राप्त करते जाएँगे। इसलिये यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि जप द्वारा मनुष्य के अतीन्द्रिय, प्रज्ञात्मक स्वभाव का परिष्कार होता है।

जैसा कि हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, जप का प्रभाव वातावरण तथा स्थान पर भी पड़ता है। भारत में अनेक ऐसे स्थान हैं जिनके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की 'अतार्किक' बातें प्रसिद्ध हैं, परन्तु उनकी सत्यता सही पाई गई है और उसका परीक्षण भी हो चुका है। उदाहरण के लिये, एक ऐसा स्थान है जहाँ कई जहरीले सर्प रहते हैं परन्तु उनके काटने पर भी आज तक किसी व्यक्ति की मृत्यु नहीं हुई है। एक ऐसा भी स्थान है, जहाँ पूर्णिमा के दिन एक सर्प आता है और लोगों को आशीर्वाद देकर चला जाता है। एक दिन जब मैं वहाँ आँखें मूँदकर बैठा हुआ था, तो अपने गले में मैंने एक ठण्ढी सरसराहट का अनुभव किया। तुरन्त एक आवाज आई, 'स्वामीजी, डरें नहीं। इस वातावरण में साँप आपको नहीं काटेगा।' उस स्थान के बाहर वही साँप किसी व्यक्ति को काट लेगा जिससे उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाएगी। ये कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिनसे वातावरण पर मंत्र के प्रभाव का पता चलता है। यह कहना कठिन है कि ऐसी कौन-सी सूक्ष्म तरंगें मंत्रों द्वारा प्रवाहित होती हैं और वातावरण में कौन-से प्रभाव डालती हैं, परन्तु कई स्थानों में मनुष्यों, पशु-पक्षियों तथा कीड़े-मकोड़ों पर भी सम्मोहन का प्रभाव डालने की शक्ति पाई जाती है।

मंत्रों के सूक्ष्म स्पन्दन किसी स्थान के वातावरण को परिवर्तित करने की शक्ति रखते हैं। गहन खोज के बाद रहस्य विद्या के जानकारों (occultists) का मानना है कि मनुष्य के अन्दर कुछ ऐसी बुनियादी विचारधाराएँ होती हैं जो क्षण-प्रतिक्षण बदलने वाले विचारों की पृष्ठभूमि में भी सदा क्रियाशील रहती हैं। वे निरन्तर प्रवाहित होकर मनुष्य के विकास की योजना को धीरे-धीरे

क्रियान्वित करती रहती हैं, उसके व्यक्तित्व को निरंतर परिवर्तित करती रहती हैं। इच्छाओं और विचारों से मनुष्य की आभा (aura) के रंगों में परिवर्तन होते रहता है। अर्द्धचेतन संस्कारों तथा इच्छाओं से मनुष्य का व्यक्तित्व बनता है और उसके इस व्यक्तित्व से उन प्रछन्न इच्छाओं के अनुरूप रंगों का प्रवाह नि:सृत होता है। कुछ लोगों की यह आभा एकदम अन्धकारयुक्त तथा घनी होती है। कुछ में वह एकदम हल्की तथा सौम्य रंग वाली होती है। बहुत-से व्यक्ति अपनी आभा को दूसरी जगह प्रक्षेपित भी कर सकते हैं।

मंत्रों के अभ्यास द्वारा मनुष्य के शरीर अथवा किसी स्थान से निकलने वाली आभा में सुधार होता है और उसमें चमक आती है। जिस प्रकार मंत्रों द्वारा मनुष्य में परिवर्तन होता है, उसी प्रकार शरीर, प्राण तथा स्थान में भी परिवर्तन होता है। इसीलिये सप्ताह, माह या वर्ष भर सामूहिक रूप से मंत्रों के जप का अभ्यास करना चाहिये। जो व्यक्ति थोड़ा भी संवेदनशील है, वह किसी तीर्थ अथवा पवित्र-स्थल के सौम्य स्पंदनों का तुरंत अनुभव प्राप्त कर सकता है।

अन्त में, हम जप द्वारा आध्यात्मिक चेतना को जगाने के विषय पर आते हैं। आध्यात्मिक चेतना, मानसिक चेतना से उच्च प्रकार की चेतना है। आध्यात्मिक चेतना का अर्थ अपने अन्दर की आत्मा की चेतना है। वह बाहरी वस्तुओं की चेतना से परे की चेतना है। जब कोई व्यक्ति आंतरिक चेतना में रमण करता है, उस समय वह बाह्य जगत् के प्रति अचेत रहता है। जप द्वारा मनुष्य एक आध्यात्मिक दृष्टि को प्राप्त करता है। जप एक प्रकार से नशे के समान ही होता है, परन्तु वह नशा नहीं है। उसका असर मनुष्य के पूरे व्यक्त तथा अव्यक्त स्वभाव पर छा जाता है। मादक वस्तु का प्रभाव तो केवल मनुष्य के शरीर पर होता है। सम्मोहन (Hypnotism) का प्रभाव केवल मनुष्य के मन पर होता है, परन्तु जप का प्रभाव मन और शरीर पर ही न होकर मनुष्य की अन्तरात्मा के भीतर प्रवेश कर जाता है।

जप अनुष्ठान–जप द्वारा चित्त का अनुशासन

जप द्वारा चित्त के अनुशासन के लिये हमें निम्न सात बातों का ध्यान रखना पड़ता है –

- एक निश्चित समय, स्थान, आसन और मालाओं की संख्या
- माला रखने का तरीका और उसे घुमाने की विधि
- मौसम

- भोजन
- जप का समय
- जप का लक्ष्य
- तांत्रिक संदर्भ

यदि हम चित्त के अनुशासन के लिये विशेष रूप से जप अनुष्ठान करना चाहते हैं, तो हमें उपरोक्त बातों पर विशेष ध्यान देना होगा।

'अनुष्ठान' का अर्थ होता है एक महान् कार्य अथवा नियमपूर्वक की हुई एक विशेष उपलब्धि। अनुष्ठान एक निर्दिष्ट समय के अन्दर किया जाने वाला कार्य है जो योजनापूर्वक एक उच्च लक्ष्य के लिये किया जाता है। जो भी जप अनुष्ठान करना चाहता है, उसे पहले ही से निम्न बातों का निश्चय कर लेना चाहिये–

- एक निश्चित समय
- स्थान
- आसन
- जप की संख्या का निश्चय
- माला का प्रकार
- मौसम के साथ तालमेल
- भोजन का निश्चय
- अनुष्ठान के दैनिक बैठकों की अवधि
- अनुशासन के अन्य नियम
- जप अनुष्ठान का प्रकार

जप अनुष्ठान दो लक्ष्यों में से एक के लिये किया जा सकता है। प्रथम, चित्त की शुद्धि, आध्यात्मिक उन्नति और कुण्डलिनी शक्ति के जागरण के लिये और दूसरा, मान, पद या धन जैसे किसी व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ण लक्ष्य के लिये।

उच्च शक्तियों को जागृत करने वाला कोई भी अभ्यास, जो उन शक्तियों को नियंत्रित करने की क्षमता हमें नहीं देता, खतरनाक है। इसलिए आध्यात्मिक मार्ग के साधक को जप अनुष्ठान एक ऐसे ढंग से करना पड़ेगा जिससे उसका सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म व्यवहार अनुशासन में रह सके। सूक्ष्म शरीर को अनुशासित करने का अर्थ है अपने अर्द्ध-चेतन व्यक्तित्व के एक बड़े हिस्से को अनुशासन में रखना। यदि ऐसा नहीं किया गया तो उच्च शक्ति अथवा

कुण्डलिनी के जागरण के फलस्वरूप मन के असन्तुलित होने का भी खतरा रहता है। जिस प्रकार शारीरिक व्यायाम, भोजन और शयन के द्वारा शरीर को अनुशासित किया जाता है, उसी प्रकार मानसिक अनुशासनों के द्वारा मन के विचारों को भी रोका अथवा अनुशासित किया जाता है। इसी प्रकार चित्त को अनुशासित करने के लिये जप का अभ्यास किया जाता है। साधक अपनी आदतों, प्रतिक्रियाओं तथा मन पर नियंत्रण प्राप्त करता है।

फिर मंत्र के चुनाव का सवाल उठता है। जप अनुष्ठान जब आध्यात्मिक लक्ष्य के लिये किया जाता है, तब उसके लिये भक्ति की भावना होना आवश्यक है, परन्तु जब जप किसी व्यक्तिगत उद्देश्य अथवा किसी 'सिद्धि' के लिये किया जाता है तब वह तंत्र-शास्त्र के अन्तर्गत आता है।

प्रथम लक्ष्य के लिये मंत्र का चुनाव साधक स्वयं कर सकता है। किस प्रकार का अनुष्ठान वह करना चाहता है इसका भी निर्णय वह स्वयं कर सकता है, या फिर मंत्र अथवा अन्य आदेश उसे स्वप्न में या ध्यान में प्राप्त हो सकते हैं। चाहे जो भी हो, किसी गुरु की मदद लेना हमेशा बेहतर रहता है। गुरु साधक के सूक्ष्म व्यक्तित्व, उसकी कमजोरियों तथा उसके रुझानों को जानता है। साधक इन बातों को स्वयं नहीं जानता। यदि उसकी भावनाएँ अनियंत्रित हैं, तो प्रतिक्रिया उल्टी हो सकती है और वह असफल हो जाएगा। उदाहरण के लिये, दुर्गाजी का मंत्र एक बहुत शक्तिशाली मंत्र है, और यदि सही ढंग से उसका जप किया जाए तो उससे बड़ी शक्तियाँ प्रकट हो सकती हैं। दुर्गा सृष्टि तथा जीवन के मूलभूत सत्यों की प्रतीक हैं। दुर्गा मंत्र के जप से अचेतन मन के उच्च स्तर अनावृत होते हैं। ऐसे साधक जो अपनी भावनाओं को नियंत्रित करना नहीं जानते या जिनमें अनियंत्रित मानसिक शक्तियाँ हैं, उन्हें मंत्र के द्वारा गुप्त शक्तियों के उत्थान से नुकसान की ही आशंका अधिक है।

दूसरे भी मंत्र हैं, जैसे रामजी के मंत्र। इन मंत्रों का मूल स्वभाव है मनुष्य के मन को शांति तथा आराम देना। शिव मंत्र आमतौर से वैराग्यभाव, आत्म-विभोरता तथा विरक्ति जगाने में सहायक होते हैं। इन गुणों से युक्त मनुष्य को सामान्य भाषा में मस्त कहते हैं। व्यक्तिगत स्वार्थ के लिये अनुष्ठान करने वाले साधक को तंत्र-विज्ञान जानने वाले किसी गुरु की मदद लेनी चाहिये। तांत्रिक गुरु योग्य शिष्य को उसके लक्ष्य की प्राप्ति के लिये उचित मंत्र में दीक्षित करेगा। वह उस मंत्र के अनुष्ठान के लिये आवश्यक सारे विधि-विधान भी बतलाएगा।

उच्चारण– यह बहुत महत्त्वपूर्ण है कि मंत्र के जप में उच्चारण एकदम सही हो–व्याकरण की दृष्टि से भी और शब्द की ध्वनि के दृष्टि से भी। जप करने का लक्ष्य आपका चाहे जो भी हो परन्तु इच्छित उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिये यह बहुत ही आवश्यक है। इस सम्बन्ध में गुरु के निर्देशों पर पूर्ण ध्यान रखा जाए। सब जगह यह बतलाया गया है कि हर परिस्थिति में गुरु की सलाह अवश्य ली जाए। मंत्र का चुनाव यदि किसी पुस्तक से किया जाए तो यह ध्यान रखा जाए कि वह बीज-मंत्र से संयुक्त हो और दोनों का उच्चारण एक साथ किया जाए।

बीज-मंत्र में भी शक्ति तभी आती है जब गुरु उसे शक्ति प्रदान करते हैं। मंत्र का प्रभाव तथा उसकी शक्ति उसके सही उच्चारण पर निर्भर करते हैं। मंत्र के सही उच्चारण से शक्तिशाली ध्वनि तरंगों का निर्माण होता है, जो अपने अनुरूप रंगों, रेखाओं और रूपों का निर्माण करते हैं। विचार तरंगों के भी साथ में जुड़ जाने से मंत्र का असर और भी बढ़ जाता है। इसलिये न केवल सही उच्चारण महत्त्वपूर्ण है, अपितु सही ध्वनि, एकाग्रता, कल्पना तथा रचनात्मक विचार-शक्ति का भी मेल होना आवश्यक है।

मंत्र तथा मालाओं की संख्या– कितनी बार मंत्र का उच्चारण किया जाए इसका निश्चय करने के लिये आपको अपने मंत्र के अक्षरों की संख्या को गिन लेना चाहिये। यदि मंत्र में पाँच अक्षर हैं तो आपको जप पाँच लाख बार करना चाहिये। बारह अक्षर के मंत्र का उच्चारण बारह लाख बार करना चाहिये। माला में 108 मनके होते हैं, जब आप हर मनके के साथ एक मंत्र का उच्चारण करते हैं तो एक माला घुमाने से मंत्र का 108 बार जप हुआ। आमतौर से एक माला जप करने के बाद उसे 100 मंत्र ही गिनते हैं, क्योंकि 8 मंत्रों को माला घुमाते समय होने वाली गलती के लिये छोड़ दिया जाता है। इस तरह एक माला में सौ मंत्र तथा तीन माला में तीन सौ मंत्र गिने जाते हैं।

समय– पाँच अक्षर वाले मंत्र का एक घण्टे में अधिक-से-अधिक चालीस माला जप माना जाता है। इस गति से पाँच लाख बार मंत्र जपने के लिये 125 घण्टे की आवश्यकता पड़ेगी। तीन घण्टे प्रतिदिन के हिसाब से 41 दिन की आवश्यकता पड़ेगी। 125 घण्टे के समय को कितने भी दिनों में बाँटा जा सकता है। साधक को इसका निश्चय अपनी सहूलियत के अनुसार कर लेना चाहिये, परन्तु एक बार समय का निश्चय कर लेने के बाद उसे बदलना नहीं चाहिये।

स्थान और आसन–रहस्यविद्या विज्ञान (Occult Science) के ग्रन्थों में सूक्ष्म-प्रकृति से सम्बन्धित बातें पाई जाती हैं। उनमें बतलाया गया है कि मनुष्य हर समय अपने अन्दर से एक सूक्ष्म तत्त्व प्रवाहित करता है, जिसे आभा के रूप में देखा जा सकता है। यह सूक्ष्म-तत्त्व, सुगन्ध-युक्त अथवा दुर्गन्ध-युक्त हो सकता है। स्थान अथवा आसन का चुनाव उपरोक्त बातों को ही ध्यान में रखकर किया जाता है।

अनुष्ठान के लिये चुने गये आसन तथा स्थान को कभी नहीं बदलना चाहिये। एक ही स्थान में लगातार जप करने से उस स्थान में सूक्ष्म तरंगें प्रवाहित होती हैं। एक आसन में लगातार बैठने से भी सूक्ष्म आध्यात्मिक तरंगों का प्रवेश होता है। ज्योंही आप अपने निश्चित स्थान तथा आसन में बैठते हो, शक्ति तथा तरंगों का प्रवाह अपने आप होने लगता है। साधक को इससे बड़ी मदद मिलती है। आसन या तो व्याघ्र या मृग चर्म का हो सकता है, अथवा कुश या नये कम्बल पर बैठ सकते हैं। आत्मशुद्धि के लिये किया गया अनुष्ठान मृग चर्म, कम्बल अथवा कुश का हो सकता है। तांत्रिक अनुष्ठान के लिये बाघम्बर अथवा कुश का उपयोग किया जा सकता है।

दिशा–अनुष्ठान करते समय अपना मुँह उत्तर या पूर्व की ओर की ओर रखना चाहिये। दक्षिण या पश्चिम की ओर मुँह नहीं रखना चाहिये। हमारी पृथ्वी सूरज के चारों ओर चक्कर लगाती है। सूर्य की किरणों द्वारा हमें जीवन तथा शक्ति प्राप्त होती है। उत्तरी ध्रुव हमेशा सूर्य के केन्द्र की ओर खिंचा रहता है, जबकि दक्षिणी ध्रुव सूर्य से दूर रहता है। इसीलिये हमारे देश में उत्तर और पूर्व की ओर मुँह रखकर ही धार्मिक तथा महत्त्वपूर्ण कार्य करने की परम्परा है।

माला–माला का चुनाव मंत्र के चुनाव पर निर्भर करता है। अपने मंत्र अथवा उद्देश्य के अनुसार रुद्राक्ष, स्फटिक, तुलसी अथवा चंदन की माला का चुनाव किया जा सकता है। जिस माला का उपयोग एक विशेष मंत्र के लिये हो, उसका उपयोग नहीं करना चाहिये। जिस माला का उपयोग जप अनुष्ठान के लिये किया गया हो, पहनने के लिये उसका उपयोग नहीं किया जाना चाहिये। यदि कोई माला टूट जाए और उसके मनके गुम जाएँ, तो नई माला लेनी चाहिये।

पुरानी माला का कुँए अथवा गंगा में विसर्जन कर देना चाहिये। टूटी हुई माला को रेशम की रस्सी से फिर गूँथ लेना चाहिये। सोने, चाँदी अथवा ताँबे में माला नहीं गूँथनी चाहिये।

मौसम—जप-अनुष्ठान के लिये बहुत गर्म अथवा बहुत सर्द मौसम ठीक नहीं है। भारतीय मौसम को देखते हुए 15 जुलाई से 15 सितम्बर का समय सबसे उत्तम माना जाता है।

भोजन—जप-अनुष्ठान के समय दूध और फल का भोजन सबसे उत्तम है। यह भोजन दो बार अथवा गुरु के निर्देश के अनुसार लिया जा सकता है। यदि अनुष्ठान 15 दिन के लिये हो तो पूरी, रोटी, उबली हुई हरी सब्जी, दही अथवा दूध (गाय का दूध अधिक उपयुक्त है) लिया जा सकता है। भोजन हल्का होना चाहिये तथा सूरज डूबने से पहले ले लेना चाहिये। यदि जप-अनुष्ठान एक-दो महीने से अधिक के लिये करना हो तो दिन में दो बार हल्का भोजन लिया जा सकता है। पूरी, साग, दूध, दही, हलवा और सूखा मेवा लिया जा सकता है। चावल- रोटी न ही लें तो ठीक है। मद्य-माँस पूर्णरूप से वर्जित है। पश्चिमी मौसम में दूध, फल, मलाई, डबल-रोटी, मक्खन आदि उपयुक्त रहेंगे। मैं एक ऐसे यूरोपियन को जानता हूँ जो तीन वर्ष सिर्फ दूध पर रहा और पूर्णरूप से स्वस्थ रहा।

कई वर्षों तक लगातार अनेक अनुष्ठान करने से एक आध्यात्मिक शक्ति प्रकट होती है और साधक उस शक्ति का संचय करता है। आध्यात्मिक उन्नति तथा आत्मशुद्धि के लिये जो अनुष्ठान किये जाते हैं उनसे हमेशा शक्ति पैदा होती है जिसका उपयोग ऊँचे तथा महान् लक्ष्यों के लिये किया जाता है।

तंत्र-शास्त्र के नियमों से जो अनुष्ठान किये जाते हैं, उनसे भी महान् शक्ति का संचय होता है, जो अपने को व्यक्त करने की प्रतीक्षा करती है। उनमें विधिपूर्वक अभ्यास की आवश्यकता रहती है जिसे गुरु-चरणों में बैठकर ही सीखा जा सकता है। केवल समर्पित तथा श्रद्धालु शिष्य ही उन्हें सीखने की योग्यता रखते हैं। यदि गुरु यह समझता है कि शिष्य मन से पवित्र तथा मानवता के प्रति श्रद्धालु है तो वह उसे तांत्रिक अनुष्ठान करने का आदेश दे सकता है।

मंत्र की शक्ति को जागृत करने के लिये गुरु शिष्य को विशिष्ट तथा व्यक्तिगत आदेश देता है जो अनुष्ठान के अनुशासन से सम्बन्धित होते हैं। निर्दिष्ट संख्या का दस प्रतिशत मंत्र जप और अधिक किया जाता है और अनुष्ठान के अन्तिम दिन उसे अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है। तंत्र-शास्त्र भारतीय गुप्तविद्या का एक अंग है, जिसके मंत्र-अनुष्ठान का तरीका ऊपर बतलाया गया है। अंत में ध्यान देने की बात है कि इन अभ्यासों से जिन

सूक्ष्म शक्तियों का विकास होता है, उनका उपयोग सही और गलत, दोनों ढंग से हो सकता है।

जप अनुष्ठान करते समय शारीरिक कष्ट होने पर आसन बदला जा सकता है। जहाँ तक सम्भव हो, तीन घण्टे एक ही आसन में बैठने का प्रयत्न करना चाहिये। तीन घण्टे बाद कुछ समय के लिये शिथिलीकरण किया जा सकता है। रात्रि को भी साधक को तीन से पाँच घण्टे आराम करना चाहिये। जप के अभ्यास के साथ-साथ उपनिषद्, गीता, रामायणादि आध्यात्मिक साहित्य का भी स्वाध्याय करना चाहिये। आठ घण्टे जप अनुष्ठान में, आठ घण्टे स्वाध्याय में तथा आठ घण्टे आराम-स्नानादि में लगाने चाहिये। जप अनुष्ठान अपनी रुचि के अनुसार बैखरी, उपांशु, मानसिक अथवा सम्मिलित रूप से कुछ-कुछ समय तक तीनों में किया जा सकता है। अनुष्ठान का कमरा तथा वस्त्र अलग होना चाहिये। पैखाना, पेशाब इत्यादि के लिये जाने पर इन कपड़ों तथा माला को नहीं धारण करना चाहिये। उन्हें अनुष्ठान के कमरे में ही छोड़ देना चाहिये। पैखाना इत्यादि के बाद स्नान कर लेना उत्तम है, जिससे कि सूक्ष्म शरीर पवित्र रहे तथा गंदे वातावरण का असर शरीर तथा कपड़े में न रहने पाए।

मंत्र का अर्थ

मंत्र भाषा का एक अंग है जो व्याकरण के नियमों पर आधारित है और जिसका कोई विशिष्ट अर्थ होना चाहिये, ऐसा समझना एक बड़ी भूल है। लोग समझते हैं कि संस्कृत एक पुरानी भाषा है तथा मंत्रों की रचना भाषा के नियमों के अनुसार संस्कृत के विद्वानों द्वारा अन्य साहित्य के समान ही की गई होगी। ऐसा नहीं है। मंत्रों की उत्पत्ति एक रहस्यमय ढंग से हुई है। यदि उनकी रचना की गई होती तो उन्हें 'मंत्र' नहीं 'श्लोक' कहा जाता। 'श्लोक' का अर्थ है 'पद्य'। विश्वप्रसिद्ध ग्रन्थ 'गीता' और 'रामायण' साहित्यिक रचनाएँ हैं, परन्तु मंत्रों को कभी साहित्यिक रचना नहीं माना जाता। श्लोकों की उत्पत्ति मनुष्य के मन द्वारा लिखकर या बोलकर की गई है परन्तु मंत्रों के द्वारा गुप्त शब्द रहस्य प्रकट होता है।

वैदिक मत के अनुसार सत्य तो यह है कि मंत्र गहरे ध्यान की अवस्था में प्रकट होते हैं। *'मननात् त्रायते इति मंत्रः'* यही मंत्र की परिभाषा है। 'मननात्' का अर्थ है, गहरे ध्यान में। 'त्रायते' का अर्थ है, जो मुक्त करता है। 'इति' का

अर्थ है, ऐसा है। इस प्रकार मंत्र की परिभाषा इस तरह की जा सकती है कि यह ऐसा रहस्यमय शब्द है जो गहरे ध्यान में प्रकट होता है, और जो मनुष्य को उसके क्लेशों से मुक्त करता है। हमारे अन्दर प्रतीकों के रूप में कई प्रकार के विचार, शक्तियाँ और अनुभव विद्यमान हैं। मंत्र अचेतन के प्रतीक हैं, और उन्हें हर किसी के सामने प्रकट नहीं किया जाता। उन्हें प्राप्त करने के लिये चन्द शक्तिशाली लोगों को ही चुना जाता है। मंत्र की परिभाषा इस प्रकार भी की जाती है—ऐसा शब्द जो अचेतन अवस्था में सुना गया हो और जिसे चेतन अवस्था में याद किया गया हो। वह एक ऐसी स्थिति में प्रकट होता है जब मनुष्य गहरे ध्यान की स्थिति में होता है और उसे लेशमात्र भी संसार की चेतना नहीं होती। बाहरी चेतना एकदम लुप्त हो जाती है, केवल आंतरिक ज्योति प्रकाशित रहती है। यह स्तर इन्द्रिय-चेतना के स्तर से एकदम भिन्न है।

ऋचाएँ भी ध्यान की अवस्था में ऋषियों के अवचेतन स्तर पर प्रकट हुईं। बाद में उन्हें लिख लिया गया और वे हिन्दू-साहित्य का अंग बन गईं। अन्य धर्मों में भी आंतरिक आवाज के आधार पर लिखी हुई पुस्तकें हैं, जिन्हें श्रुति या प्रकट किया हुआ ज्ञान (Revelation) माना जाता है। कुरान इसी प्रकार का ग्रन्थ है। वेद भी इसी प्रकार प्रकट हुए ज्ञान का संग्रह है। ऋषि की गहन चेतना में प्रकट हुए मंत्र का पहला अक्षर बीज मंत्र कहलाता है। शुरू में कुछ दिनों या हफ्तों तक साधक को बीज मंत्र का ही उच्चारण करके उसकी ध्वनि को सुनना चाहिये। उदाहरण के लिये 'क्रीं' का जोर से उच्चारण कर उसकी ध्वनि को सुनते जाएँ। अन्त में आप देखेंगे कि यही ध्वनि मंत्र के रूप में बदल जाती है। 'ह्रीं' 'ॐ नमः शिवाय' का बीज मंत्र है। अतएव 'ॐ नमः शिवाय' का जप करने के पहले 'ह्रीं' का जप करना चाहिये। कुछ मंत्रों के अर्थ होते हैं, और कुछ के नहीं।

मंत्र या तंत्र शास्त्र के मंत्र रचे नहीं गये, बल्कि प्रकट हुए। वे कई प्रकार के हैं, क्योंकि हर किसी का अचेतन मन भिन्न-भिन्न प्रकार का है। इसलिये अचेतन स्तर से प्रकट होने वाले मंत्रों में भिन्नता है। जिन लोगों के समक्ष मंत्र प्रकट किये गये, वे 'ऋषि' कहलाते हैं। ऋषि का अर्थ है अचेतन का द्रष्टा। समाधि के तुरन्त पहले ऋषित्व प्राप्त होता है।

अचेतन मन कोई मृत या जड़ तत्त्व नहीं है। उसमें क्रियाशीलता होती है, परन्तु चेतन स्तर अचेतन के प्रतीकों और संस्कारों को व्यक्त नहीं कर पाता। बहुत-से व्यक्ति अचेतन की आवाज को ईश्वर की आवाज समझ बैठते हैं।

यदि ऐसा होता तो अचेतन ही ईश्वर का पर्यायवाची होता। बहुत-से लेखकों ने ईश्वर को इसी प्रकार समझाने का प्रयत्न किया है। वे ईश्वर की अवधारणा को मनोविज्ञान से जोड़ने की कोशिश करते हैं। मेरे विचार से अचेतन एक बहुत जबरदस्त शक्ति है। वह हमारी वर्त्तमान स्थिति से बहुत अधिक शक्तिशाली है। न वह शून्य है, न चेतनता से परे ही है। वह भी चेतना की एक स्थिति है, परन्तु भौतिक अथवा जाग्रत चेतना से एकदम भिन्न।

प्रत्येक विचार का एक रूप होता है, जो ज्यामितीय हो सकता है या मानवीय। प्रत्येक विचार की एक आवृत्ति और एक गति होती है। कुछ विचार इतने सूक्ष्म होते हैं कि उनकी उपस्थिति का मन को तनिक भी ज्ञान नहीं रहता, यद्यपि अचेतन रूप से वे मौजूद रहते हैं। विचारों में आकार तथा विस्तार का गुण भी होता है। बहुधा विचार बड़े जोरदार या तीव्र होते हैं, भले ही स्थूल रूप से सुनाई न पड़ें। मनुष्य का भौतिक शरीर एक सीमा से आगे अनुभव करने में असमर्थ है।

कभी-कभी विचार इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम उन्हें उनके प्रतीकों द्वारा ही जान पाते हैं। ये प्रतीक मनुष्य तथा जानवरों की मिली-जुली आकृतियों से दिखते हैं। मानवीय विचारों की जड़ें पशुत्व की स्मृतियों में दबी रहती हैं। कुछ प्रतीक इस प्रकार होते हैं—मनुष्य का सिर और धड़ की जगह मछली की पूँछ या शेर अथवा नाग का पिछला हिस्सा। बहुतेरे विद्वानों का ऐसा मत है कि मनुष्य में विचार-शक्ति का विकास तो होता गया परन्तु उसकी भावनाएँ (instincts) पशु की ही हैं। भारत में विचारों के प्रतीकात्मक रूप मनुष्य हैं। ये मानव रूप स्त्री तथा पुरुष, दोनों ही प्रकार के हैं। मिस्र तथा अन्य पूर्वकालीन जातियों में विचारों को ज्यामितीय आकृतियों से व्यक्त करते थे। इन प्रतीकों को भारत में तन्त्र शास्त्र के रूप में स्वीकृत कर लिया गया।

उदाहरण के लिये अचेतन का प्रथम प्रतीक एक उल्टा त्रिकोण माना जाता है। इस तरह के रेखाचित्र विचारों के प्रतीक माने जाते हैं। विचारों की आकृति और आवृत्ति ही नहीं होती, मन में उनका एक चित्र भी बनता है। यदि मैं सोचता हूँ कि 'मैं कलकत्ता जाना चाहता हूँ', तो तुरन्त ही मन में 'पैसा, रेलगाड़ी और टिकट' के विचार प्रकट हो जाएँगे। विचार केवल बुलबुलों की तरह ही नहीं होते, परन्तु वे सीधे तथा तिकोने भी होते हैं। प्रथम रूप धारण करने के बाद अन्य रूपों से मिश्रित होकर वे नए रूप ग्रहण कर लेते हैं।

मंत्रों के भी रूप होते हैं, जिन्हें मंत्र-देवता के नाम से जाना जाता है। 'देवता' का अर्थ ईश्वर नहीं होता। इस शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'दिव्' धातु से होती है जिसका अर्थ है, प्रकाशित करना। तो देवता का अर्थ हुआ, 'प्रकाशवान् वस्तु'। जो अन्धकार में प्रकाशित हो, वह देवता है। टॉर्च के प्रकाश की भाँति चेतना अपना प्रकाश किसी वस्तु पर फेंकता है और वह वस्तु 'देवता' बन जाता है। इस तरह अचेतन समाधि की स्थिति में ऋषि को दो चीजों की अनुभूति होती है—पहला, मंत्र और दूसरा, देवता। हर मंत्र का एक देवता, एक प्रकट स्वरूप होता है।

मंत्र लेने के साथ ही साथ आपको मंत्र के देवता, ऋषि और मंत्र से सम्बन्धित शारीरिक केन्द्र का भी स्पष्ट ज्ञान हो जाना चाहिये। ये केन्द्र हाथों की दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवीं अँगुली से शुरू होते हैं। हथेलियाँ, भुजाएँ तथा छाती भी सम्बन्धित केन्द्र हैं। इन्हें संयुक्त रूप से 'हृदय' कहा जाता है, जिसमें हृदय, आँखें, कन्धे और बिन्दु शामिल हैं। मंत्र द्वारा इन केन्द्रों को छूने का एक तरीका है। बीज-मंत्र चेतना का स्पर्श करता है और अंगुलियाँ शरीर के केन्द्रों को छूती हैं। ईसाइयों में भी इसी प्रकार की विधि है, यद्यपि यह पूर्णरूप से समान नहीं है। इसका उद्देश्य चेतना को शरीर के विभिन्न हिस्सों में घुमाकर वहाँ की सुप्त शक्ति को जागृत करना है। इस विशेष विधि को 'कर-न्यास' या 'अंग-न्यास' कहते हैं। न्यास का अर्थ है छोड़ना या जमा करना। इस विधि द्वारा मंत्र की चेतना को शरीर के सब हिस्सों में भेजते हैं। जब आप जप करते हैं तब अपने अन्दर एक शक्ति पैदा करते हैं, जिसे शरीर के विभिन्न अंगों में बाँट दिया जाता है। 'कर-न्यास' अथवा 'अंग-न्यास' से मंत्र द्वारा पैदा हुई शक्ति, जप समाप्त होने तक शरीर में जमा रहती है। आप अपनी सम्पूर्ण चेतना को अपने अन्दर ले जाते हैं।

जप में 'आवाहन' भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। उच्च शक्तियों के आवाहन के लिये कुछ प्रार्थनाएँ भी अवश्य कर लेनी चाहिये। ये प्रार्थनाएँ किसी से कुछ माँगने के लिये अथवा किसी की स्तुति के लिये नहीं हैं। ये सिर्फ आवाहन मात्र हैं, जिसका अर्थ होता है बुलाना। इनके द्वारा आप किन्हीं विशेष शक्तियों को अपने कार्य में मदद के लिये बुलाते हैं। इसके लिये कुछ विशेष श्लोक हैं, जिनका शुरू में आवाहन के रूप में पाठ करना चाहिये। ये श्लोक उन देवताओं के स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिये विद्या की देवी सरस्वती हैं। आवाहन के श्लोकों में उनका बहुत ही आकर्षक तथा जीवन्त

चित्र खींचा गया है। यह चित्र रेखात्मक नहीं, आकारात्मक है। आवाहन की इन प्रार्थनाओं को जपयोग का ही एक हिस्सा समझकर उनका बहुत ही स्पष्ट ढंग से उच्चारण करना चाहिये। जप में एक भौतिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक क्रिया भी है, जिसे विसर्जन कहते हैं। इसका अर्थ है समाप्त करना। जप अनुष्ठान के अंत में, साधना को समाप्त करने के लिये विसर्जन की क्रिया की जाती है। जब आप विसर्जन करते हैं, तब उसका मतलब होता है कि अनुष्ठान के बाद आप अपनी चेतना को वापस खींच लेते हैं।

आवाहन के द्वारा सूक्ष्म शक्ति को चैतन्य किया जाता है परन्तु कार्य समाप्त होने पर उसे मुक्त कर देते हैं। उसे बिना 'विसर्जन' के मुक्त अथवा बिखराया नहीं जाता। जिन शक्तियों का आवाहन किया जाता है पर सही ढंग से विसर्जित नहीं किया जाता, वे सूक्ष्म स्तर पर आगे भी अपना असर दिखा सकती हैं। इसीलिए कई लोग जो परम्परागत तथा सही ढंग से अनुष्ठान नहीं करते, उन्हें कुछ असाधारण होते देखा जाता है। अनुष्ठान की अवशिष्ट सूक्ष्म तरंगें मानसिक धरातल पर गड़बड़ी पैदा करती हैं। विसर्जन की विधि गुरु द्वारा ही बतलाई जाती है। यह याद रखना चाहिये कि विसर्जन हमेशा अनुष्ठान के अन्त में किया जाता है। साधारण जप के बाद उसे कभी नहीं करना चाहिये।

जप के अभ्यास में ध्यान रखने योग्य कुछ विशेष बातें

जप का अभ्यास किसी भी विधि से किया जा सकता है, यद्यपि परम्परागत वैज्ञानिक नियमों के अनुसार जप-अभ्यास करना ज्यादा अच्छा है। जप ईश्वर के नाम का उच्चारण मात्र नहीं है, उसका शरीर के अन्दर की जैविक, रासायनिक तथा मानसिक कार्य प्रणालियों से भी गहरा सम्बन्ध है। बहुत-से लोग ऐसा विश्वास करते हैं कि उन्हें केवल ईश्वर के नाम का उच्चारण ही करना है, क्योंकि ईश्वर इससे प्रसन्न होते हैं। परन्तु मेरा प्रश्न है, 'क्या ईश्वर हमारे जैसा कोई साधारण मनुष्य है जो इस प्रकार की मामूली बातों से खुश या नाखुश होता है?' मेरी समझ में इस विषय को इस ढंग से देखना गलत है।

जप के लिए माला आवश्यक है और उसे किस प्रकार पकड़ना अथवा घुमाना है, यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है। ईश्वर के नाम का उच्चारण माला के साथ या बिना अथवा दायें या बायें, किसी भी हाथ की अंगुलियों से किया जा सकता है, परन्तु 'जप योग' में माला को अंगुलियों के बीच में सही ढंग से पकड़ा जाता है। चूँकि जप योग का उद्देश्य केवल ईश्वर का नाम जपना

न होकर साधारण मनुष्य के अन्दर एक आध्यात्मिक चेतना को जगाना है, इसलिये एक विशेष पद्धति की आवश्यकता है। जो केवल ईश्वर का नाम जपना चाहते हैं, वे उसे कैसे भी करें, उसके लिये कोई नियम नहीं है। उनकी माला में 50 मनके भी हो सकते हैं और 1000 भी। परन्तु जप योग के अभ्यास के लिये एक विशिष्ट संख्या की माला इसलिये जरूरी है कि उसके द्वारा मनुष्य के मन को ढाला जाता है। योग के बहुतेरे अभ्यास साधारण मनुष्यों की मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर कराये जाते हैं।

मनुष्य मन का स्वभाव ही कुछ ऐसा है कि वह अधिक देर तक स्थिर नहीं रहता। इसलिए एक ऐसा माध्यम या आधार चुनना जरूरी हो जाता है जिसके द्वारा यह पता लग जाए कि आप कहाँ ऊँघने लगे और कहाँ जप छूट गया। जिस प्रकार मील के पत्थरों के द्वारा रास्ते की दूरी का पता लगाया जाता है, उसी प्रकार माला भी आध्यात्मिक मार्ग की रचना करने में सहायक होती है। अपने अस्थिर मानसिक ढाँचे को नियंत्रण तथा निगाह में रखने के लिये माला एक मनोवैज्ञानिक आवश्यकता है। जप के समय मन की अनुपस्थिति को रोकने तथा पकड़ने में माला बहुत उपयोगी है। माला द्वारा अपनी प्रगति को भी नापने में मदद मिलती है। अभ्यास करते-करते मन में शांति तथा संतुलन स्थापित होता है और मंत्र का जप तथा अँगुलियों की गति नियमित हो जाती है।

माला के गिरने से इस बात का पता लग जाता है कि मन के साथ जप का सम्बन्ध टूट गया है। जप के द्वारा आप 'लय' की स्थिति को प्राप्त हो सकते हैं जो एक ऐसी अतीन्द्रिय स्थिति है, जिसमें मन अनुपस्थित रहता है। यदि आपके हाथ में माला है तो लय की स्थिति में आपकी माला आपके हाथों में ज्यों-की-त्यों स्थिर रह जाएगी। मन की इस स्थिति को बहुत-से लोग समाधि समझ लेते हैं।

मुझे भी एक बार ऐसा ही भ्रम हो गया था। एक दिन संध्या को छः बजे मैं हाथ में माला लेकर जप करने बैठा। कुछ समय तक जप करने के बाद मेरा मन लय स्थिति में चला गया और इस स्थिति से मैं सुबह चार बजे जगा। मैं बहुत प्रसन्न हो गया, क्योंकि मेरा ख्याल था कि मैंने 'समाधि' की स्थिति प्राप्त कर ली है। मैं तुरन्त अपने गुरु, श्री स्वामी शिवानन्दजी के पास गया और उनसे कहा, 'स्वामीजी, मैं लगातार कई घण्टों तक समाधि में था।' मुझे देखकर वे मुस्कुराये और केवल इतना ही कहा, 'बहुत अच्छा हुआ।'

मैं भारी दिल से वापस लौटा, क्योंकि मुझे उनसे वह प्रोत्साहन नहीं मिला, जिसकी मैंने उम्मीद की थी। बाद में उन्होंने मुझसे पूछा कि समाधि

की स्थिति में मेरा जप चालू था या नहीं? उन्होंने यह भी पूछा कि मेरे हाथ में माला थी या नहीं? मैंने जब 'नहीं' कहा, तब उन्होंने बतलाया, 'माला में तुम्हारा विश्वास हो या न हो, यह एक बौद्धिक विषय है, लेकिन ध्यान या जप में माला विश्वास-अविश्वास की चीज न होकर एक आवश्यकता है। घुमक्कड़ मन को नियंत्रण में रखने के लिये माला आवश्यक है। चेतना जगी हुई है अथवा सो गई है इसे जाँचने का भी कोई उपाय होना चाहिये। चेतना की गहराई में उतरने पर कुछ भी याद रखना असम्भव है। चेतना जब अन्दर में जगी रहती है, तब माला से ही यह पता लग सकता है कि आपकी अँगुलियाँ माला फिरा रही हैं, अथवा नहीं। यदि जप द्वारा एकाग्रता की प्राप्ति हो गई है, तो माला अँगुलियों के बीच समगति से घूमेगी। जब आध्यात्मिक चेतना का उदय होता है तब मन पूर्ण सक्रिय, चुस्त और अपने कार्य के प्रति पूर्ण सजग रहता है। माला पर विश्वास-अविश्वास उसके उपयोग में बाधक नहीं होना चाहिये।

माला के 108 मनके, पूर्ण चैतन्य तथा सृष्टि का प्रतिनिधित्व करते हैं। आठ मनके तो प्रकृति के आठ अंगों के द्योतक हैं, जबकि शून्य सम्पूर्ण सृष्टि का प्रतीक है। सौ की संख्या सृष्टि के अन्य तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करती है। इस 108 की संख्या का एक और अर्थ भी है। 1 सृष्टि की सम्पूर्ण चेतना का, 0 व्यक्त सृष्टि का तथा 8 प्रकृति के आठ अंगों का प्रतीक है। बहुत-से लोग 108 अवतारों का अर्थ भी लगाते हैं। अलग-अलग धर्मों में अलग-अलग संख्याओं को महत्त्वपूर्ण माना जाता है, उदाहरण के लिये 5, 7, 9, और 13। इसी प्रकार भारत में 108 को आध्यात्मिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण माना गया है। यह संख्या पवित्र तथा शुभ मानी गई है।

इन 108 मनकों के बीचों-बीच एक दाना होता है, जिसे 'मेरु' के नाम से जाना जाता है। इसे घुमाया नहीं जाता। 'मेरु' चेतना का वह बिन्दु है, जिसे अंगुलियाँ पार नहीं करतीं। वहाँ से वापस लौट जाना होता है। माला घुमाते समय आपको ध्यान रखना पड़ता है कि आप उसे अनवरत गोल-गोल न घुमाने लग जाएँ। 'मेरु' के पास गोल वृत्त टूट जाता है और वहीं से माला को उलटकर फिर नये सिरे से जप शुरू करते हैं। मेरु चेतना को जगाने का काम करता है। हम जो कार्य करने बैठते हैं उसकी चेतना भूलने नहीं देता।

माला घुमाते समय केवल तीन अँगुलियों का उपयोग होता है–दायें हाथ का अंगूठा, मध्यमा और अनामिका। उनके द्वारा एक बार में एक मनका

छूना पड़ता है। तर्जनी और कनिष्ठा अलग रहती हैं। अंगूठा और अनामिका पर माला को ढीले रखकर, अनामिका से मनकों को सरकाते चलते हैं। एक मनके पर मंत्र जप लेने के बाद अंगुलियाँ स्वाभाविक रूप से दूसरे मनके पर पहुँच जाती हैं, और फिर मंत्र का पुन: उच्चारण किया जाता है। लम्बे समय तक मंत्र जप करने से माला के वजन के कारण अंगुलियाँ थक जाती हैं। इसके लिये एक कपड़े के थैले का उपयोग किया जाता है जिसे 'गोमुख' कहते हें। यह थैला माला तथा हाथ के लिये आधार होता है। आपने बहुतों को यह थैला उपयोग में लाते देखा होगा।

जप करते समय नासिका में श्वास के प्रवाह पर ध्यान रखना चाहिये। एकाग्रता अथवा अन्य उपायों से कोशिश करनी चाहिये कि श्वास की गति दोनों नासिका पुटों में सम हो। जब दायीं नासिका से स्वर प्रवाहित हो रहा हो तथा बायीं नासिका बन्द हो तब जप शुरू कर देना चाहिये। परन्तु जब बायीं नासिका से स्वर प्रवाहित होता हो और दायीं नासिका बन्द हो तो दायीं ओर किसी चीज का सहारा लेकर झुक जाने से दायीं नासिका चलने लगेगी। स्वर बदलने का दूसरा उपाय है—जो स्वर चालू हो, उसी करवट लेट जाना चाहिये। उदाहरण के लिये, अगर आपका बायां स्वर चल रहा है, तो बायीं करवट थोड़ी देर लेटने से दाहिना स्वर चालू हो जाएगा। यह विषय 'स्वर-योग' से सम्बन्धित है।

जहाँ तक संभव हो ,जप में गलतियाँ नहीं करनी चाहिये। जप के शब्द वैज्ञानिक ढंग से व्यवस्थित किये रहते हैं और गलत ढंग से उनका उच्चारण करने से शरीर और मन, दोनों पर बुरा असर पड़ सकता है। जप का अभ्यास लोगों के बीच नहीं, हमेशा एकांत में ही करना चाहिये। मठ आदि की बात अलग है, लेकिन घर में जप का एक अलग कमरा निश्चित कर लेना चाहिये। जप के समय किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं होनी चाहिये। जप के द्वारा पैदा होने वाली मानसिक शक्ति का प्रयोग किसी विशेष लक्ष्य के लिये होना चाहिये, जिसे पहले से ही निश्चित कर लेना चाहिये। यह नियम है कि योगाभ्यास बेकार कौतूहल रखनेवाले तथा फालतू लोगों के सामने नहीं करना चाहिये। अतएव गोपनीयता परमावश्यक है, यद्यपि छिपाने लायक कोई बात नहीं है।

जैसा कि पहले ही बतलाया जा चुका है, मंत्र कभी बदलना नहीं चाहिये। ऐसा करने से जो गड़बड़ी हो सकती है, उसे सुधारना बहुत मुश्किल हो जाता

है। इसलिये परम्परा यही है कि शिष्य को हमेशा एक गुरु और एक मंत्र की ही शरण लेनी चाहिये। कभी-कभी भावनाएँ आपकी श्रद्धा में विघ्न पैदा करती हैं और आपको लगता है कि शायद दूसरा मंत्र आपके मंत्र से अधिक शक्तिशाली होगा। ऐसा अर्द्धचेतन तथा अचेतन स्तर पर लग सकता है और इसके कारण आपके मानसिक ढाँचे में विघ्न का अनुभव होगा। ऐसा नहीं होना चाहिये। आपका प्रथम निश्चय आखिरी निश्चय होना चाहिये। अचेतन मन के ढाँचे को एक ही आकार में ढालना अच्छा है। केवल तभी मंत्र असरदार होता है और उससे शक्ति प्रकट होती है। यदि आपको कोई शंका हो जाए तो किसी विश्वास-पात्र से उसका निराकरण कर लेना चाहिये।

यद्यपि जप आत्म-साक्षात्कार का सबसे सरल, सस्ता और उत्तम साधन है, फिर भी जरूरत से ज्यादा उतावलेपन से बचना चाहिये। बहुत अधिक जप आपको सुस्त तथा जरूरत से ज्यादा अंतर्मुखी बना सकता है। यह एक ऐसी तेज दवा के समान है, जिसे डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही लेना चाहिये। मंत्र-दीक्षा के समय गुरु एक संख्या निश्चित कर देता है। अधिक-से-अधिक तथा कम-से-कम का निश्चय कर दिया जाता है। मेरे गुरु ने मेरे लिये 5 माला सोकर उठने के तुरन्त बाद, 5 माला दोपहर के भोजन के बाद, 5 माला संध्या के भोजन के बाद और 5 माला सोने के पूर्व निश्चित कर दी थीं। उसे जपने के लिये मुझे केवल तीन मिनट ही लगते हैं। इस तरह इन बारह मिनटों ने मेरे मन को ऐसा अभ्यस्त कर दिया है कि ठीक समय होते ही मैं जप की स्थिति में पहुँच जाता हूँ। इसे ही मन का अनुशासन कहा जाता है। संख्या उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं है जितनी श्रद्धा और एकाग्रता। सुस्ती की स्थिति तक ले जाने वाली अंतर्मुखता उचित नहीं।

जप करते समय पूरी तरह जागरूक रहना चाहिये। बौद्धिक चेतना को आध्यात्मिक चेतना में बदलना चाहिये। न तो मन लुप्त होना चाहिये न ही श्रद्धा। और बुद्धि की खुराफात न शुरू हो जाए, इसका ध्यान रखना चाहिये। अपने नाड़ी-संस्थान को धीरे-धीरे प्रशिक्षण देना चाहिये। बिना समय देखे, सही समय पर अपने आप जप प्रारम्भ कर देना चाहिये।

दूसरों को अपनी माला कभी मत दें। यदि आप गले में माला धारण करना चाहते हैं तो उसके लिये अलग माला रखें। तंत्र-साधना में माला टूट जाने पर साधक को अभ्यास बन्द कर नई माला से प्रारम्भ करना पड़ता है। जप अनुष्ठान के लिये हमेशा एक अलग माला का उपयोग करना चाहिये।

मंत्र जप में व्याकरण की शब्द-ध्वनि के अनुरूप ही मंत्र का उच्चारण करना चाहिये, क्योंकि शब्द-ध्वनि की अंतर्मन में छाप पड़ती है। वेदों का उच्चारण विशिष्ट शैली में किया जाता है। यह दो प्रकार से किया जाता है। पहला, व्याकरण के नियमों के अनुसार किया गया सही उच्चारण। दूसरा, वह उच्चारण जिसमें आवाज प्रथम और पंचम स्वर के बीच बदली जाती है।

भारतीय संगीत शास्त्र में 'सा' और 'पा', इन दो स्वरों के समकक्ष चक्र, 'मूलाधार' और 'विशुद्धि' हैं। इनके उच्चारण का सही तरीका किसी जानकार व्यक्ति से सीखना चाहिये। मेरे कहने का मतलब यह है कि उच्चारण सही नहीं होगा तो अन्दर में अपेक्षित ध्वनि और रूप नहीं बन पाएगा। जो मंत्र बिना गुरु-निर्देश के पुस्तकों से चुना जाएगा, वह प्रभावशाली नहीं होगा।

माला घुमाने में बायें हाथ का उपयोग नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह कमजोर, कम सक्रिय तथा 'निगेटिव' शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है। दाहिना हाथ सक्रिय शक्ति का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिये हमेशा उसका ही उपयोग किया जाता है।

जप नियमित ढंग से तथा धीरे-धीरे करना चाहिये। जप अनुष्ठान साल में एक या दो बार ही करना चाहिये। अति-उत्साह से नुकसान भी हो सकता है। मनोवैज्ञानिक अंतर्मुखता और आध्यात्मिक अंतर्मुखता में बहुत थोड़ा अंतर है। हमारा एक तार्किक मन है, एक जागरूक मन और एक भावुक मन। जब आप अंतर्मुखी होते हैं और बुद्धि शिथिल हो जाती है तो कहा जाता है कि आपके व्यक्तित्व में दोष आ गया है। यह स्थिति पूरे विश्व में दिखाई देती है। ऐसी स्थिति में न केवल मन अंतर्मुखी होता है, बुद्धि भी अंतर्मुखी हो जाती है। यह मनोवैज्ञानिक दोष है। परन्तु आध्यात्मिक अंतर्मुखता में मन एक ऐसे स्थान पर चला जाता है जहाँ वह अपने आंतरिक लक्ष्य से तो एकरस हो जाता है, परन्तु उससे न तो मन का ढाँचा नष्ट होता है, न बुद्धि की क्रिया में बाधा आती है।

व्यक्ति को अपने आध्यात्मिक अभ्यासों तथा अनुभवों का दिखावा नहीं करना चाहिये, और न अपना मंत्र ही किसी को बतलाना चाहिये। इससे मंत्र की शक्ति तथा प्रभाव में कमी आती है। यदि आप अपने अभ्यासों का प्रदर्शन करते हैं तो कौतूहल प्रिय लोगों के विरोधी विचारों का आपके मन पर बुरा असर पड़ सकता है, जिससे आपकी शांति भंग हो सकती है। आमतौर से आध्यात्मिक साधन हमेशा गुप्त तथा अनुभव व्यक्तिगत होना चाहिये। इससे मानव शरीर के विभिन्न कोष पवित्र रहते हैं। समाज में अपने बाहरी जीवन को

साधारण रखना हमेशा बेहतर है। लोगों को यह जाहिर नहीं करना चाहिये कि आप एक आध्यात्मिक साधक हैं।

कुछ असाधारण परिस्थितियों में आपको बिना माला के भी जप करना पड़ सकता है, लेकिन यह साधारण नियम न बनकर अपवाद ही होना चाहिये। जप के माध्यम से दबी हुई भावनाएँ, अपूर्ण इच्छाएँ, वासनाएँ, क्रोध, लोभ, आदि का निराकरण हो सकता है। जप आध्यात्मिक विकास में बहुत सहायक है। मेरे कहने का अर्थ यह नहीं है कि क्रोध, लोभ या वासना होनी ही नहीं चाहिये। कहने का मतलब यह है कि इन्हें आध्यात्मिक शक्ति के रूप में परिवर्तित कर देना चाहिये। उदाहरण के लिये, क्रोध द्वारा व्यक्त होने वाली मानसिक शक्ति को उत्साह तथा जीवन के कठिन-से-कठिन कार्य को पूरा करने की शक्ति के रूप में बदला जा सकता है। इसी तरह भावनाओं का दिशान्तर उच्च उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जा सकता है। इन इच्छाओं का दमन करने के बदले जप द्वारा इन्हें आध्यात्मिक शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है। अपने मन के अन्दर आंतरिक संघर्ष नहीं रहने देना चाहिये, क्योंकि इससे असाधारण स्वभाव या मनोमुखी वृत्ति पैदा हो सकती है।

सभी प्रकार की बुराइयाँ शक्ति के गलत दिशा में उपयोग के कारण हैं। जिनके जीवन में आरोग्य, धन-सम्पत्ति, बाल-बच्चे, सुखी परिवार इत्यादि सुख-सुविधाएँ हैं, उन्हें आध्यात्मिक जीवन में तीव्र प्रगति करते देखा जाता है। अक्सर शरीर तथा मन में विजातीय द्रव्य जमा हो जाते हैं, जिन्हें बाहर फेंकना पड़ता है। जब मन अन्दर जाता है तब कभी-कभी वह आध्यात्मिक मार्ग से भटक भी जाता है। इसलिये हमें चाहिये कि हम कम-से-कम समय में अपनी सभी इच्छाओं की पूर्ति कर लें।

ब्रह्मचर्य का पालन करना बहुत अच्छा है, परन्तु ख्याल रखना चाहिये कि आत्म-दमन की स्थिति न आने पाये। भारत में आश्रम व्यवस्था के अन्दर पच्चीस वर्ष तक लड़कों को गुरु के निर्देशन में ब्रह्मचर्य का जीवन बिताना पड़ता था। फिर वे घर जाकर विवाह करते थे और गृहस्थ का जीवन बिताते थे। पच्चीस वर्ष गृहस्थ का जीवन बिताने के बाद, सांसारिक जीवन छोड़ कर वे आध्यात्मिक जीवन में प्रवेश करते थे। कुछ लोग अपवाद स्वरूप होते हैं और उन्हें गृहस्थ जीवन में नहीं जाना पड़ता। उनमें सांसारिक इच्छायें नहीं होतीं और वे शुरू से ही वैराग्य का जीवन स्वीकार कर लेते हैं। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि चालीस वर्ष के बाद मनुष्य की प्रकृति शांत हो जाती है।

चालीस वर्ष के बाद भी जो अशांत रहते हैं, उनके विषय में कहा जा सकता है कि उनकी प्रकृत्ति आध्यात्मिक न होकर सांसारिक है। आध्यात्मिक जीवन समाज की आवश्यकता है। कितना भी स्वास्थ्य तथा धन इन्द्रियों की नित्य बढ़ने वाली भूख को शांत नहीं कर सकता।

मनुष्य के पास जब तक स्वास्थ्य तथा धन है तब तक वह समाज के प्रति आसक्त रहता है, क्योंकि तभी तक वह सामाजिक प्रलोभनों की कीमत चुका सकता है। परन्तु जब इनके द्वारा वह संसार का सुख नहीं खरीद सकता, तब उसे उदासी तथा अकेलेपन का अनुभव होता है। मनुष्य में आध्यात्मिक जीवनयापन करने की महत्त्वाकांक्षा होनी चाहिये। मनुष्य-जीवन की यह परम आवश्यकता है।

यद्यपि धर्म और योग को अलग नहीं किया जा सकता फिर भी दोनों में बहुत अन्तर है। योग का दृष्टिकोण वैज्ञानिक है, जबकि धर्म का दृष्टिकोण ऐसा नहीं है। योग मनुष्य को एक अनुशासित जीवन व्यतीत करने की सलाह देता है, परन्तु भिन्न आधार पर। धर्म ईश्वर पर विश्वास को जरूरी मानता है, पर योग इसे जरूरी नहीं मानता। मैंने हमेशा लोगों को गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को पूरा करते हुए ही योगाभ्यास करने की सलाह दी है। अपने कर्त्तव्य करो, अपने बच्चों का भी पालन-पोषण करो, अपनी रोज़ी-रोटी भी कमाओ, साथ ही आध्यात्मिक उन्नति भी करो। हमारे यहाँ इस प्रकार के जीवन को 'अनासक्ति योग' कहते हैं, जिसका अर्थ होता है, उदासीन भाव रखते हुए भी एक सक्रिय जीवन व्यतीत करना। जीवन के कठोर धक्कों से बचने का यही सबसे उत्तम उपाय है। बहुत-से लोग गलत आसक्ति के कारण कष्ट उठाते हैं। 'अनासक्ति-योग' में प्रवृत्ति और निवृत्ति, दोनों का सामंजस्य है। दोनों सिक्के के दो पहलुओं के समान हैं। पलायनवाद अथवा विरक्ति से यह भिन्न है।

मंत्र

निम्नलिखित 23 देवताओं के लिये 34 प्रकार के गायत्री मंत्र हैं। कइयों के लिये एक से अधिक गायत्री है।

1) गणेश 2) ब्रह्मा 3) विष्णु 4) नरसिंह 5) गरुड़ 6) रुद्र 7) नन्दीकेश्वर 8) षण्मुख 9) सूर्य 10) दुर्गा 11) राम 12) हनुमान 13) कृष्ण 14) गोपाल 15) परशुराम 16) दक्षिणामूर्ति 17) गुरु 18) हयग्रीव 19) सरस्वती 20) लक्ष्मी 21) शक्ति 22) अन्नपूर्णा 23) कालिका।

34 गायत्री मंत्र निम्नलिखित हैं –

1. ॐ एकदन्ताय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।
2. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि तन्नो दन्तिः प्रचोदयात्।
3. ॐ वेदान्तनाथाय विद्महे हिरण्यगर्भाय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।
4. ॐ चतुर्मुखाय विद्महे कमण्डलुधराय धीमहि तन्नो ब्रह्म प्रचोदयात्।
5. ॐ नारायणाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्।
6. ॐ वज्रनखाय विद्महे तीक्ष्णदंष्ट्राय धीमहि तन्नो नरसिंहः प्रचोदयात्।
7. ॐ नृसिंहाय विद्महे वज्रनखाय धीमहि तन्नः सिंहः प्रचोदयात्।
8. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे सुर्वणपक्षाय धीमहि तन्नो गरुडः प्रचोदयात्।
9. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
10. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे सहस्राक्षाय महादेवाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्।
11. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे नन्दीकेश्वराय धीमहि तन्नो वृषभः प्रचोदयात्।
12. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे महासेनाय धीमहि तन्नः स्कंदः प्रचोदयात्।
13. ॐ षण्मुखाय विद्महे महासेनाय धीमहि तन्नः षष्ठः प्रचोदयात्।
14. ॐ भास्कराय विद्महे महाद्युतिकाराय धीमहि तन्नः आदित्यः प्रचोदयात्।
15. ॐ आदित्याय विद्महे सहस्रकिरणाय धीमहि तन्नः भानुः प्रचोदयात्।
16. ॐ प्रभाकराय विद्महे दिवाकराय धीमहि तन्नः सूर्यः प्रचोदयात्।
17. ॐ कात्यायन्यै च विद्महे कन्याकुमार्यै च धीमहि तन्नो दुर्गाः प्रचोदयात्।
18. ॐ महाशूलिन्यै विद्महे महादुर्गायै धीमहि तन्नो भगवती प्रचोदयात्।
19. ॐ दशरथात्मजाय विद्महे सीतावल्लभाय धीमहि तन्नो रामः प्रचोदयात्।
20. ॐ आंजनेयाय विद्महे वायुपुत्राय धीमहि तन्नो हनुमान् प्रचोदयात्।
21. ॐ देवकीनन्दनाय विद्महे वासुदेवाय धीमहि तन्नः कृष्णः प्रचोदयात्।
22. ॐ गोपालाय विद्महे गोपीजनवल्लभाय धीमहि तन्नो गोपालः प्रचोदयात्।
23. ॐ जामदग्नयाय विद्महे महावीराय धीमहि तन्नः परशुरामः प्रचोदयात्।
24. ॐ दक्षिणामूर्तये विद्महे ध्यानस्थाय धीमहि तन्नो धीशः प्रचोदयात्।
25. ॐ गुरुदेवाय विद्महे परब्रह्मणे धीमहि तन्नो गुरुः प्रचोदयात्।
26. ॐ हंस हंसाय विद्महे परमहंसाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।
27. ॐ परमहंसाय विद्महे महातन्वाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।
28. ॐ वागीश्वराय विद्महे हयग्रीवाय धीमहि तन्नो हंसः प्रचोदयात्।
29. ॐ परमेश्वराय विद्महे परतत्त्वाय धीमहि तन्नो ब्रह्मा प्रचोदयात्।
30. ॐ वाग्देव्यै च विद्महे कामराजाय धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात्।

31. ॐ महादेव्यै च विद्महे विष्णुप्रियायै च धीमहि तन्नो लक्ष्मी: प्रचोदयात्।
32. ॐ सर्वसम्मोहिन्यै विद्महे विश्वजनन्यै धीमहि तन्नो शक्ति: प्रचोदयात्।
33. ॐ भगवत्यै च विद्महे महेश्वर्यै च धीमहि तन्नो अन्नपूर्णा प्रचोदयात्।
34. ॐ कालिकायै च विद्महे श्मशानवासिन्यै धीमहि तन्नो अघोरा प्रचोदयात्।

अलग-अलग देवताओं के बीज मंत्र निम्नलिखित हैं –

ॐ	यह ईश्वर का प्रतीकात्मक शब्द है		
हौं	शिव	,,	,,
दुं	दुर्गा	,,	,,
क्रीं	काली	,,	,,
ह्रीं	महामाया	,,	,,
श्रीं	लक्ष्मी	,,	,,
ऐं	सरस्वती	,,	,,
क्लीं	कृष्ण	,,	,,
हूं	भैरव	,,	,,
गं	गणेश	,,	,,
ग्लौं	गणेश	,,	,,
क्ष्रौं	नरसिंह	,,	,,

बिना बीज मंत्र के मंत्र प्रभावशाली नहीं माने जाते। बीज मंत्र परम्परा द्वारा गुरु से प्राप्त किये जाते हैं।

मंत्र कई शब्द तरंगों के समुच्चय हैं। अंग्रेजी अथवा उर्दू से भिन्न, संस्कृत के शब्दों में एक ही ध्वनि होती है। उच्चारण करते समय सोलह स्वर अक्षरों में से कोई एक जोड़ दिया जाता है। संस्कृत के सिवाय अन्य किसी भाषा में इस प्रकार की वैज्ञानिक ध्वनि रचना नहीं है। संस्कृत शायद दुनिया की सबसे पुरानी भाषा है, अतएव मंत्रों को वाक्य-रचना के साधारण शब्द-मात्र नहीं समझना चाहिये। उनमें एक क्रमबद्ध रचना शैली है, जिसका विशिष्ट उद्देश्य है।

पूर्वकालीन भाषा-शास्त्रियों को ध्वनि-तरंगों की पूर्ण जानकारी थी और उन्होंने विशेष ध्वनियाँ पैदा करने हेतु अक्षरों का विशेष ढंग से उच्चारण दिया। संस्कृत की मूल ध्वनियों को 'अक्षर' कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'कभी नाश न होने वाला'। विज्ञान ने अब यह साबित कर दिया है कि ध्वनि-

तरंगों का कभी नाश नहीं होता, क्योंकि वे वातावरण में मौजूद रहती हैं। उन्हें कभी भी एकत्र तथा कहीं भी विस्तारित किया जा सकता है।

अक्षरों को वर्ण भी कहते हैं, जिसका तात्पर्य यह कि ध्वनि में रंग भी होता है। ज्योंही शब्द का उच्चारण होता है, त्योंही वह शब्द अमर हो जाता है। प्रत्येक शब्द एक रूप पैदा करता है जो कभी नष्ट नहीं होता। वह एक ऐसा रूप होता है जिसमें रंग होता है।

मंत्रों द्वारा विशेष प्रकार की तरंगें पैदा होती हैं, जो तीर से छूटे हुए बाण की तरह प्रवाहित होती हैं। वे तब तक दौड़ती रहती हैं जब तक अनन्त में विलीन नहीं हो जातीं। कभी-कभी ये तरंगें दूसरी समान तरंगों से टकराकर घर्षण पैदा करती हैं। संवेदनशील मस्तिष्क उसका कभी-कभी अनुभव करते हैं। इसे ही 'टेलीपैथी' कहते हैं। गहरे ध्यान की स्थिति में भी कुछ ब्रह्माण्डीय ध्वनियों को पकड़ा जा सकता है। हो सकता है आगे चलकर विज्ञान महान् आत्माओं द्वारा दिये गये उपदेशों को पकड़ सके। इन तरंगों को युग बीत जाने के बाद भी खोज निकाला जा सकता है। जिस प्रकार भूगर्भ में दबे हुए धातुओं को निकाला जाता है, उसी प्रकार शब्द-ध्वनियों को निकालकर पूरे भाषण के रूपों में पेश किया जा सके। इतना सब कहने का उद्देश्य यही है कि 'मंत्र' ध्वनि तरंगों के समुच्चय मात्र हैं।

'व' वर्ण जल का प्रतिनिधित्व करता है। इसी भाँति सारे वर्णों के अपने-अपने तरंग, रूप तथा रंग हैं। 'र' का रंग लाल है, 'ल' का पीला और 'व' का सफेद। 'न' स्फटिक है और नीला दिखता है। जब शब्दों का उच्चारण किया जाता है तब ये सब रंग मिल जाते हैं। इस विज्ञान पर भारतीय विद्वानों ने कई ग्रंथ लिखे हैं। इसलिये जब आप मंत्र या जपयोग का अभ्यास करें तो व्याकरण अथवा अर्थ के झमेले में न पड़ें, बल्कि उन्हें मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न करें। 'तंत्र-शास्त्र' में वर्णों का आपको सम्पूर्ण चित्र मिलेगा। मंत्रों की ध्वनियों का उतार-चढ़ाव भी बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इस विषय की शिक्षा तभी पूर्ण-रूप से प्राप्त की जा सकती है जब इसे गुरु से सीखा जाए।



ध्यान के विविध साधन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 1973, 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

ध्यान के विविध साधन

राजनाँदगाँव में 29 से 31 दिसम्बर, 1973 तक आयोजित छत्तीसगढ़ योग सम्मेलन के अवसर पर प्रकाशित इस पुस्तक में श्री स्वामी सत्यानन्द जी के ध्यान योग पर दिये सत्संगों का संकलन किया गया है।

यह पुस्तक प्रत्याहार से ध्यान तक की प्रक्रिया में जाने का सुगम और व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में त्राटक, नादयोग, अन्तर्मौन, अजपा-जप आदि अनेकों ऐसी सरल विधियों का वर्णन है जिनके द्वारा जिज्ञासु साधक अपनी आध्यात्मिक आकांक्षाओं को पूरा करने का निश्चित मार्ग प्राप्त कर सकेगा।

– सम्पादक

भूमिका

मनुष्य के पास यदि सबसे अधिक गतिशील, जटिल चंचल अगम्य और आश्चर्यजनक वस्तु है तो वह है उसका मन। इस मन को जानने, समझने और शान्त करने के लिये वह युगों-युगों से प्रयत्नशील रहा है। मन पर नियंत्रण करने का या मन पर विजय प्राप्त करने का पुरुषार्थ वह सदैव से ही करता आ रहा है। इस प्रयत्न के फलस्वरूप ऐसी अनेकों आंतरिक एवं बाह्य ध्यान की पद्धतियों का विकास हुआ है, जो मन के विभिन्न स्तरों का परिचय कराने में समर्थ हैं। मन की गहरी भूमिकाओं की अनुभूति करते हुए अपनी चेतना की ऐसी स्थिति को प्राप्त किया जा सकता है, जहाँ पर पूर्ण निःशब्दता है, अचल स्थिरता है तथा शाश्वत शान्ति, शक्ति और आनन्द है। चेतना की ऐसी उच्च अवस्था को प्राप्त करने के लिए जिस मार्ग का अनुसरण किया जाता है, उसी को ध्यान कहते हैं।

इस ध्यान की अवस्था को प्राप्त करने के लिये, मन का इन्द्रियों के द्वारा बहिर्जगत् से जो तादात्म्य है, उसे क्रमशः तोड़ना पड़ता है। मन को अन्तर्मुख स्थिति में ले जाना होता है। जब बाह्यजगत् में सदैव क्रियाशील रहने वाला मन विचारों, आवेगों और आकांक्षाओं की भीड़ से हटकर घड़ी भर के लिये भी बाहरी दुनिया से अलग होकर अन्दर की दुनिया से जुड़ जाता है, तो उसे अद्भुत विश्रांति का अनुभव होता है। यह उसी प्रकार है, जैसे थका-हारा मजदूर थोड़ी देर विश्राम प्राप्त करने के लिये अपने कंधों का बोझ उतार कर नीचे जमीन पर रख देता है। राजयोग में इसी को 'प्रत्याहार' कहते हैं।

इसके पश्चात् मन को किसी वस्तु, रूप, भावना, विचार, इष्ट, चक्र, बिन्दु आदि पर केन्द्रित करना होता है। यह मन की एकाग्रता है। इस तरह बिखरी हुई मानसिक शक्तियों को केन्द्रित करने से मनोनियंत्रण की कला हाथ में आने लगती है। इसी मानसिक शक्ति के समुचित उपयोग से मनुष्य जीवन में सफलता, सुख, शक्ति और सिद्धि को प्राप्त करता है। राजयोग में यह 'धारणा' कही जाती है और जब इस धारणा में स्थिरता आ जाती है, मन एक लक्ष्य में दीर्घकाल तक स्थिर होने लगता है, तो वह 'ध्यान' की अवस्था में चला जाता है।

इस ध्यान की उपलब्धि से मन की संकल्प-शक्ति महान् हो जाती है। मन की सारी समस्याएँ, गुत्थियाँ, विकार, द्वन्द्व और अनिश्चितता दूर हो जाती है। व्यक्तित्व के सारे दोष और विरोधाभास मिट जाते हैं। आधुनिक सभ्यता के जो मनोविकार हैं, उनसे छुटकारा मिल जाता है। मनुष्य की चेतना के गहनतम क्षेत्रों में छिपे हुए प्रतिभा के केन्द्र जग जाते हैं, सक्रिय हो उठते हैं। मनुष्य का व्यक्तित्व पूर्णता और महानता की ओर अग्रसर होने लगता है। मनुष्य के जीवन में छिपे हुए आनन्द, शान्ति, शक्ति और ज्ञान के स्रोत फूटने लगते हैं। मनुष्य जीवन के सारे अभाव समाप्त हो जाते हैं।

इस तरह वास्तव में देखा जाए तो 'प्रत्याहार', 'धारणा' और 'ध्यान' कोई तीन अलग-अलग साधनाएँ नहीं हैं। वे एक ही लम्बी प्रक्रिया की तीन अवस्थाएँ मात्र हैं। जिस तरह बचपन, यौवन और बुढ़ापा कोई तीन पृथक् वस्तुएँ नहीं हैं, उसी तरह प्रत्याहार कब धारणा को प्राप्त करता है और धारणा कब ध्यान में परिणत हो जाती है, यह केवल अनुभवगम्य है।

प्रस्तुत पुस्तक इसी प्रत्याहार से ध्यान तक की प्रक्रिया में जाने का सुगम और व्यावहारिक मार्गदर्शन प्रस्तुत करती है। इस पुस्तक में त्राटक, नादयोग, अन्तर्मौन, अजपा-जप आदि अनेकों ऐसी सरल विधियों का वर्णन है, जिसके द्वारा जिज्ञासु साधक अपनी आध्यात्मिक जीवन की महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने का निश्चित मार्ग प्राप्त कर सकेगा। इसके अतिरिक्त जो लोग मानसिक शक्तियों का समुचित विकास करना चाहते हैं, और अपने मन को एकाग्र करने की विधि प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें भी पर्याप्त सामग्री मिल सकेगी। इतना ही नहीं, मनोविकारों से ग्रस्त व्यक्ति भी अपने व्यक्तित्व को परिवर्तित और परिमार्जित करने की दिशा में पुस्तक की उपयोगिता का अनुभव करेंगे। इस सन्दर्भ में उल्लेख करना अनुचित नहीं होगा कि आज देश-विदेश में हजारों की संख्या में लोग इन व्यावहारिक विधियों को अपने दैनिक जीवन का एक अंग बनाकर सुखी, सफल, संतुलित और शान्तिपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

पूज्य गुरुदेव, परमहंस सत्यानन्द सरस्वती के अपने शिष्यों को साधना समय पर बताये गये प्रवचनों का यह संग्रह साधकों को आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने हेतु सफल मार्गदर्शक है।

स्वामी अमृतानन्द सरस्वती
आचार्य
बिहार योग विद्यालय, मुंगेर

ध्यान के विविध साधन

अपने स्वरूप पर ध्यान

प्रत्याहार, धारणा तथा ध्यान के किसी भी अभ्यास के लिये शरीर का स्थिर रहना सर्वप्रथम आवश्यक है। जिस प्रकार हिलते हुए बर्त्तन में जल स्थिर नहीं रह सकता, उसी प्रकार शरीर के हिलते-डुलते रहने से मन भी स्थिर नहीं रह सकता, इसलिये योग में शरीर को स्थिर बनाना एकदम आवश्यक है। इसके लिये, अपने स्वरूप या शरीर पर ध्यान बहुत ही लाभप्रद तथा सरल और दिलचस्प अभ्यास है। इस साधना के लगातार अभ्यास से बहुत ही शीघ्र, ध्यान के समय अपने शरीर को स्थिर रखने में आप सफलता प्राप्त करेंगे।

विधि—अपने ध्यान के आसन में, चाहे वह पद्मासन हो, अथवा सिद्धासन, सुखासन या स्वस्तिकासन, उसमें आराम से स्थिरतापूर्वक बैठ जाइये। रीढ़ की हड्डी सीधी रखें। सिर, गर्दन तथा धड़ एक सीध में रखें। हाथों को घुटनों के ऊपर पट रख लें। आँखों को मूंद लें, और अपने शरीर पर ध्यान करें। मानसिक नेत्रों से लगातार अपने को देखते जाएँ, मानो आप किसी आदमकद आईने के सामने बैठकर अपने को देख रहे हों। ध्यान करते समय केवल इसी बात पर ध्यान रखें कि कहीं आपका शरीर हिल तो नहीं रहा है। लगातार अपने शरीर का अवलोकन करते जाइये। शरीर का कोई भी अंग जरा भी हिलने न पाए, इस बात के लिये पूर्णरूप से चौकन्ने रहें। शरीर हिलाने की प्रवृत्ति को दृढ़तापूर्वक रोकें। शरीर को चट्टान की तरह अचल तथा अटल रखें। 10 मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे 3 घण्टे तक लगातार इस अभ्यास को बढ़ाया जा सकता है।

नाद संचालन या ओंकार की ध्वनि पर ध्यान

ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये। शरीर को स्थिर, सीधा तथा शिथिल रखें। आँखों को मूंद लें। धीरे-धीरे श्वास लेते समय ऐसी कल्पना करें कि श्वास रीढ़ की हड्डी से होते हुये धीरे-धीरे मूलाधार में जा रही है। मन को

अच्छी तरह मूलाधार में स्थापित कर, श्वास छोड़ते हुये मुंह से ओंकार की ध्वनि निकालें और ऐसी कल्पना करें कि ध्वनि मूलाधार से उठकर रीढ़ की हड्डी से होते हुये सहस्रार में जा रही है। म् म् म् ...कहते हुये, अंत में ध्वनि को सहस्रार में समाप्त करें। ओंकार की ध्वनि को एकाग्रतापूर्वक सुनते भी रहें। फिर दुबारा धीरे-धीरे लम्बी, गहरी श्वास लेते हुए अपने मन को मूलाधार में स्थापित कर लें तथा फिर पहले जैसे ही ओंकार की ध्वनि उठाकर ध्वनि को सुनते हुए, मूलाधार से सहस्रार तक चेतना को ले जाएँ, और म् म् म् ...की आवाज के साथ सहस्रार में ध्वनि को समाप्त करें।

इसी तरह लगातार इस अभ्यास को दुहराते जाएँ। 13 बार से लेकर आधे घण्टे तक इस अभ्यास को किया जा सकता है।

ध्यान के किसी भी अभ्यास की शुरुआत में 3 बार से लेकर 13 बार तक अभ्यास को दुहराएँ। ओंकार की ध्वनि के श्रवण से मन की बिखरी हुई वृत्तियाँ सिमटती हैं और ध्यान के अभ्यास के लिये अपेक्षित मानसिक भूमिका तैयार होती है।

प्राण संचालन या श्वास पर ध्यान

प्राण और मन का आपस में बहुत ही गहरा सम्बन्ध है। प्राण के सूक्ष्म स्पन्दनों से ही मन गतिशील होता है। मन को वश में करने के लिये प्राण को वश में करना अत्यन्त आवश्यक है। यही कारण है कि महर्षि पतंजलि के अष्टांग-योग में प्रत्याहार, धारणा और ध्यान के अभ्यास के पूर्व प्राणायाम के अभ्यास का विधान है। प्राणायाम के अभ्यासों के सिवाय भी अनेकों ऐसे अभ्यास हैं जो प्राणायाम के अभ्यास न होते हुये भी मन को एकाग्र बनाने में बहुत ही मददगार हैं। यहाँ हम उन्हीं अभ्यासों की विधियों का वर्णन करेंगे।

प्रथम विधि–ध्यान के आसन में स्थिरतापूर्वक बैठ जाइये। आँखों को मूंद लीजिये। अब अपने अन्दर जाने वाले श्वास और बाहर आने वाले श्वास को देखते जाइये। हर अन्दर जाने वाले श्वास तथा बाहर निकलने वाले श्वास का पूर्ण एकाग्रता के साथ अवलोकन करते चलें। केवल श्वासों पर ही आपका ध्यान केन्द्रित रहे। एक भी श्वास आपकी निगाह से बचकर न अन्दर जाने पाए और न बाहर आने पाए। लगातार श्वास पर ध्यान करते जाइये। श्वास अन्दर जा रही है, श्वास बाहर निकल रही है, बस इतना ही ध्यान रखते जाइये।

दूसरी विधि–स्थिर आसन में बैठ जायें। आँखें बंद कर लें। श्वास लेते समय ऐसी कल्पना करें कि श्वास दाहिनी नासिका से शुरू होकर दोनों भौंहों के बीच के स्थान तक जा रही है और श्वास छोड़ते समय ऐसी कल्पना करें कि वह दोनों भौंहों के बीच के स्थान से बायीं नासिका द्वारा बाहर निकल रही है। दुबारा जब श्वास अन्दर लें तो ऐसी कल्पना करें कि श्वास बायीं नासिका से अन्दर जा रही है और भृकुटी-मध्य में समाप्त हो रही है, और वहाँ से दाहिनी नासिका द्वारा बाहर निकल रही है। इसी क्रम को लगातार चार बार दुहराइये। दाहिनी नासिका से श्वास अन्दर लेना, भृकुटी मध्य तक श्वास को ले जाना, फिर भृकुटी-मध्य से बायीं नासिका द्वारा श्वास को बाहर निकाल देना। फिर बायीं नासिका से श्वास लेना और भृकुटी-मध्य तक उसे ले जाकर दाहिनी नासिका से बाहर निकाल देना। एक नासिका से श्वास लेना, दूसरे से निकालना, दूसरे से श्वास लेना और पहले से निकालना। एक बार श्वास लेना और छोड़ना एक राउण्ड हुआ। इस प्रकार चार राउण्ड होने के बाद पाँचवीं बार में दोनों नासिका से श्वास अन्दर लेना, भृकुटी में दोनों धाराओं को केन्द्रित करना और फिर दोनों ही नासिकाओं द्वारा श्वास बाहर निकाल देना। छठवीं बार से फिर पहले ही के समान क्रम से एक तरफ से श्वास लेकर दूसरे तरफ से छोड़ देना। जिधर से श्वास छोड़ा है उधर से श्वास लेकर पहले से छोड़ देना। 6, 7, 8 और 9वें राउण्ड में एक-एक नासिका से श्वास लेना और छोड़ना। दसवें राउण्ड में फिर से दोनों नासिकाओं से श्वास लेकर दोनों ही से श्वास छोड़ना, 11, 12, 13, 14 में फिर एक से श्वास लेकर दूसरे से छोड़ना और दूसरे से लेकर पहले से छोड़ना। 15वें राउण्ड में फिर दोनों नासिकाओं से श्वास लेकर दोनों से बाहर निकालना, इसी क्रम से 100 की गिनती तक यह अभ्यास करें। आपका ध्यान श्वास लेने तथा छोड़ने में, नासिका के अग्र भाग से भृकुटी-मध्य तक तथा भृकुटी-मध्य से नासिका के अग्र भाग तक घूमते रहेगा। गिनती पर पूरा ध्यान रखें। गलती होने पर पूरी क्रिया फिर नये सिरे से शुरू करें।

शब्द संचालन

स्थिर आसन। आँखें बन्द। पहले 3 प्राण संचालन की प्रथम विधि से श्वासों पर ध्यान करें। फिर श्वास में 'सो' की भावना तथा प्रश्वास में 'हं' की भावना करें। श्वासों को देखते भी जायें और 'सो' तथा 'हं' की भावना भी करते

जायें। फिर ऐसी कल्पना करें कि श्वास नाभि से उठ रही है और कण्ठ तक जा रही है। 'सो' की भावना करते हुये श्वास को नाभि से उठाकर कण्ठ तक ले जाइये और 'हं' की भावना करते हुये श्वास को कण्ठ से नाभि तक वापस लाइये। जिस प्रकार पतली नाली में पानी की धारा धीरे-धीरे ऊपर की ओर उठती है, उसी प्रकार 'सो' की भावना पर श्वास को नाभि से उठाकर गले तक ले जाना तथा 'हं' की भावना करते हुये गले से कण्ठ तक नीचे उतारना चाहिये। कल्पना को सजीव बनाइये। श्वासों पर भी ध्यान रहे, 'सो' और 'हं' का भी ख्याल रहे, नाभि से कण्ठ तक तथा कण्ठ से नाभि तक चेतना के चढ़ने तथा उतरने का भी ख्याल रहे और श्वास लेने एवं छोड़ने में जो सूक्ष्म ध्वनि पैदा होती है, उस पर भी ध्यान रहे। इस क्रिया को यांत्रिक ढंग से न कर पूरी सजगता के साथ करें। इस अभ्यास के 49 राउण्ड करें। गिनती के लिये हाथ की उंगलियों के पोर अथवा माला का उपयोग कर सकते हैं। चित्त की अन्तर्मुखता के लिये यह एक बहुत ही शक्तिशाली अभ्यास है। ब्लड-प्रेशर की शिकायत वाले लोगों के लिये यह बहुत ही लाभकारी है।

चक्र अनुसंधान

आसन स्थिर, आँखें बन्द। नीचे दिये क्रमानुसार एक-एक चक्र पर अपनी चेतना को घुमाते जाइये। जिस प्रकार सुई की नोक द्वारा किसी चीज को छूते हैं, उसी प्रकार चेतना या मन के द्वारा क्रमवार चक्रों के स्थानों को छूते चलें।

1. नासिकाग्र–नाक का अगला हिस्सा।
2. भृकुटी-मध्य–दोनों भौहों के बीच का स्थान जहाँ स्त्रियाँ टीका लगाती हैं।
3. चिदाकाश–बन्द आँखों से कपाल के भीतर जो काला, अंधेरा पर्दा दृष्टिगोचर होता है।
4. सहस्त्रार–सिर का मध्य भाग जहाँ छोटे बच्चों का सिर टप टप होता है।
5. बिन्दु–सिर का सबसे ऊपरी भाग।
6. आज्ञा चक्र–सिर का पिछला हिस्सा जहाँ पण्डित लोग मोटी-सी चुटिया रखते हैं।
7. विशुद्धि चक्र–गले का पिछला हिस्सा, जहाँ रीढ़ की हड्डी गले की हड्डी से जुड़ती है।
8. अनाहत चक्र–हृदय के पीछे, रीढ़ की हड्डी के अन्दर।
9. मणिपुर चक्र–नाभि के पीछे, रीढ़ की हड्डी के अन्दर।

10. स्वाधिष्ठान चक्र–जननेन्द्रिय के समानान्तर जहाँ रीढ़ की हड्डी समाप्त होती है, उससे दो अंगुल नीचे।
11. मूलाधार चक्र–सबसे नीचे गुदाद्वार के अन्दर।

मूलाधार पर पहुँचने के बाद फिर नीचे से चेतना को विरुद्ध क्रम से घुमाते हुये, वापस प्रथम स्थान पर ले आइये। फिर से पहले जैसे नासिकाग्र से शुरू कर मूलाधार तक जाइये और वहाँ से एक-एक चक्र पर थोड़ी-थोड़ी देर ध्यान करते हुये नासिकाग्र पर वापस आ जाइये। इसी तरह लगातार अनेकों बार कीजिये। यह चक्र अनुसन्धान की क्रिया है। इस अभ्यास के द्वारा चक्रों के सही स्थान का ज्ञान होगा तथा चक्र जागृत होंगे।

चक्र भेदन

चक्र अनुसन्धान की क्रिया कर लेने के बाद चक्र-भेदन की क्रिया करें।

विधि–स्थिर आसन में आँखों को बन्द कर बैठे रहें। अब मूलाधार से 'सो' की भावना करते हुये श्वास की ध्वनि के साथ चेतना को ऊपर की ओर उठाकर चक्रों के स्थानों को भेदते हुए रीढ़ की हड्डी के मार्ग से ऊपर उठाते हुए, नासिकाग्र तक लाइये और 'हं' की भावना करते हुये नासिकाग्र से वापस मूलाधार तक ले जाइये। इस अभ्यास में श्वास ऊपर से नीचे की ओर जाती है और चेतना नीचे से ऊपर की ओर चढ़ती है। इसे 49 राउण्ड तक करें।

चिदाकाश धारणा

चिदाकाश धारणा ध्यान की एक बहुत ही शक्तिशाली विधि है। इस अभ्यास को करने के लिये सुबह ब्रह्ममुहूर्त्त अथवा रात्रि का समय बहुत उपयुक्त है। स्नान के बाद इस अभ्यास को करना बहुत उत्तम है।

चिदाकाश का क्या अर्थ है? यह 'चित्त' और 'आकाश', दो शब्दों से बना है। यहाँ चित्त का अर्थ है चेतना, इसलिये चिदाकाश का अर्थ हुआ 'चित्त का आकाश'। आँखों को बन्दकर यदि आप अपनी आंतरिक चेतना का अनुसरण करेंगे तो पता चलेगा कि चेतना का क्षेत्र अनन्त है। चिदाकाश धारणा से चित्त की सफाई होती है तथा वह शुद्ध बनते जाता है। चित्त में अनेकों प्रकार के प्रभाव, संस्कार तथा चित्र ग्रथित हैं। चित्त के स्तर भी अनेक हैं। चिदाकाश धारणा द्वारा चित्त के सारे संस्कार, प्रभाव तथा चित्र आपके समक्ष प्रकट होते हैं। चित्त के विभिन्न स्तरों की भी आपको जानकारी प्राप्त होती है। इस अभ्यास

के द्वारा चेतना के विभिन्न स्तरों को पार करते हुए एक दिन आप अपने अन्दर छिपे हुए सत्य ज्ञान की भी जानकारी प्राप्त कर लेंगे। चिदाकाश धारणा योग का एक बहुत ही गुप्त अभ्यास माना जाता था, जिसकी जानकारी केवल गुरु-शिष्य परम्परा से ही प्राप्त हो सकती थी। इस अभ्यास के पाँच स्तर हैं–

1. शान्त चित्त से किसी भी स्थिर आसन में बैठ जाइये। सर्वप्रथम आँखें बन्द करने पर अन्दर जो अन्धकार दिखता है, उसे देखते जाइये। आँखें बन्द करने पर चारों ओर फैला हुआ एक अनन्त तथा असीम अन्धकार दिखेगा। इस अन्धकार का द्रष्टाभाव से निरीक्षण करते जाइये। कुछ देर ऐसा करने के बाद आप इस अभ्यास के दूसरे स्तर पर प्रवेश करेंगे।

2. दूसरे स्तर में आपको इस अंधकार के बीच में अनेक प्रकार के विभिन्न रंगों की अनुभूति हो सकती है, जैसे, लाल, पीला, सुनहरा, नीला इत्यादि। यह भी सम्भव है कि अन्धकार के स्थान पर सुबह सूर्य उगने के पहले जैसा सुनहरा प्रकाश चारों ओर चिदाकाश में फैला हुआ दिखाई दे, परन्तु आपको इन विभिन्न रंगों को साक्षी भाव से देखते भर जाना है। आपको चिदाकाश में दिखने वाले दृश्यों का विश्लेषण करने या कुछ सोचने का जरा भी प्रयत्न नहीं करना है। कुछ देर तक ऐसा करने के बाद इस अभ्यास के तीसरे स्तर में प्रवेश करेंगे।

3. तीसरे स्तर में अपनी चेतना को अंधकार के पर्दे के अन्दर या रंगों की तूलिका से परे और गहराई में ले जाने का प्रयत्न करें। आपकी धारणा अब अधिक तीव्र होती जायेगी। यही मानसिक विचार प्रेक्षण (Telepathy) का स्तर है इसलिये पूरी तरह सावधान रहें। अपनी धारणा को और भी तीव्र बनाइये और आत्मा के ऊपर पड़े अन्धकार के पर्दे के भीतर और गहरे धसने का प्रयत्न कीजिये। इस स्तर पर आपको अभूतपूर्व अनुभव प्राप्त होंगे। यह अभ्यास कुछ देर तक करने के बाद चौथी भूमिका में प्रवेश करेंगे।

4. चिदाकाश धारणा की चौथी भूमिका में चिदाकाश का सभी ओर से सर्वेक्षण कीजिये–ऊपर, नीचे, सामने, पीछे, तथा बाजुओं में। आपकी चेतना की स्थिति इस प्रकार होनी चाहिये मानो आप चारों ओर आँखें फाड़ कर किसी वस्तु को खोज रहे हों और आपको इस बात का पूरा ज्ञान हो कि आप क्या कर रहे हैं। इस प्रकार कुछ देर तक सभी ओर चिदाकाश का सर्वेक्षण करते रहिये। आपकी चेतना पूर्णरूपेण जागरूक हो। इसके बाद पाँचवें अभ्यास में प्रवेश करें।

5. पाँचवें अभ्यास में आप ऐसा अनुभव कीजिये मानो आप चिदाकाश के मध्य में बैठे हैं। चिदाकाश के पर्दे पर एक बार पूरी तरह अपनी चेतना को घुमाकर उसके मध्य में अपने को अनुभव कीजिये। अभ्यास बढ़ने पर आपकी चेतना और भी अधिक सूक्ष्म तथा तीव्र हो जायेगी।

इसके बाद कुछ देर तक चिदाकाश में अपने इष्ट के रूप पर ध्यान करने के बाद अभ्यास समाप्त कर दें।

इस अभ्यास के द्वारा आप अपने 'चित्त' का अनुभव करेंगे। अपने शारीरिक तथा मानसिक रोगों के उपचार के लिये भी यह अभ्यास बहुत लाभप्रद है। इसके द्वारा आप अपने व्यक्तित्व की गहराइयों में प्रवेश कर सकेंगे। अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये भी आपको अपने चित्त से सम्पर्क साधना पड़ेगा। लेकिन इसके लिये आपको मनोयोगपूर्वक इस अभ्यास को नियमित-रूप से करना होगा। इस अभ्यास से अनन्त लाभ हैं, जिसका अनुभव आपको कुछ महीनों के अभ्यास से स्वयं ही मालूम हो जायेगा।

अन्तर्मौन का अभ्यास

योग के साधक जब ध्यान का कोई भी अभ्यास करने बैठते हैं तब उनके सामने एक बड़ी कठिनाई आकर उपस्थित होती है। ध्यान के समय आप अपने मन की सभी वृत्तियों को एक स्थान पर एकत्रित कर अपने लक्ष्य पर केन्द्रित करने का प्रयत्न करते हैं, लेकिन होता यह है कि दिनभर के विभिन्न अनुभवों के विचार चारों ओर से मन की सतह पर छाने लगते हैं और आपका मन ध्यान के लक्ष्य पर टिक नहीं पाता। आप मन को जबरदस्ती अपने लक्ष्य पर लाना चाहते हैं, लेकिन इसमें सफलता प्राप्त नहीं होती। मन से संघर्ष करने के कारण मन में तनाव पैदा होता है और सिर में भारीपन की अनुभूति होने लगती है।

ध्यान करने का यह सही तरीका नहीं है। ध्यान में आपको उसी प्रकार सरलतापूर्वक प्रवेश करना चाहिये जैसे निद्रा में प्रवेश करते हैं। ध्यान का अभ्यास शुरू करने के पूर्व मन की स्थिति वैसी ही हो जानी चाहिये जैसे निद्रा के तुरन्त पूर्व होती है। तभी ध्यान सफल होता है। इसी स्थिति का निर्माण करने के लिये कुछ अभ्यास हैं, जिन्हें अन्तर्मौन के अभ्यास कहते हैं। इन अभ्यासों के द्वारा ध्यान के लिये सही मानसिक भूमिका का निर्माण होगा और ध्यान के समय मानसिक संघर्षों तथा तनावों का आप अनुभव नहीं करेंगे।

अन्तर्मौन के अभ्यास के कई स्तर हैं जिनका हम क्रमवार नीचे वर्णन करेंगे।

1. विचार दर्शन—ध्यान के आसन में स्थिर तथा शान्त चित्त से बैठ जाइये। अब अपने मन में उठने वाले विचारों को द्रष्टा या साक्षी की तरह देखते जाइये। अपने मन में उठने वाले विचारों के प्रति एक निष्पक्ष द्रष्टा का भाव बना लीजिये। किसी भी विचार को रोकने, दबाने या हटाने का प्रयत्न मत कीजिये। मन के पर्दे पर जो भी विचार उठते हैं, उन्हें देखते भर जाइये। 'मेरा मन कहाँ-कहाँ जा रहा है, मेरा मन क्या-क्या सोच रहा है,' ऐसी चेतना रखकर मन में उठने वाले विचारों को देखते भर जाइये। 'मैं अपने विचारों को देख रहा हूँ,' इस चेतना को निरन्तर बनाये रखिये। किसी भी विचार से—चाहे वह अच्छा हो या बुरा, चाहे वह आपके मन के अनुरूप हो या मन के विरुद्ध—अपने को मिलाइये नहीं। जिस प्रकार किसी मिल का चौकीदार, मिल के अन्दर जाने या बाहर आने वाले लोगों को चौकन्ना होकर देखते रहता है, उसी प्रकार अपने मन में आने-जाने वाले विचारों को देखते जाइये।

यह अन्तर्मौन का प्रथम अभ्यास है। इस अभ्यास के द्वारा एक ऐसी स्थिति का निर्माण होगा जिसमें आपको ऐसा लगेगा मानो आपकी विचार-क्रिया रुक गई है। थोड़ी देर के बाद विचार क्रिया फिर से शुरू हो जायेगी। कुछ दिनों के अभ्यास के बाद आपको अपने विचार अपने से बिल्कुल अलग चित्र रूप में दिखने लगेंगे।

2. विचार संयम—इस अभ्यास में आपको अब स्वयं कोई भी एक विचार अपने मन में लाना है। विचार को मन में लाकर कुछ देर उसे कायम रखना। कुछ देर उस विचार को कायम रखकर फिर उसे हटा देना है। फिर कोई अन्य विचार मन में लाना है, थोड़ी देर उसे स्थिर रखना है और थोड़ी देर उस विचार को मन में रखकर उसे फिर हटा देना है। इसी प्रकार एक-एक विचार अपने मन में लाते जाइये और कुछ देर उस विचार पर सोचने के बाद उसे हटाते जाइये।

अधिक अच्छा है यदि प्रारम्भ में आप ईर्ष्या, क्रोध, लोभ, भय, आदि बुरे विचारों को ही पहले सामने लाएँ। मन को कुछ देर इन विचारों पर सोचने देकर फिर एक मानसिक झटके के साथ एक-एक विचार को हटाते चलें। इस अभ्यास में यह सावधानी रखें कि आप इन विचारों से अपने को एकरूप न होने दें।

अभ्यास के अन्त में फिर अपने इष्ट-रूप पर ध्यान करें।

3. विचार विसर्जन—अन्तर्मौन के अभ्यास की यह तीसरी विधि है। आँखें बन्द रखें। अब मन को एकदम विचारशून्य बनाने का प्रयत्न करें। ज्योंहि कोई विचार मन में उठे, उसे एक झटके के साथ दूर हटाते चलें। ऐसी कल्पना करें मानो आप मन के फाटक पर डंडा लेकर बैठे हों। ज्योंहि कोई विचार मन के अन्दर उठे उसे डंडा मारकर दूर हटाते जाइये। थोड़ी देर इस अभ्यास को करने के बाद मन में निर्विचार स्थिति का अवतरण होगा। अब फिर अपने इष्ट रूप पर ध्यान करें।

अजपा जप

अजपा जप एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण साधना है इसके अभ्यास से आप समाधि की स्थिति तक भी जा सकते हैं। अन्य योग अभ्यासों में समाधि का अनुभव प्राप्त करने के लिये श्वास की गति को बन्द करना पड़ता है, लेकिन अजपा जप के अभ्यास द्वारा समाधि की स्थिति में भी श्वास की गति स्वाभाविक रूप से रहती है।

पहला अभ्यास—ध्यान का आसन, पूर्ण शारीरिक तथा मानसिक शिथिलीकरण, अपने शरीर तथा मन को जितना हल्का बना सको बना लो। थोड़ी देर के लिये अपनी सभी चिन्ताओं तथा समस्याओं को किनारे रख दो, शान्ति तथा सन्तुलन का अनुभव करो। अभ्यास शुरू करने के पहले पूर्ण मानसिक शिथिलीकरण का अनुभव करो। अब अपने श्वासों की गति पर ध्यान दो, हर आने-जाने वाले श्वास की खबर लो। अन्दर जाने वाली श्वास नाभि तक जा रही है, बाहर आने वाली श्वास नाभि से बाहर आ रही है। यांत्रिक ढंग से श्वास मत लो, श्वास की क्रिया को पूर्ण चेतना के साथ करो। लम्बी तथा गहरी श्वास लो। श्वास लेते समय कोई आवाज मत पैदा करो। श्वास की दोनों धाराओं पर ध्यान दो। प्राण की चेतना को गहरा बनाओ।

अब अन्दर जाने वाली श्वास में 'सो' तथा बाहर आने वाली श्वास में 'हं' की भावना को मिलाओ। श्वास लेते और छोड़ते रहो तथा उसके साथ-ही-साथ सोऽहं की चेतना को भी जोड़ते जाओ। मन्त्र तथा प्राण की चेतना लगातार तथा अविच्छिन्न बनाकर रखो। कुछ समय तक यह अभ्यास चालू रखो। इस अभ्यास में स्थायित्व आ जाने के बाद अभ्यास के दूसरे स्तर पर आ जाओ।

दूसरा अभ्यास—पहले अभ्यास में आपने अन्दर जाने वाले श्वास में 'सो' तथा बाहर आने वाले श्वास में 'हं' की भावना की थी। इस दूसरे अभ्यास में

प्रक्रिया को उलट दो। बाहर जाने वाले श्वास में 'हं' की भावना करो। जाने और आने वाले श्वास के बीच जरा भी अवकाश मत रहे। जाने और आने वाले श्वासों में लगातार 'हं सो ... हं सो' की एकतार गति बिना रुके चलती रहे। अभ्यास के अन्त में मन को एकदम निर्विचार बना दो। कोई भी विचार मन में मत आने दो और अपनी चेतना को आज्ञा चक्र, भ्रूमध्य अथवा अनाहत चक्र (हृदय के पीछे) में केन्द्रित करो। केन्द्र पर कोई दबाव मत डालो, केवल अपने मन को उस पर केन्द्रित करो।

गहरी श्वास, शिथिलीकरण तथा पूर्ण चेतना पहले अभ्यास जैसे ही रहे।

इस प्रकार 'हं सो' का अभ्यास एक माह तक चालू रखो। इसमें सफलता हो जाने के बाद तीसरे अभ्यास में आ जाओ।

तीसरा अभ्यास—पहले अभ्यास में आपने 'सो हं' पर ध्यान किया और दूसरे में 'हं सो' पर। अब तीसरे अभ्यास में अपने मन तथा शरीर को पूरी तरह शिथिल कर लो। केवल 'मैं हूँ' (I am) की चेतना मन में ले आने से बहुत ही शीघ्र आराम तथा शिथिलता की अनुभूति होती है।

यदि आपके मन में तनाव हो तो एक दूसरी विधि अपनानी चाहिये। वह है गिनती द्वारा शिथिलीकरण की विधि। इसमें मानसिक रूप से 'एक' कहते हुये श्वास अन्दर लो और 'एक' कहते हुये श्वास बाहर निकालो। दूसरे बार में 'दो' की भावना करते हुये श्वास अंदर लो और 'दो' की भावना करते हुये श्वास बाहर निकालो। इसी प्रकार चार की गिनती तक करते रहो। पाँच में आते ही चौकन्ने हो जाओ। पूरी सावधानी के साथ इस बार जाने वाले श्वास में 5 और आने वाले श्वास में भी 5 की गिनती दुहराओ, फिर 9 तक पहले ही जैसे गिनती करते हुये श्वास लेते और छोड़ते रहो। फिर 10 में आते ही चौकन्ने हो जाओ। पूरी सावधानी रखो कि इस बार आप दस की आवाज में श्वास अन्दर ले रहे हैं और दस की ही आवाज में श्वास छोड़ रहे हैं।

इस अभ्यास को कई बार कर लेने के बाद गतिबद्ध गहरी श्वास लेते और छोड़ते जाओ। श्वास की क्रिया करते समय पूर्ण रूप से सजग रहो।

अब न तो 'सो हं' पर ध्यान करो न 'हं सो' पर, वरन् श्वास लेते समय सिर्फ 'सो' पर ध्यान रखो और श्वास छोड़ते समय सिर्फ 'हं' पर ध्यान रखो।

इस अभ्यास के अन्त में मानसिक विचारशून्यता की स्थिति का निर्माण करो और अपनी चेतना को ध्यान के किसी भी केन्द्र पर एकाग्र करो। फिर से चेतना के साथ श्वास लेना चालू करो और अलग-अलग से 'सो' व 'हं'

पर ध्यान करो। यह अभ्यास भी एक महीने तक चालू रखो। इसके बाद चौथे अभ्यास में चले जाओ।

चौथा अभ्यास—आसन में स्थिर होकर बैठ जाओ। कुछ देर अपने जाने वाले और आने वाले श्वास का निरीक्षण करो। श्वास लेते समय आवाज नहीं होनी चाहिये।

अब 'सो' के साथ श्वास अन्दर लो और 'हं' के साथ बाहर निकालो। फिर 'सो' से अन्दर और 'हं' से बाहर। एक ताल में श्वास और प्रश्वास मन्त्र के साथ लगातार चलता जाए। कहीं भी क्रम टूटने न पाए। एक क्षण के लिये भी प्राण, श्वास और मन्त्र से चेतना अलग नहीं होनी चाहिये। जब चेतना 'सो हं' के साथ रहेगी तो स्वाभाविक ही उसका सम्बन्ध इन्द्रियों तथा शरीर से समाप्त हो जाएगा।

अब 'सो हं' का अजपा-जप इस अभ्यास में एक विशिष्ट प्रकार से किया जाएगा। जिस प्रकार एक वृत्त में आरम्भ तथा अन्त नहीं होता, उसी प्रकार अजपा की साधना भी इस प्रकार की बनानी पड़ेगी कि आपको पता न चले कि 'सो हं' का जप हो रहा है या 'हं सो' का। श्वास अन्दर जाते समय तो लगे कि 'सो हं' का जप किया जा रहा है पर बाहर निकलते समय लगे कि 'हं सो' का जप हो रहा है। एक-एक अक्षर की एक ही बार भावना करते हुए भी ऐसा अनुभव करो मानो 'सो हं' 'हं सो' 'सो हं' 'हं सो' का क्रम चल रहा है। श्वास के समय मालूम हो कि आप 'सो हं' का जप करने जा रहे हैं पर निश्वास के समय लगे कि आप 'हं सो' का जप कर रहे हैं। लगातार श्वास और प्रश्वास और 'सो हं' 'हं सो' का जप चेतना के साथ घूमता रहे। कुछ देर के बाद आपको यह पता न चले कि श्वास अन्दर जा रही है या बाहर आ रही है।

अभ्यास के अन्त में शांति तथा आनन्द की अनुभूति करें।

पाँचवाँ अभ्यास—अब तक हमने अजपा जप के चार अभ्यासों का वर्णन किया है। अब हम उसके पाँचवें अभ्यास का वर्णन करेंगे। यह अभ्यास कुछ कठिन है और इसमें आपको अपनी कल्पना शक्ति का प्रयोग करना पड़ेगा। इसमें आपको अपनी चेतना को रीढ़ की हड्डी में घुमाना पड़ेगा। इस अभ्यास की आवश्यकता है—तालबद्ध श्वास-प्रश्वास और मन की सावधानी।

अब तक के अभ्यासों में आपकी श्वास नाभि तक अन्दर जाती रही है और नाभि से बाहर आती रही है। अब इस क्रम को बदलकर आपको अपनी चेतना को प्राण के साथ रीढ़ की हड्डी में स्थित छः चक्रों में घुमाना है।

नीचे से ऊपर तक छः चक्र इस प्रकार हैं।

1. मूलाधार—गुदाद्वार तथा जननेन्द्रिय के मध्य में, रीढ़ की हड्डी के अन्त में
2. स्वाधिष्ठान—जनेन्द्रिय के पीछे
3. मणिपुर—नाभि की सीध में
4. अनाहत—हृदय में
5. विशुद्धि—गले में
6. आज्ञा—भ्रूमध्य में।

सर्वप्रथम अपने को शिथिल कर लो और आराम के साथ अपने आसन में शरीर को सीधा रखकर बैठ जाओ। तालबद्ध तथा लम्बी, गहरी श्वास की क्रिया करो। पूर्णरूप से सजग रहो। अब श्वास को पहले आज्ञा चक्र में ले जाओ, फिर विशुद्धि में, फिर अनाहत, फिर स्वाधिष्ठान और अन्त में मूलाधार में। अब कुछ देर अपनी चेतना को मूलाधार में रोको और वहाँ एक उल्टे त्रिकोण के मध्य कुण्डलिनी शक्ति को खोजने की कोशिश करो। कुण्डलिनी मनुष्य के अन्दर की सुप्त आत्मशक्ति है जो मेरुदण्ड के अन्त में साँप की तरह कुण्डली मारे सिर नीचे तथा पूंछ ऊपर किये सोई पड़ी है। कुण्डलिनी के इस स्वरूप पर कुछ देर ध्यान करो।

अब मूलाधार चक्र से रीढ़ की हड्डी तथा छहों चक्रों से होते हुये श्वास को बाहर निकालो। अपनी चेतना को इसी प्रकार रीढ़ की हड्डी में कुछ देर घुमाने के बाद अब श्वास-प्रश्वास के साथ 'सो' तथा 'हं' की चेतना को भी जोड़ दो। चेतना का मार्ग रीढ़ की हड्डी रहेगी तथा चेतना का केन्द्र मूलाधार और उसके अन्दर कुण्डलिनी शक्ति रहेगी।

'सो' की भावना करते हुए श्वास अन्दर लो। 'सो' का प्रकम्पन पहले आज्ञा चक्र में ले जाकर श्वास के साथ उसे रीढ़ की हड्डी से नीचे मूलाधार तक ले जाओ। मूलाधार में चेतना को कुम्भक के साथ कुछ देर केन्द्रित करो तथा कुण्डलिनी के स्वरूप पर ध्यान करो।

उसके बाद 'हं' की मानसिक भावना करते हुए श्वास के साथ मूलाधार से घुमाते हुए चेतना को आज्ञा चक्र तक लाओ। आज्ञा चक्र से मूलाधार तक चेतना को उतारो और मूलाधार से आज्ञा चक्र तक उसे चढ़ाओ।

'हं' के बाद कुछ देर आराम करो। इसी विधि से लगातार अजपा का अभ्यास करते जाओ। यह विधि शुरू में कुछ कठिन मालूम पड़ेगी, लेकिन अभ्यास से सरल हो जाएगी। यह एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अभ्यास है।

सफलतापूर्वक इसका अभ्यास कर लेने के बाद इससे शांति, सन्तुलन, अच्छे स्वप्न और मानसिक परिवर्तन का अनुभव होगा। इस अभ्यास को करने के बाद यदि आपको शान्ति तथा ज्ञान का अनुभव होने लगे तो समझना चाहिये कि आपको इसमें सफलता मिल रही है।

छठा अभ्यास—यह अभ्यास और भी कठिन है। इसमें आपको और भी अधिक कल्पनाशक्ति, धीरज तथा श्वसन-क्रिया पर नियन्त्रण की आवश्यकता होगी।

आराम से स्थिर आसन पर सुखपूर्वक बैठ जाओ। रीढ़ की हड्डी को सीधा रखो। अपनी अंगुलियों को बांधकर गोद में रख लो, अथवा घुटनों पर रख लो। अपनी चिन्ताओं तथा परेशानियों को दूर हटा दो। आत्म-चेतना (मैं हूँ) पर ध्यान करो। आत्म-सुझाव द्वारा शांति और आनन्द की भावना करो। इस प्रकार अपने को पूरी तरह शिथिल कर लो।

अब अपने दोनों हाथों के अंगूठों से दोनों कानों को बन्द कर लो। अंगुलियों से आँखों तथा ओठों को भी दबा लो। गहरी श्वास अन्दर लो, श्वास लेने के बाद अपने नासिका-छिद्रों को भी अंगुलियों से बन्द कर लो।

इसके बाद अपनी चेतना को रीढ़ की हड्डी में ऊपर-नीचे चढ़ाओ तथा उतारो। श्वास के साथ 'सो' की मानसिक ध्वनि करते हुए आज्ञा-चक्र से मूलाधार तक उसे ले जाओ और 'हं' की ध्वनि के साथ मूलाधार से आज्ञा-चक्र तक उसे उठाओ। थोड़ी देर आराम करो। इस बीच आत्मा-चेतना पर ध्यान करो।

छठे अभ्यास के दूसरे स्तर पर आपको अपने कान, आँख, मुँह तथा नाक को बन्द करने की कोई आवश्यकता नहीं है। उपरोक्त विधि से केवल श्वास अन्दर लो। श्वास रोककर अपनी चेतना को रीढ़ की हड्डी में आज्ञा-चक्र से मूलाधार-चक्र तक घुमाओ। कुछ देर मूलाधार-चक्र में रुको। फिर नीचे मूलाधार से चेतना को ऊपर उठाकर आज्ञा-चक्र तक ले आओ। फिर श्वास छोड़ दो, आराम करो तथा आत्म-चेतनता का अभ्यास करो।

अजपा समाधि का साधन तो है ही, साथ-ही-साथ एक उपचार-पद्धति भी है। सभी प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों में अजपा के अभ्यास से लाभ होता है, क्योंकि यह शरीर में अधिक मात्रा में जीवनी-शक्ति का संचार करती है और यही जीवनी-शक्ति रोगी के रोग को दूर कर उसे नया जीवन प्रदान करती है। मन को वश में लाने के लिये इससे सरल अन्य कोई साधन नहीं है।

नादयोग

नाद अनुसन्धान प्रत्याहार का एक बहुत ही सरल तथा दिलचस्प साधन है। इसका अभ्यास कई ढंग से किया जा सकता है। इसमें ध्वनि का सहारा लेकर चित्त को एकाग्र किया जाता है।

विधि– 1. गुंजन–किसी एकान्त स्थान में नीचे मोटा तकिया या कम्बल अथवा किसी कपड़े को गोल लपेटकर उसके ऊपर इस प्रकार बैठ जाइये, जैसे घोड़े पर सवारी के लिये बैठते हैं। पैरों को मोड़कर अपनी बगल को पैरों के घुटनों पर टिका लीजिये और हाथ के अंगूठों से या तर्जनी अंगुलियों से दोनों कानों के छेद बन्द कर लीजिये। गम्भीर ध्वनि से गुंजन की आवाज निकालिये। जैसे भौंरा गुंजन करता है, वैसी आवाज धीरे-धीरे गले के पास से निकालिये और इस ध्वनि को ध्यान से सुनिये। अपनी पूरी श्रवण-शक्ति को इसी आवाज पर केन्द्रित कीजिये। कानों के छेद बराबर अंगुलियों से बन्द रहेंगे।

गुंजन की आवाज निकालने के पहले फेफड़ों को श्वास से भर लीजिये। श्वास निकालने के साथ-ही-साथ गुंजन की आवाज भी निकलनी चाहिये। नि:श्वास एकदम धीरे-धीरे निकालिये। इस तरह नित्य 10 मिनट तक अभ्यास कीजिये।

इस अभ्यास को करने का दूसरा ढंग यह है कि तकिये या कपड़ों के बंडल पर बैठने के बदले ध्यान के किसी भी आसन में बैठ जाइये। अपने सामने एक छोटा स्टूल रख लीजिये और कुहनियों को उस पर टिका लीजिये। बाकी नियम पूर्व के ही समान रहेगा।

इससे हाथों में पीड़ा व बैठने में कठिनाई नहीं होती। इसी अभ्यास को करने का तीसरा भी तरीका है। हाथों की अंगुलियों से कान बन्द करने के बदले, घी या तेल में डुबाकर, फिर अच्छी तरह निचोड़कर, रुई के दो गोले तैयार कर लीजिये। नादानुसन्धान के अभ्यास के समय रुई के गोलों से दोनों कान बन्द करके रखिये।

2. प्रणवोच्चार–किसी भी सुविधाजनक आसन में बैठ जाइये। आँखें बन्द कर लीजिये। कानों के छेद को रुई के गोले अथवा अंगुलियों से बन्द रखिये। गुंजन के बदले प्रणव (ॐ) का उच्चारण कीजिये। ओंकार का उच्चारण धीरे-धीरे गम्भीर ध्वनि से होना चाहिये। उच्चारित ध्वनि को ध्यान से सुनें। सम्पूर्ण श्रवण-शक्ति को ध्वनि पर केन्द्रित करें। मन में दूसरे विचार न आने दें। इस प्रकार कुछ देर नित्य अभ्यास करें।

पूर्ववत् आसन में बैठे रहें। कानों के छेद भी बन्द रहें, लेकिन इस बार गले से कोई ध्वनि न निकालें। ध्यानपूर्वक कानों के अन्दर होने वाली अंतर्ध्वनि या अंतर्नाद को सुनने की चेष्टा करिये। थोड़ी देर के बाद आपको कानों के अन्दर कुछ ध्वनि सुनाई पड़ेगी। प्रारम्भ में यह ध्वनि 'चिन-चिन' की-सी सुनाई देगी। यह झींगुर की आवाज से मिलती-जुलती मालूम पड़ेगी। आवाज का स्वरूप चाहे जो कुछ भी हो, आप उसे ध्यानपूर्वक सुनते जाइये, जब तक चित्त उस आवाज में डूब न जाए। कभी-कभी सुनते-सुनते यह आवाज लुप्त हो जाती है। फिर से उस ध्वनि को पकड़ें और सुनते जायें। कभी-कभी एक के बदले कई ध्वनियाँ एक साथ सुनाई देती हैं। ऐसा होने पर जो ध्वनि सबसे स्पष्ट हो उसे ही पकड़ लें, और उसी पर ध्यान लगायें। अपनी पूरी श्रवण शक्ति को उसी ध्वनि पर लगाये रखने के प्रयत्न में लीन रहें।

चित्त की एकाग्रता ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों ध्वनि भी बदलती जाती है, लेकिन आपको यह जानने की जरूरत नहीं कि किसके बाद कौन-सी ध्वनि आएगी।

एक ध्वनि को सुनते-सुनते उसके बाजू में एक दूसरे प्रकार की और भी क्षीण-सी दूसरी ध्वनि सुनाई पड़ेगी। जब ऐसा हो तो पहली ध्वनि को छोड़कर बाजू की इस दूसरी ध्वनि को पकड़ने की कोशिश करें। ध्वनि अधिक स्पष्ट होती जाएगी तथा नजदीक आते जाएगी। कुछ दिन इस दूसरी ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करने के बाद उसके बाजू में एक तीसरे प्रकार की ध्वनि सुनाई देगी। अब दूसरी ध्वनि को भी छोड़कर इस तीसरे ही प्रकार की ध्वनि पर ध्यान केन्द्रित करें तथा इसी प्रकार नादानुसन्धान के अभ्यास में एक के बाद दूसरी ध्वनि को पकड़ते हुए आगे बढ़ते जाएँ।

हर किसी को एक ही प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई पड़ें, ऐसा कोई जरूरी नहीं है। अलग-अलग साधकों को अलग-अलग प्रकार की ध्वनियाँ सुनाई पड़ सकती हैं।

यही अनाहत ध्वनियाँ हैं। ध्वनि दो प्रकार की होती है। एक आहत और दूसरी अनाहत। आहत ध्वनि आघात या प्रयास से पैदा होती है। अनाहत ध्वनि बिना आघात और प्रयास किये पैदा होती है। अनाहत ध्वनियों को Voice of Silence भी कहते हैं।

कुछ समय के अभ्यास के बाद आप कानों को बिना बन्द किये ही, और बिना ध्वनि पैदा किये ही अपने अन्दर अनाहत नाद सुनने लगेंगे।

नादानुसन्धान के लिये रात्रि अथवा सुबह 4 से 6 बजे के बीच ब्रह्ममुहूर्त का समय उपयुक्त है। दिन में बाहरी कोलाहल के बीच अभ्यास करना कठिन है। शोरगुल के बीच यह अभ्यास नहीं किया जा सकता।

तीनों अभ्यासों को एक के बाद एक प्रतिदिन करना चाहिये। प्रारम्भ में 15 मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे अभ्यास बढ़ाते जाना चाहिये। नादानुसन्धान से मन बहुत ही जल्दी एकाग्र होता है। धीरे-धीरे चित्त ध्वनि में डूबने लगता है। चित्तवृत्ति रुक जाती है और चित्तवृत्ति का निरोध ही योग है।

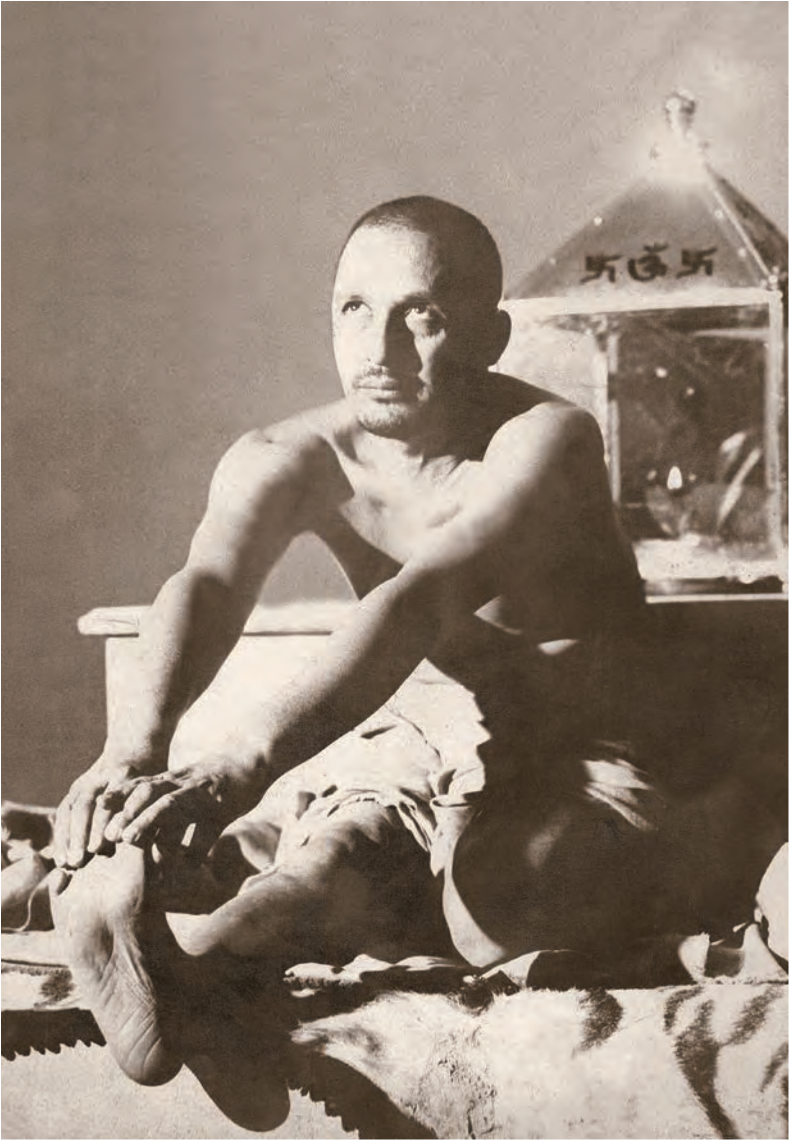
नादानुसन्धान के अभ्यास से मस्तिष्क के तनाव दूर होते हैं, मन शान्त तथा चिंतारहित बनता है। आत्मस्थिति अथवा नादवृत्ति में लीन रहना मुमुक्षु का स्वभाव है। नाद गुणातीत, इन्द्रियों से परे, मन, वचन और बुद्धि से अलग, देश-काल-वस्तु से अपरिछिन्न, सनातन और सार्वभौम है। यह तत्त्व केवल योगियों द्वारा जाना जाता है, अर्थात् योग-मार्ग ही इस तक पहुँचने में समर्थ है। वेद में इसकी अपार महत्ता का गुणगान किया गया है। इस लोक और परलोक का यही एक आधार है।

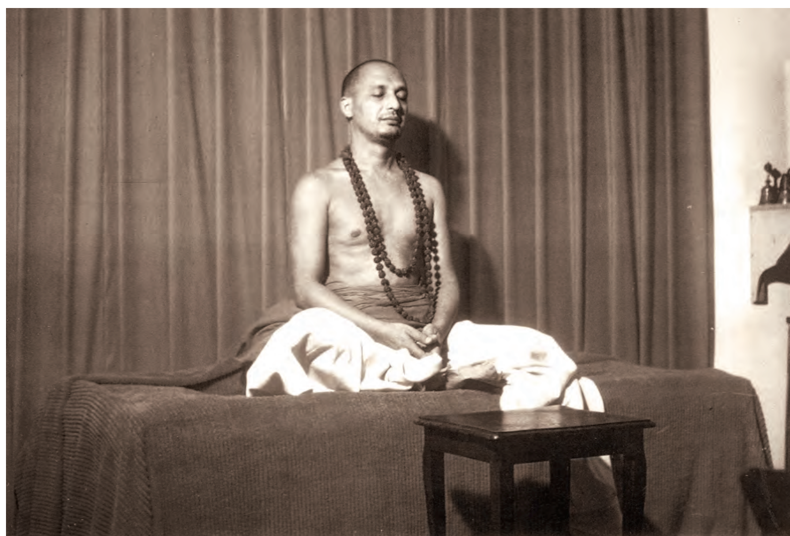
वेद का सारतत्त्व प्राप्त करने के लिये नादानुसन्धान परम आवश्यक है, क्योंकि जिस दिव्य-ध्वनि में वेद का सार गुंफित है वहाँ तक मात्र अनाहत नाद की ही पहुँच है। यही कारण है कि प्राचीन गुरुकुलों में सत् शिक्षा दी जाती थी। वेद मन्त्र कंठस्थ कराने का रहस्य यही था कि स्वरोच्चारण द्वारा नाद की स्पन्दन शक्ति के प्रभाव से मुक्ति मार्ग सरल हो जाए। योगशिखोपनिषद् में कहा गया है–

नास्ति नादात्परो मन्त्रो न देव: स्वात्मन: पर:।
नानुसंधे: परा पूजा न हि तृप्ते: परं सुखम्॥

अर्थात् नाद से बड़ा कोई मन्त्र नहीं है, अपनी आत्मा से बड़ा कोई देव नहीं है, नादानुसन्धान से बड़ी कोई पूजा नहीं है और तृप्ति से बड़ा कोई सुख नहीं है।

कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करने के लिये योगीजन नाद का ही आश्रय लिया करते हैं। प्रणवनाद या ओंकार के द्वारा नादानुसन्धान प्रारम्भ किया जाता है। इसका कारण है कि इन शब्द स्वरों के सम्मेलन से प्राण को सिद्ध कर कुण्डलिनी शक्ति को ऊर्ध्वगामी बनाया जाता है।


卐 ॐ 卐











नाद के भेद

नादानुसन्धान क्रिया के द्वारा नाद आठ रूपों में व्यक्त होता है—यथा घोष, राव, स्वन, शब्द, स्फोट, ध्वनि, झंकार और ध्वंकृत। और नवां महानाद इन सभी में व्याप्त रहता है। 'क्षेमराज' ने नादानुसन्धान पर एक बृहत् टीका लिखी है।

- घोष—कान में अंगुली डालने से जलती आग के समान जो शब्द सुनाई देता है उसे घोष कहते हैं।
- राव—घोष की समाप्ति के अन्त में फूटे कांसे की तरह जो रूखा शब्द सुनाई देता है वह है राव।
- स्वन—बीस की ध्वनि के अनुरूप नाद को स्वन कहते हैं।
- शब्द—समस्त शब्दों का आधार स्वरूप शब्द सुनाई देता है।
- स्फोट—स्फोट के द्वारा वाक्य, पद और वर्ण भिन्न-भिन्न रूप में अर्थात् शब्द शक्तियों में सुनाई पड़ता है।
- ध्वनि—ध्वनि वीणा के पंचम तार की तरह सुखप्रद और मोहक होती है।
- झंकार—वीणा के समस्त तारों के एक साथ झंकृत होने पर जैसा नाद प्रतिभाषित होता है, उसी के सदृश्य झंकार होती है।
- ध्वंकृत—यह नाद घण्टे के टन् टन् की तरह सुना जाता है।
- महानाद—यह नाद सर्वोपरि है। इसे व्यावहारिक रूप में स्वयं अनुभव करें।

  कबीरदास जी के शब्दों में –

  भौंर गुफा पाँचों कर याना, बाजे ताल मृदंग बंधाना।
  जब पाँचों दस के घर जाई, तब दस पांचहि आन समाई।
  जब दस पाँच गुफा मह आवहिं, मधुरि तान अरध धुनि गावहिं।
  कोई घण्टा कोई ताल बजावहिं, कोई संख नाद कोई झालर लावहिं।

त्राटक

मनुष्य का मन अधिकतर बहिर्मुख रहता है। जब तक किसी उपाय से उसे अन्तर्मुख न बनाया जाए तब तक अपने अन्दर का ज्ञान नहीं हो सकता। मन की बहिर्मुखता को रोककर उसे अन्दर की ओर ले जाने के लिये ही योग में प्रत्याहार, धारण और ध्यान के अभ्यास किये जाते हैं। पिछले पृष्ठों में ध्यान के अनेक साधनों का वर्णन दिया गया है। इन सभी साधनों का लक्ष्य अन्ततः

मन को अन्दर की ओर ले जाना ही है। सत्य, ज्ञान, आनन्द, शांति, शक्ति, आदि बाहर नहीं, अपने भीतर ही हैं। इनकी प्राप्ति के लिये हमें अपने अन्दर गोता लगाना पड़ेगा। त्राटक भी अपने बहिर्मुखी मन को अन्दर की ओर ले जाने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। इसमें बाहरी वस्तु का सहारा लेकर उसके माध्यम से मन को अन्दर ले जाने का अभ्यास किया जाता है।

त्राटक का अर्थ है, किसी वस्तु को बिना पलक झपकाये तथा बिना पुतलियों को हिलाये लगातार एकटक देखना। त्राटक के अनेक साधन हो सकते हैं, जैसे, स्फटिक पर त्राटक, इष्ट देवता के चित्र पर त्राटक, काले बिन्दु पर, जल पर, आसमान पर, तारे पर, चन्द्रमा पर, प्रकाश पर (दीपक अथवा मोमबत्ती) इत्यादि।

प्रथम अभ्यास, चित्र पर त्राटक –अपने इष्ट या गुरु का चित्र लें। उसे अपने सामने इतनी ऊँचाई पर रख लीजिये, जिससे बैठने पर चित्र ठीक आँखों के सामने रहे। इसके लिये किसी स्टूल या चौकी का उपयोग कर सकते हैं। चित्र न आँखों से नीचा हो न ऊँचा, बल्कि समानान्तर हो। आँखों और चित्र के बीच में कम-से-कम डेढ-दो फुट का फासला होना चाहिये।

चित्र के सामने आसन बिछाकर अपने ध्यान के आसन में बैठ जाइये। रीढ़ की हड्डी सीधी और शरीर स्थिर रहे। हाथ घुटनों पर रख लीजिये, अथवा दोनों हथेलियों को गोद में एक-दूसरे के ऊपर रख लीजिये। अब अपलक नेत्रों से चित्र को निहारिये। न पलक गिरायें, न पुतली हिलायें। आँखों पर जोर डालने की आवश्यकता नहीं है। पुस्तक पढ़ते समय या आइने में अपना चेहरा देखते समय जैसी दृष्टि रहती है, उसी प्रकार से चित्र को लगातार निहारते जाइये। जब आँखें दु:खने लगें और उनमें पानी भर जाए, तो कुछ क्षणों के लिये आँखें बन्द कर लीजिये। पुन: आँखें खोलकर चित्र को निहारिये। आँखों के दु:खने पर फिर उन्हें कुछेक क्षणों के लिये बन्द कर लीजिये। पुन: खोलिये और निहारिये, इस प्रकार आठ-दस मिनट करने के बाद आँखों को बन्दकर, बन्द आँखों से चित्र को उसी प्रकार देखने का प्रयत्न कीजिये, जैसे उसे खुली आँखों से देख रहे थे। कल्पनाशक्ति का सहारा लेकर चित्र को बंद आँखों से दृष्टि के सामने लाने का प्रयत्न करते जाइये। इस अभ्यास में मन से लड़ने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। यदि चित्र के सिवाय भी दूसरे विचार आएँ तो परेशान होने की आवश्यकता नहीं है। उन्हें धीरे से हटाकर फिर से चित्र को सामने लाने का प्रयत्न करते जाएँ।

इष्ट के चित्र को पूरा-पूरा देखने के बदले किसी एक अंग को केन्द्र बनाकर केवल वहीं पर दृष्टि एकाग्र की जा सकती है, जैसे माथे के तिलक पर, नेत्रों की पुतली पर, नासिका पर, भ्रूमध्य पर, चरण पर, इत्यादि।

यह अभ्यास प्रकाश में करने का है, अन्धेरे या कम प्रकाश में करने का नहीं है।

दीपक या मोमबत्ती पर त्राटक—पहले के समान ही आसनादि रहेंगे, परन्तु त्राटक की क्रिया मोमबत्ती अथवा दीपक की लौ पर की जाएगी। दीपक में अरंडी का तेल अति उत्तम है। सरसों का तेल भी उपयोग में लाया जा सकता है। बाकी अन्य नियम पूर्ववत् ही रहेंगे।

इस अभ्यास को अन्धेरे में करना चाहिये। दीपक या प्रकाश पर त्राटक करने से आँखों के रोग दूर होते हैं। आँखों की ज्योति बढ़ती है। भूत तथा भविष्य की घटनाओं का भी इसके अभ्यास से ज्ञान होता है।

भ्रूमध्य पर त्राटक—पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। दोनों हाथ मुद्रा में या घुटनों के ऊपर रखें। दोनों आँखों को खुला रखें। अब अपने भ्रूमध्य या दोनों भौंहों के बीच के स्थान में अपनी दृष्टि टिकाइये या देखने की कोशिश कीजिये। पलकें झपकेंगी नहीं। बीच-बीच में विश्राम के लिये प्रारम्भ में कुछ क्षणों के लिये आँखें बन्द की जा सकती हैं, लेकिन चेष्टा यही होनी चाहिये कि लगातार दृष्टि भ्रूमध्य पर ही रहे। प्रारम्भ में 2-3 मिनट से अभ्यास शुरू कर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाइये।

यही क्रिया आँखों को बन्द करके भी कर सकते हैं।

नासिकाग्र पर त्राटक—यथावत् आसन में बैठकर अपनी दृष्टि नाक के अग्र भाग पर ले जाइये। अन्य नियम पूर्ववत् रहेंगे। नासिका के ऊपरी सिरे को लगातार बिना पलक झपकाये देखते रहें। 5-7 मिनट नित्य अभ्यास करें। इसका अभ्यास प्रकाश में करना चाहिये। दिन या रात्रि में कभी भी इसका अभ्यास कर सकते हैं।

नभोदृष्टि—ध्यान के आसन में खुले आसमान के नीचे बैठिये। गर्दन ऊपर आसमान की ओर उठा लीजिये। पहले आसमान को देखिये, फिर भ्रूमध्य को। लगातार 5-7 मिनट तक यह अभ्यास करते रहें। आपकी पलकें झपकने न पाएँ।

इसी प्रकार ऊपर सिर किये हुए नासिकाग्र को भी देखिये। पलकों को झपकायें नहीं। 2-3 मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाइये।

स्वरूप पर ध्यान–ध्यान के अपने आसन में बैठ जाइये। अपने सामने एक आईना उसी प्रकार रख लीजिये जैसे प्रथम अभ्यास में इष्ट के चित्र को रखते हैं। आईना ठीक आँख के सामने हो। अब आईने में अपने प्रतिबिम्ब पर उसी प्रकार त्राटक का अभ्यास कीजिये, जैसे इष्ट या गुरु के चित्र पर किया जाता है। अन्य सब नियम वही रहेंगे।

इस अभ्यास के सिद्ध हो जाने पर साधक अपने सूक्ष्म शरीर को परकाया प्रवेश कराने की विधि जान जाता है।

स्फटिक पर त्राटक का अभ्यास–स्फटिक एक पारदर्शी पत्थर है। यह जल से भी अधिक पारदर्शी होता है। पहाड़ों तथा चट्टानों में यह पाया जाता है। इसमें वस्तुएँ उसी प्रकार स्पष्ट देखी जा सकती हैं, जैसे वे आइने में दिखती हैं। आजकल इस पत्थर की प्राप्ति बहुत ही कठिन है। यदि यह पत्थर किसी को मिल जाए तो उसका प्रयोग साधना के लिये करना चाहिये। उसे किसी धातु के स्टैंड में मढ़वा लेना चाहिये। स्फटिक पर त्राटक का अभ्यास करने के तीन स्तर हैं।

प्रथम स्तर में स्फटिक को आँखों के समानान्तर एक फुट के फासले पर रख लें। उसे पानी से अच्छी तरह धोकर साफ वस्त्र से पोंछ लें। अब ध्यान के किसी भी आसन में उसके सामने बैठकर उसपर त्राटक का अभ्यास करें। बिना पलक झपकाये उस पर एकटक देखते जाएँ। आँखें एकदम स्थिर रखिये। शुरू में 5 मिनट से प्रारम्भ कर धीरे-धीरे समय बढ़ाते हुये आधे घण्टे तक यह अभ्यास करें। स्फटिक के किसी एक बिन्दु पर लगातार इस प्रकार देखते जाएँ कि स्फटिक के सिवाय अन्य और कोई वस्तु न दिखे। इस अभ्यास को एक माह तक करें।

पहले अभ्यास में स्थिरता प्राप्त कर लेने के बाद दूसरे स्तर में प्रवेश करें। दूसरे स्तर में भी आपको स्फटिक पर खुले नेत्रों से अपलक तथा स्थिर दृष्टि से देखते जाना है, लेकिन इस भाव से देखना है, मानो उसे नहीं देख रहे हैं। निद्रा की पूर्वस्थिति में जैसे हमारी दृष्टि खुली तो रहती है पर हम कोई वस्तु को देखते नहीं हैं, वैसे ही होना चाहिये। इस अभ्यास में निद्रा की पूर्वस्थिति से एक जो महत्त्वपूर्ण अन्तर रहेगा वह है कि आपकी दृष्टि एकदम स्थिर रहेगी और पलकें झपकेंगी नहीं। खुली आँखों से निद्रा की कल्पना कीजिये, लेकिन दृष्टि स्फटिक पर स्थिर रखकर। मन भी शान्त और स्थिर रहना चाहिये। इस स्थिति को प्राप्त करने के लिये दृढ़तापूर्वक काफी समय के अभ्यास की

आवश्यकता पड़ेगी। इस अभ्यास में सफलता प्राप्त कर लेने के बाद तीसरे स्तर में प्रवेश करेंगे।

तीसरे स्तर में त्राटक का अभ्यास पूर्ववत् चालू रखने के साथ-ही-साथ यह विचार कीजिये मानो आप अपने अन्दर जाने का प्रयत्न कर रहे हों। मन को देखने की क्रिया से हटा लीजिये। आँखें स्फटिक पत्थर पर स्थिर ही रहें, परन्तु मन अन्दर चले जाए। मन जब अन्तर्मुखी हो जाए तब उसमें कोई विचार या किसी प्रकार की कोई इच्छा न रहे। मन में किसी भी बाहरी वस्तु का ध्यान न रह जाए। इस स्थिति में स्वप्न देखने जैसा अनुभव या निद्रा की स्थिति भी आ सकती है। निद्रा की इच्छा कभी इतनी प्रबल हो सकती है कि आपको आलस्य तथा निद्रा में जाने की इच्छा होगी। इस स्थिति में मन बाहर आने का भी प्रयत्न करेगा, परन्तु आपको दृढ़तापूर्वक इस स्थिति को रोकना पड़ेगा और त्राटक का अभ्यास चालू रखना पड़ेगा। इस स्थिति में खुली आँखों से आकार दिखेंगे और ऐसा मालूम पड़ेगा मानो ये आकार चल-फिर रहे हैं तथा बातें भी कर रहे हैं। ये अनुभव बिल्कुल स्वप्न के दृश्यों से मिलते-जुलते होंगे।

स्फटिक पर जब इस प्रकार के दृश्य उभरें तब आप उन्हें इस प्रकार देखिये मानो आप किसी वस्तु की खोज कर रहे हों। ध्यानपूर्वक उन दृश्यों को देखते जाइये, मानो आप बहुत ही सतर्कतापूर्वक उनका निरीक्षण कर रहे हों। थोड़े मानसिक प्रयत्न द्वारा आप उन चित्रों को स्पष्ट देख सकेंगे। जिसका रूप दिख रहा है, वह क्या कहना चाहता है या क्या कर रहा है, उसके हाथ में क्या है, या वह किसके साथ क्या बातें कर रहा है।

ऐसे ही प्रतिदिन अभ्यास करते जाएँ।

शिवलिंग पर त्राटक—शिवलिंग पर त्राटक सर्वोत्तम है। शिवलिंग को उसकी पीठ पर स्थापित कर किसी उच्च स्थान पर रख लीजिये। शिवलिंग अगर काले पत्थर का हो तो बहुत अच्छा है।

शिवलिंग पर पहले जल की धारा डालो, उसके बाद उसे साफ कपड़े से पोंछकर उस पर त्राटक करो। त्राटक के नियम पूर्ववत् रहेंगे।

शिवलिंग पर त्राटक बड़े महत्त्व का है। इसका सम्बन्ध हमारे शरीर में पहले से ही स्थित दो शिवलिंगों से है, जो शक्ति के दो महान् केन्द्र हैं। शरीर के ये दो लिंग हैं, स्वयंभू और इतराख्य लिंग। एक का स्थान मूलाधार चक्र है और दूसरे का स्थान आज्ञा चक्र में है। स्थूल शिवलिंग की साधना का महत्त्व है स्थूल प्रतीक का आधार लेकर सूक्ष्म को प्रकट करना। काले शिवलिंग पर

त्राटक करने से उसका प्रभाव दृष्टि नाड़ियों के माध्यम से आज्ञा चक्र पर पड़ता है और आज्ञा चक्र में ज्योतिर्मय इतराख्य लिंग, सूक्ष्म में प्रकट होता है।

सूर्य पर त्राटक—सूर्य पर भी त्राटक का अभ्यास किया जाता है। जैसे ही सूर्य उगने का समय हो, ठीक उसी समय बाल सूर्य पर त्राटक करना चाहिए, परन्तु बिना गुरु की आज्ञा के सूर्य पर त्राटक कभी मत करो।

सूर्य पर त्राटक करने के लिये एक बड़े पात्र में जल भर लो, सूर्य की छाया उसमें पड़ने दो। अब जल में प्रतिबिंबित होने वाली छाया पर त्राटक का अभ्यास करो। सूर्य पर त्राटक करने से अलौकिक ज्योतिर्मय पुरुष के दर्शन होते हैं। वही रक्षक देवता और इष्ट बनकर साधकों का मार्गदर्शन करते हैं।

चन्द्रमा पर त्राटक—यह त्राटक हमेशा नहीं किया जा सकता। चन्द्र दर्शन होने पर ही इसका अभ्यास हो सकता है। पूर्णिमा के तीन दिन पूर्व व तीन दिन पश्चात् तक चन्द्रमा पर त्राटक किया जा सकता है।

विचारों को रोककर निर्निमेष नेत्रों से चन्द्रमा को देखते रहना, यही चन्द्रमा पर त्राटक की विधि है। देखते-देखते चन्द्रमा का स्थूल रूप लुप्त होकर उसका अलौकिक सूक्ष्म रूप प्रकट हो जाएगा। हर स्थूल रूप का एक सूक्ष्म स्वरूप होता है। त्राटक के अभ्यास द्वारा वह प्रकट होता है।

बिन्दु पर त्राटक—दृष्टि-दोष को सुधारने के लिये बिन्दु पर त्राटक बहुत ही लाभप्रद है। एक फुट चौड़ा और एक फुट लम्बा काला कागज का टुकड़ा लो। एक अन्य सफेद कागज को चवन्नी के आकार में काट लो। सफेद गोल कागज को काले कागज के ठीक बीच में चिपका दो। दिन के प्रकाश में इस काले कागज के सफेद गोल बिन्दु के ऊपर त्राटक का अभ्यास करो। यह कागज या तो दीवाल पर चिपका दो या शीशे में मढ़कर आवश्यकतानुसार ऊँचाई पर टांग दो। गोल कागज नेत्रों के ठीक सामने पड़े। अधिक ऊँचा, नीचा या टेढ़ा न रहे। नेत्र और बिन्दु की दूरी दो या तीन फुट हो।

पान पर त्राटक—नेत्रों में जलन होने पर पान पर त्राटक का अभ्यास करना चाहिये। पान का एक बड़ा पत्ता लेकर जल से उसके चिकने तरफ एक गोल बिन्दु बना लो। प्रातः सूर्योदय के पूर्व या सूर्यास्त के बाद एक मोमबत्ती जलाकर अपनी बायीं ओर रखो और पान का पत्ता अपने बाँयें हाथ में या चौकी पर रखो। मोमबत्ती इस प्रकार रखें कि उसका प्रकाश काले बिन्दु पर तो पड़े लेकिन आँखों पर न पड़े। अब काले बिन्दु को एकटक निहारो, दो, चार, छः या दस मिनट। इस अभ्यास को प्रतिदिन एक या दो बार अवश्य करो।

तत्त्व आकार पर त्राटक—तत्त्व पाँच होते हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश। पाँचों तत्त्वों के अपने विशेष आकार और रंग होते हैं।

पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला, जल तत्त्व का श्वेत, अग्नि-तत्त्व का लाल, वायु-तत्त्व का नीला और आकाश-तत्त्व वर्ण-रहित है।

पृथ्वी तत्त्व का आकार चौकोर, जल का अर्ध-चन्द्रकार, अग्नि का त्रिकोण, वायु का षट्कोण और आकाश पूर्ण-चन्द्राकार है।

जिस तत्त्व को सिद्ध करना है, उस रंग का कागज लो। उस पर उसी तत्त्व का आकार बना लो। ज्यादा अच्छा है कि एक पोस्टकार्ड लेकर उस पर तत्त्व के रंग का कागज चिपका लो, और किसी गाढ़े रंग से उस पर तत्त्व का आकार खींच लो। अब इसी तत्त्व-आकार पर प्रतिदिन सुबह-शाम त्राटक करो।

एक-एक महीने तक एक-एक तत्त्व-यन्त्र पर त्राटक का अभ्यास करो।

इस तरह तत्त्वों पर त्राटक के अभ्यास से तत्त्व-सिद्धि की प्राप्ति होती है।

छाया पर त्राटक—अपनी छाया पर त्राटक एक बहुत महत्त्वपूर्ण तथा गुप्त क्रिया है। छाया-पुरुष की सिद्धि से साधक को अरिष्टों (दुर्घटनाओं) का पूर्वज्ञान प्राप्त होता है। मृत्यु की सूचनायें इसी छाया-पुरुष को सिद्ध करने से प्राप्त होती हैं।

छाया-सिद्धि के लिये साधना का एक ही समय निश्चित कर लेना चाहिये।

सूर्य के प्रकाश में, सूर्य की ओर पीठ कर खड़े हो जाइये, जिससे आपकी छाया ठीक आपके सामने पड़े। अपनी छाया के गर्दन के भाग पर त्राटक कीजिये। छाया पर लगातार बीस मिनट त्राटक करने के बाद, अपने सामने के आकाश पर देखिये। इस आकाश में आपको अपनी छाया का प्रतिबिंब दिखलाई पड़ेगा। वह छाया कुछ देर के बाद लुप्त हो जायेगी। 6 महीने लगातार नियमपूर्वक छायोपासना करने से छाया-सिद्धि होती है। छाया में दिखाई पड़ने वाले संकेतों को समझने की भी विशेष विधि है, जैसे यदि छाया का सिर कटा हुआ दिखे तो अपनी मृत्यु, बायां हाथ कटा तो स्त्री की मृत्यु, दाहिना तो परिवार, मित्र, सगे-सम्बन्धी की मृत्यु। इस छाया का रंग भी बदलता रहता है। सिद्धि प्राप्त हो जाने पर यही छाया हमेशा साथ में रहती है और मित्र की तरह हमेशा अरिष्टों से सावधान करते रहती है, परन्तु इस छाया से कोई कल्याण नहीं होता और न कोई आध्यात्मिक लाभ ही होता है। वह न तो कोई सलाह देती है, न मुक्ति और रक्षा का उपाय ही बतलाती है, जैसा कि देव-शक्तियाँ और देवी शक्तियाँ करती हैं।

यौगिक चक्रों पर त्राटक–मानव शरीर के अन्दर शक्ति के अनेक केन्द्र हैं जिनमें सात को मुख्य मानते हैं। प्रत्येक चक्र के अपने आकार, आधार, दल, रंग, गुण, अक्षर इत्यादि होते हैं। इनका अच्छी तरह अध्ययन कर लें। उन चक्रों का स्थान भी याद कर लें।

उसके बाद आँखें बन्दकर उस चक्र-स्थान पर अन्दर में चित्र का अनुमान कर उसे देखिये। कुण्डलिनी-योग के अभ्यासी इन चक्रों पर ही ध्यान करते हैं। ये चक्र बड़े शक्तिशाली होते हैं। एक-एक चक्र जागने से एक-एक सिद्धि प्राप्त होती है। इन्हें यदि किसी प्रकार जाग्रत कर दिया जाए तो मनुष्य की शक्तियाँ बहुत बढ़ जाती हैं।

चक्रों के नाम तथा उनके स्थान 'चक्र-अनुसन्धान' के अभ्यास के वर्णन में दे चुके हैं।

ज्योतिर्बिन्दु पर त्राटक–आँखें बन्दकर अपनी दोनों भौंहों के बीच में प्रकाश का एक ज्योतिर्मय बिन्दु देखो। अभ्यास करते-करते आँखें बन्द करने पर वहाँ पर एक ज्योतिर्बिन्दु दिखाई पड़ेगा। इसी ज्योति के पुंज पर अंतरंग-त्राटक करो। अन्तर्दृष्टि से उसे देखो। ज्योतिर्बिन्दु पर त्राटक करने से अनेक देवी-देवताओं का सान्निध्य प्राप्त होता है।

त्राटक की कुछ महत्त्वपूर्ण विधियों का हमने ऊपर वर्णन किया है। अन्य वस्तुओं पर भी इसी विधि से त्राटक का अभ्यास किया जा सकता है। त्राटक साधना में रुचि रखने वालों को इन अभ्यासों में से कोई भी एक अभ्यास चुनकर दृढ़तापूर्वक नियमित ढंग से उसका अभ्यास करना चाहिये। नियमपूर्वक अभ्यास करने वालों को अपनी मन की शक्ति पर नियन्त्रण प्राप्त होता है। मन की एकाग्रता द्वारा वह किसी भी कार्य में सफलता व सिद्धि प्राप्त कर सकता है। चित्तवृत्ति के एकाग्र होने से भौतिक अथवा आध्यात्मिक, किसी भी प्रकार की सफलता प्राप्त की जा सकती है।

योगनिद्रा

निद्रा मनुष्य जीवन का एक बहुत ही आवश्यक कार्य है। निद्रा से शरीर तथा मन की थकावट दूर होती है तथा मनुष्य नये सिरे से कार्य के लिये फिर से सक्षम बन जाता है। एक दिन भी ठीक से नींद न आने से हमारे शरीर तथा मन की जो दशा हो जाती है उसका अनुभव सभी को है। इसी से निद्रा का महत्त्व समझा जा सकता है लेकिन बहुत थोड़े लोग सोने की सही कला जानते हैं।

योग में सोने की जो कला है उसका जानना प्रत्येक व्यक्ति के लिये जरूरी है। यह बहुत लाभकारी है। इससे बहुत थोड़े समय में ही शरीर तथा मन को अत्यधिक आराम की प्राप्ति होती है।

बहुधा लोग अपने दिनभर के अनुभवों पर सोच-विचार करते-करते सोते हैं। वर्तमान युग में जीवन अत्यधिक संघर्षपूर्ण, तनावयुक्त तथा अनेकों उलझनों से परिपूर्ण रहता है। तनाव, उलझन तथा चिन्ता के विचारों को लेकर निद्रा में जाने से नींद देर से आती है। नींद में भी यही विचार स्वप्न के रूप में प्रकट होकर आपको परेशान करते हैं जिससे अधिक देर तक सोने के बाद भी शरीर तथा मन को सही आराम नहीं मिल पाता और आप थकावट और सुस्ती का ही अनुभव करते हैं। अनेकों लोग आज अनिद्रा रोग से ग्रस्त पाये जाते हैं तथा नींद की गोली खाये बिना सो ही नहीं सकते।

योगनिद्रा की यौगिक विधि से सोने का अभ्यास करने से बहुत शीघ्र ही आप नींद में चले जायेंगे। थोड़ी नींद में भी आपको अधिक आराम की प्राप्ति होगी। सोकर उठने पर आपको सुस्ती के बदले चुस्ती तथा फुर्ती का अनुभव होगा। योगनिद्रा को ही आगे चलकर अभ्यास द्वारा समाधि में भी बदला जा सकता है, जो यौगिक-साधनाओं का चरम लक्ष्य है।

नीचे हम योगनिद्रा की विधि का वर्णन करेंगे।

विधि–पहले अपने बिस्तर पर चित्त होकर आराम के साथ लेट जाइये। हाथ बाजू में शरीर से कुछ अलग फैला लीजिये। हथेलियाँ ऊपर की ओर रहें। सिर तकिये पर रहे, लेकिन तकिया बहुत ऊँचा न हो। अब नीचे बतलाये क्रम से शरीर के एक-एक अंग का मानसिक रूप से नाम बोलते हुये उन्हें शिथिल करते जाइये। शिथिल करने के लिये उन्हें बन्द आँखों से देखते चलिये तथा ऐसी भावना करिये कि वह अंग शिथिल हो रहा है। सबसे पहले दाहिने हाथ का अंगूठा, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली, पाँचवी अंगुली, पूरी दाहिनी हथेली।

फिर कलाई, केहुनी, कंधा, बगल, बाजू, कमर, नितम्ब का दाहिना भाग, जननेन्द्रिय, जांघ, घुटना पिंडली, टखना, एड़ी, तलुवा।

फिर दाहिने पैर का अंगूठा, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली, पाँचवीं अंगुली।

फिर बाँयें हाथ का अंगूठा, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली, पाँचवी अंगुली, पूरी बाँयीं हथेली।

फिर कलाई, केहुनी, कंधा, बगल, बाजू, कमर, नितम्ब का बायां भाग, जांघ, घुटना, पिंडली, टखना, एड़ी, तलुवा।

बाँयें पैर का अंगूठा, दूसरी अंगुली, तीसरी अंगुली, चौथी अंगुली, पाँचवीं अंगुली।

फिर सहस्त्रार, चिदाकाश, दोनों भौंहों के बीच की जगह, दाहिनी भौंह, बाँयीं भौंह, दाहिनी पलक, बाँयीं पलक, दाहिनी पुतली, बाँयीं पुतली, दाहिना गाल, बाँयां गाल, दाहिना कान, बाँयां कान, नाक, ऊपर की ओंठ, नीचे की ओंठ, ठुड्डी, गर्दन, पूरी पीठ, छाती, पेट–इतना हो जाने के बाद पूरा दाहिना हाथ, पूरा दाहिना पैर, पूरा बाँयां हाथ, पूरा बाँयां पैर, पूरी धड़, पूरा मस्तक, फिर पूरा शरीर।

अन्त में अपने पूरे शरीर को इस प्रकार सिर से पैर तक देखते जाइये, मानो आप अपने शरीर से बाहर निकल कर अपने आपको देख रहे हैं। कहाँ सोये हैं? क्या पहने हैं? कपड़ों का क्या रंग है? इत्यादि।

यह योगनिद्रा का एक राउण्ड हुआ। बहुत सम्भव है कि इतना करने के पहले ही आप निद्रा की गोद में चले जाएँ। इस बीच यदि आपको नींद आ जाए तो कोई हानि नहीं। यदि इस समय तक नींद न आई तो फिर से इस अभ्यास का दूसरा राउण्ड शुरू कीजिये। जब तक नींद न आ जाए इसी क्रम को दुहराते जाएँ।

मन को इधर-उधर भटकने न दें। ऐसा होने पर मन को फिर पकड़कर वापिस क्रिया में लगायें।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद अंगों का क्रम आपको याद हो जाएगा और आप एक साथ सरलतापूर्वक स्वाभाविक क्रम से क्रिया कर सकेंगे।

यह अभ्यास दिन में भी किया जा सकता है। कठिन श्रम के बीच कुछ मिनटों का भी समय मिले तो इस क्रिया को कुर्सी में बैठे-बैठे भी किया जा सकता है। समय के अनुसार क्रिया adjust की जा सकती है। योगनिद्रा करने की और भी अनेक विधियाँ हैं।

दूसरी विधि–बिस्तर पर चित्त लेट जाओ। एक ही बार में पूरे शरीर को शिथिल करो। ऐसा अनुभव करो कि आपका शरीर बिस्तर पर पड़ा हुआ है और आप उससे एकदम अलग हैं। यह भी अनुभव करो कि आप अपने शरीर को दूर से देख रहे हैं, जो सोया हुआ है। 5 मिनट के लिये अपने शरीर को एकदम ढीला तथा शिथिल कर दो।

इसके बाद 1, 2, 3, 4, 5, इस प्रकार सांस द्वारा गिनती करते जाओ। लगातार इसी तरह गिनती चालू रखो। अगर आपका स्वास्थ्य ठीक है तो 100 की गिनती करते-करते आपको नींद आ जाएगी।

तीसरी विधि–शिथिलीकरण की एक और विधि यह है कि गिनती गिनने के बदले, दोनों भौहों के बीच के स्थान में ॐ या 'सोहं' का मानसिक जप करो। जब तक नींद न आ जाए जप चालू रखो।

दोनों भौहों के बीच ध्यान केन्द्रित कर मानसिक जप करते हुये सोने से बहुत शीघ्र आप गहरी निद्रा में प्रवेश करेंगे।

चौथी विधि–थोड़ी देर उपर्युक्त विधि द्वारा शरीर का शिथिलीकरण करने के बाद श्वास पर ध्यान ले जाओ, और मानसिक रूप से श्वासों को देखते जाओ। थोड़े समय ऐसा करने के बाद अजपा की विधि से श्वासों में ॐ या सोहं का जप करते जाओ। इस प्रकार सोते समय जप का अभ्यास करने से मन एकाग्र होता है और बहुत ही शीघ्र नींद आ जाती है।

ऊपर बतलाई गई योगनिद्रा की विधियों के अतिरिक्त भी योगनिद्रा के अनेकों ऐसे अभ्यास हैं, जिनके द्वारा आप सूक्ष्म लोकों में प्रवेश कर सकते हैं, परन्तु इन अभ्यासों को आपको योग्य गुरु से ही सीखना चाहिये।

योगनिद्रा में संकल्प शक्ति का प्रयोग–योगनिद्रा नींद जल्दी लाने का एक साधन तो है ही, साथ ही इसके द्वारा आप अपनी संकल्प शक्ति का भी प्रयोग कर सकते हैं। इसके लिये अपने आत्मविकास के लिये कोई भी शुभ संकल्प लेकर एक छोटा-सा निश्चित वाक्य बना लीजिये। उदाहरण के लिये यदि आप अपनी संकल्प शक्ति का प्रयोग किसी सद्‌गुण के विकास के लिये करना चाहते हैं, तो इस प्रकार का वाक्य बनाएँ, जैसे–

- मैं प्रात:काल चार बजे अवश्य उठ जाऊँगा, या
- मैं प्रत्येक दिन सबेरे उठकर योग साधना करूँगा, या
- मैं जो सोचूँगा वैसा कर सकूँगा, अथवा इसी प्रकार का अन्य कोई भी संकल्प बना सकते हैं।

यदि आप अस्वस्थ रहते हों तो आप इस प्रकार का संकल्प बना सकते हैं, जैसे–

- मैं स्वस्थ हो रहा हूँ,
- मेरी बीमारी दूर हो रही है,
- अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा मैं अपने को नीरोग कर लूँगा, इत्यादि।

यदि आप किसी दुर्गुण से छुटकारा पाना चाहते हैं तो इस प्रकार का संकल्प बना सकते हैं–

- मैं सिगरेट पीना एकदम छोड़ दूँगा,
- मैं गुस्सा नहीं करूँगा,
- मैं किसी से लड़ाई नहीं करूँगा।

अपनी आध्यात्मिक उन्नति के लिये निम्न संकल्प कर सकते हैं–

- मैं आत्मा हूँ, मन और शरीर नहीं।
- सुख-दु:ख, हानि-लाभ मुझे छू नहीं सकते।
- मैं सत्, चित् और आनन्द हूँ।

इसी प्रकार का कोई भी संकल्प अपनी प्रेरणानुसार चुन लीजिये, और उस संकल्प को योगनिद्रा का अभ्यास शुरू करने के पहले मन-ही-मन, पूरे आत्मविश्वास के साथ 5 बार दुहराइये।

योगनिद्रा समाप्त करने के पहले भी इस संकल्प को 20 बार दुहराइये। विश्वास रखें कि योगनिद्रा में लिये गये संकल्प अवश्य ही पूर्ण होते हैं।

सृष्टि के नियम के प्रतिकूल अथवा किसी के अनिष्ट का संकल्प नहीं लेना चाहिये। संकल्प बार-बार बदलना भी नहीं चाहिये।

जप योग

जप चित्त को शान्त तथा एकाग्र करने का अत्यन्त ही सरल और महत्त्वपूर्ण साधन है। जप के पीछे एक बहुत ही गूढ़ विज्ञान छिपा हुआ है। उस विज्ञान को जाने बिना जो जप का तिरस्कार करते हैं वे अज्ञानी हैं। जप एक महत्त्वपूर्ण योग है।

सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में जप का विधान है। जप का प्रभाव शरीर, मन, अन्तर्मन तथा वातावरण पर भी होता है। जप के लिये एक जपमाला की आवश्यकता पड़ती है। जपमाला में 108 मनके होते हैं। जपमाला तुलसी, रुद्राक्ष, चन्दन या स्फटिक की होती है। जप में गुरु द्वारा प्राप्त अथवा अपने को प्रिय कोई भी एक मंत्र चुन लेना चाहिये।

जप करने के अनेक तरीके होते हैं, जैसे माला पर जप, त्राटक में जप, ताल के साथ जप, तानपूरे में जप, इष्ट मूर्ति को देखते हुए जप, मन के मानसिक स्पन्दनों पर ध्यान सहित जप, नगाड़े पर जप, घंटी पर जप, घड़ी की आवाज के साथ जप, यौगिक चक्रों पर ध्यान के साथ जप, यौगिक चक्रों

के दलों और अक्षरों पर जप। प्राणायाम या श्वास-क्रियाओं के साथ भी जप किया जाता है, जैसे कुम्भक में जप, रेचक और पूरक के साथ जप, चतुर्थ प्राणायाम में जप इत्यादि।

जप में अपनी चेतना को मंत्र के सहारे लगातार, बिना रुके एक क्रम से घुमाया जाता है। भावना और भक्ति के साथ जप करने से उसका असर और भी अधिक होता है।

जप की विधि–किसी भी स्थिर आसन में बैठ जाइये। अंगूठा और अनामिका अंगुलियों को मिलाकर उनके बीच में जपमाला को रख लीजिये। एक-एक मंत्र का उच्चारण करते हुए माला के एक-एक मनके को मध्यमा अंगुली से, अपने शरीर की ओर सरकाते जाइये। सुमेरू (बीच का बड़ा दाना) के बाद मनके से जप शुरू करके फिर सुमेरू पर आने तक जप करते जायें। तर्जनी तथा कनिष्ठा अंगुली एकदम अलग रहनी चाहिये। सुमेरू के पास पहुँचने पर सुमेरू को पार न करें और वहीं से माला को पलट दें। यह एक माला जप समाप्त हुआ। अब नये सिरे से दूसरी माला का जप शुरू करें। इस प्रकार जितनी भी माला जपने का आपने निश्चय किया है उतनी माला का जप पूर्ण कर लें। प्रतिदिन निश्चित संख्या में जप का अभ्यास करने से संकल्पशक्ति बढ़ती है। जप की संख्या पूरी होने के पहले अपने आसन से न तो उठिये, न आँख खोलिये।

यद्यपि जप का अभ्यास किसी भी समय किया जा सकता है, परन्तु उसका सबसे उत्तम समय, सुबह उठने के तुरन्त बाद तथा रात्रि को सोने के पहले है।

प्रत्येक मंत्र का एक देवता होता है। मंत्र जप के साथ इष्ट देवता का मानसिक ध्यान भी करते जाने से अंतर्मुखता की स्थिति जल्द ही निर्मित होती है, और चित्त जल्दी एकाग्र होता है। जप की साधना सरल होते हुए भी उसके अभ्यास के लिये समय, धीरज, निश्चय, संकल्पशक्ति, चैतन्यता तथा श्रद्धा की आवश्यकता होती है।

अपने मंत्र को बार-बार बदलना नहीं चाहिये। एक मंत्र निश्चित कर फिर उसका ही जप निरन्तर करते जाना चाहिये। मंत्र स्वप्न में तथा मंत्र-दीक्षा द्वारा गुरु से भी प्राप्त किये जाते हैं। इन मंत्रों की शक्ति बहुत अधिक होती है।

जप के अभ्यास की पाँच विधियाँ हैं –

- बैखरी– जोर से बोलकर,
- उपांशु– फुसफुसाहट के साथ,

- मानसिक–मन ही मन,
- लिखित जप–कापी में लिखकर,
- अजपा जप–बिना माला के श्वासों के द्वारा।

इन विभिन्न विधियों में से कोई भी एक या एक से अधिक विधि अपने लिये चुन लेनी चाहिये।

बैखरी–बैखरी जप में मंत्र को स्पष्टतापूर्वक अपनी स्वाभाविक आवाज में जोर से बोलकर जपा जाता है। बैखरी जप के द्वारा कुछ समय के बाद मन एकदम शान्त हो जाता है तथा दिव्य-भाव मन में लहराने लगते हैं।

उपांशु–उपांशु जप में, मंत्र को बिना जोर से बोले, फुसफुसाहट की आवाज में इस प्रकार किया जाता है कि उसे अपने सिवाय और कोई दूसरा व्यक्ति नहीं सुन सके। इसमें ओंठ भर हिलते हैं, परन्तु कोई आवाज नहीं निकलती। इसमें बैखरी जप से अधिक ध्यान लगाने की जरूरत पड़ती है।

मानसिक जप–बैखरी तथा उपांशु जप द्वारा मन की स्थिरता प्राप्त कर लेने के बाद ही मानसिक जप का अभ्यास करना चाहिये। इस जप में शरीर के किसी भी अंग में कोई भी गति नहीं होती, केवल मन में मंत्र का मानसिक स्पंदन होता है।

लिखित जप–लिखित-जप किसी नोट-बुक या कॉपी में करना चाहिये। हरी, नीली अथवा लाल स्याही का प्रयोग कर सकते हैं। कॉपी में साफ-साफ सुन्दर अक्षरों से पूरे ध्यान तथा एकाग्रतापूर्वक अपने मंत्र को लिखते जाना चाहिये। अक्षर जितने ही छोटे होंगे उतनी ही अधिक एकाग्रता बढ़ेगी। अनेक प्रकार के कलात्मक चित्रों का मंत्र द्वारा निर्माण करके भी लिखित जप का अभ्यास किया जाता है।

अजपा जप–अजपा की विधियाँ, पूर्व में एक अलग अध्याय में बतलायी जा चुकी हैं।



सूर्य नमस्कार और चित्त को एकाग्र करने के साधन

माँ योगशक्ति

स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं से

सत्यानन्द पब्लिकेशन सोसाइटी, राजनाँदगाँव द्वारा प्रकाशन – 1962

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

सूर्य नमस्कार और चित्त को एकाग्र करने के साधन

यह पुस्तक बम्बई में 24 से 31 दिसम्बर, 1961 तक आयोजित 'अध्यात्म शिक्षण शिविर' में माँ योगशक्ति द्वारा दिये गये तीन प्रवचनों का संग्रह है। इन प्रवचनों में धारणा और एकाग्रता की प्रतिभा विकसित करने की अनेक व्यावहारिक विधियों पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही सूर्य नमस्कार के स्वास्थ्यवर्द्धक एवं ऊर्जाप्रदायी अभ्यास की भी चर्चा की गई है।

–*सम्पादक*

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तिका में, जो माता जी के बम्बई में दिए गए तीन प्रवचनों का संग्रह है, चित्त को एकाग्र करने के कुछ मुख्य साधनों पर प्रकाश डाला गया है। माता जी की योग-साधना अद्‌भुत रही है, उन्होंने गुरुदेव की समर्थ शिष्या बनकर योग की दुरूह क्रियाओं का स्वयं अभ्यास भी किया है। उनके शिष्यों व भक्तों के आग्रह से यह पुस्तिका उनकी 'संन्यास-तिथि' के अवसर पर प्रकाशित की जा रही है।

प्रस्तुत संस्करण के प्रकाशन हेतु हम श्रीमती लीला बाजोरिया (212 कॉर्नवालिस स्ट्रीट, कलकत्ता) के आर्थिक सहयोग के लिए उनके आभारी हैं। चि. पुरुषोत्तम को भी हम धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने माता जी के साथ बम्बई में आसन-क्लास संचालित किए व सूर्य-नमस्कार का ब्लॉक छापने हेतु प्रदान किया।

श्री शीतलदास बालानी (के. जे. खिलनानी हाई स्कूल, दादर के प्रिंसिपल) को, जिन्होंने माता जी के बम्बई के 'शिक्षण-शिविर' की पूरी आवास-व्यवस्था की, यह कृति समर्पित।

हमें पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तक से अनेकों को नई राह मिलेगी। इसके और संस्करण निकलते रहें, इसका ध्यान रखना सहृदय पाठकों का कर्त्तव्य है।

खामगाँव
1 मई, 1962

गिरधारी त्र्यम्बक पुरवार,
प्रकाशक

इस पुस्तक में

चित्त को एकाग्र कर उसे उग्र बनाने में छिपा है सिद्धियों का रहस्य। हिप्नोटिज्म आदि रहस्य-विद्याएँ, स्मृति, बुद्धि, वाणी, संयम आदि प्रतिभाएँ, नए खोज, नई सूझ तथा चरित्र-निर्माण—इन सबका आधार है एकाग्र चित्त। तंत्र शास्त्र और है क्या, यही कि वह चित्त को एकाग्रता के रॉकेट में फिट कर उसका सन्धान करता है।

चित्त को एकाग्र करने के लाखों उपायों में चुने हुए कुछ उपाय योगनिष्ठ माँ योगशक्ति ने मौलिकता के साथ यहाँ प्रस्तुत किए हैं, जो प्रत्येक व्यक्ति को लाभ पहुँचा सकेगा। माता जी ने अपने अध्ययन के आधार पर नहीं, वरन् अभ्यासजनित अनुभवों के सहारे ये उपाय प्रस्तुत किए हैं। गुरुदेव की विशाल शिष्य-मण्डली में माताजी को यह एक अनुपम गौरव प्राप्त है कि उन्होंने बड़ी लगन और तपस्या के साथ योगविद्या याने क्रियायोग का अभ्यास किया व अनुभव पाया। यही कारण है कि वे एक समर्थ शिष्या के रूप में हमारे लिए उतनी ही पूज्य हैं, जितने हमारे गुरुदेव।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि उनकी यह अपूर्व कृति साधकों के लिए एक नया मार्ग प्रस्तुत करेगी।

—श्री योगेन्द्र प्रसाद सिन्हा,
सीतामढ़ी (बिहार)

हमारे मार्गबन्धु

सालों तक ब्रह्मपरक साहित्य रटने से जब 'सत्य' पर पर्दा पड़ गया तो मैंने बुद्धि के धनी (पर विवेक में कंगाल) अपने वाणी-विलास-क्लब के साथियों से छुट्टी ले ली और ऐसे साधारण व्यक्ति को तलाशना शुरू किया, जिसके पास तीनों संकेत हों, भले ही वह निरक्षर, भिक्षुक और दीन हो। पर अकामी, अभोगी, अनासक्त, शान्त, पवित्र, संयमी जरूर हो।

तभी एक दिन मेरी भेंट रायबहादुर कैलाशपति नारायण के यहाँ साधारण दिखने वाले एक साधु से हुई, जिन्होंने बिना बोले ही सूचित कर दिया कि वे तीनों संकेत जानते हैं और अनबोले ही मुझे बहुत-सी बातें समझा दीं। यहीं से मेरा योगाभ्यास शुरू होता है। यहीं से मेरी 'इनर लाइफ' शुरू होती है।

भगवान विश्वनाथ की आज्ञा पाकर मैंने अन्त में 'किसी को गुरु नहीं बनाने की' अपनी मदजनित जिद तोड़ी और जीवन में प्रथम बार निर्धन, गृहविहीन, घुमक्कड़ पर योग के धनी भिक्षुक को पूज्य गुरु के रूप में अंगीकार कर उनकी आज्ञाओं के अनुसार योग-साधना प्रारम्भ की।

गुरुदेव का प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शासन बड़ी कड़ाई व सतर्कता के साथ इस आलसी, प्रमादी, निद्राप्रिय, विषयी, कुतर्की और अयोग्य गोबर-गणेश को पीट-पाट कर नया आकार देते जा रहा है। सन्तों की करुणा शिष्यों पर कड़ाई बन कर उतरती है।

निर्विकल्प समाधि का अनुभव करना ही मेरी जिद है। यही आशीर्वाद मिले मुझे गुरुदेव का। उन्होंने व उनके भक्तों ने मुझे जिस सद्भावना से 'समर्थ योगशक्ति' कहकर प्रेरणा दी है, उसकी रक्षा मैं जीवन देकर भी करूँगी। लोक व अलोक के समस्त भय त्याग कर मैं अपना कर्त्तव्य निभाने में पूर्णत: तत्पर रहूँगी। यह मेरा भीष्म-संकल्प है।

परम हितैषी दीवान बहादुर केदारनाथ गोयनका की सौभाग्यवती पुत्री श्रीमती लीला बाजोरिया को सस्नेह मंगल-आशीष, जिनके सहयोग से ये प्रवचन (या मेरी साधना की झाँकियाँ) प्रकाशित हो रहे हैं। ये प्रवचन मैंने

दिए या गुरुदेव ने, वे योगीजन ही इसे जान सकेंगे, जो सूत्रात्मा के भेद को पा चुके हैं।

मेरी कलम के कलाकार व वाणी के प्रवाह–गुरुदेव 'सत्यम्' मेरी श्रद्धा से प्रसन्न हों!

छपरा (बिहार)
1.5.62

श्री-चरणों में,
योगशक्ति



सूर्य नमस्कार और चित्त को एकाग्र करने के साधन

सारा संसार सुख, सफलता व शक्ति चाहता है और उसी की खोज में भटक रहा है। अपनी-अपनी बुद्धि के विकास-स्तर के अनुसार वह सुख और सफलता के अपने ध्येय निश्चित करता और पाने के लिए प्रयत्नशील होता है। मनुष्य अपने प्रयत्नों में जब सफल होता है तो प्रसन्न हो जाता है। यदि असफलता उसका वरण करती है तो वह दु:खी और निराश हो उठता है। पिंगपौंग के बॉल की तरह वह सुख-दु:ख के बैटों की थपेड़ें खाता रहता है। कभी बीच में ही वह पृथ्वी पर गिर अपनी इहलीला अचानक समाप्त कर चल भी देता है।

मानसिक शक्ति का उपयोग

ऐसी स्थिति में यह अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि जीवन की वास्तविकता का हम अध्ययन करें और यथार्थ को समझ कर अपने जीवन का कुछ-एक कार्यक्रम बनावें। सफलता उन्हीं मनुष्यों को प्राप्त होती है जो जीवन की धारा में स्वत: नहीं बहते, पर जो धारा को रोक उसकी शक्ति को अपनी मनोशक्ति के इशारे पर नचाते हैं। यह मनोशक्ति क्या है? इसे किस तरह बढ़ाया जा सकता है? उस शक्ति का सफलता के लिए किस तरह उपयोग किया जा सकता है? इन प्रश्नों का उत्तर ही मैं इस पुस्तक में दूँगी। मनोशक्ति विद्युत-शक्ति की भाँति है। इस शक्ति को प्राप्त करने की क्रिया यदि सीख ली जाय और रचनात्मक तथा सृजनात्मक कार्यों के लिए उसका प्रयोग किया जाय तो वैयक्तिक और सामाजिक, दोनों कल्याण हो सकता है। जिस प्रकार जल की धाराओं को एकत्रित कर उनकी शक्ति से अनेक बड़े कार्य सम्पन्न हो सकते

हैं, जिस तरह सूर्य की किरणों को आतशी-शीशे पर एकत्रित करने से उनमें जलाने की शक्ति आ जाती है और जिस तरह वाष्प को एकत्रित करने से उससे बड़े-बड़े कार्य किये जा सकते हैं, ठीक उसी प्रकार मन की शक्ति को केन्द्रित कर उससे भी अद्‌भुत कार्य किये जा सकते हैं। वास्तव में सभी महान् पुरुषों की सफलता का रहस्य इसी में छिपा है कि उनकी मन:शक्ति सबल थी। अपने ध्येय की ओर उन्होंने अपनी मानसिक शक्ति को लगाया और सफलता प्राप्त की।

हमारे जीवन में लक्ष्यों की एकता होनी चाहिए। सुख और सफलता, ऐश्वर्य और यश के आकांक्षियों को जीवन की यथार्थता को विवेक से समझ कर पहले अपने जीवन का एक लक्ष्य निश्चित कर लेना चाहिए। लक्ष्य निश्चित करने के बाद उन्हें अपनी पूरी शक्ति उस ध्येय को प्राप्त करने में लगानी चाहिए।

भारत की अध्यात्म विद्या

भारत हमेशा से अध्यात्मवादी देश रहा है। अध्यात्मदर्शन का जितना विकास भारत में हुआ, अन्य किसी देश में नहीं हुआ। ईश्वर के विषय में यहाँ अनेक दर्शन और वाद हैं। अनेक धर्म और दर्शन यहाँ विकसित हुए। ईश्वर के विषय में द्वैतवाद, अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, सांख्यवाद, योग-दर्शन, चार्वाक दर्शन, जैन दर्शन और बौद्ध दर्शन जैसे अनेक मत व सम्प्रदाय हैं। संतों और शास्त्रों की संख्या भी कम नहीं। इन सबसे सिद्ध होता है कि अध्यात्म के मार्ग और अध्यात्म-विद्या में जरूर कुछ विशेषता है। यह विद्या सर्वोत्तम विद्या मानी गई है। यदि ऐसा न होता तो संतों और शास्त्रों की लम्बी परम्परा यहाँ पाई नहीं जाती।

अध्यात्म और विज्ञान

मानव समाज आज दो ग्रुपों में बँट गया है—एक भौतिकवादी ग्रुप है और दूसरा अध्यात्मवादी। इन दोनों ग्रुपों में आज होड़ चल रही है। वर्त्तमान युग में हम देखते हैं कि विज्ञान और धर्म दोनों अपनी-अपनी ताकत आजमा रहे हैं। कुछ लोगों ने धर्म का पक्ष पकड़ा है और कुछ ने विज्ञान का। किंकर्त्तव्यविमूढ़ अभी किसी ओर नहीं गए। महाभारत के सामान जुट रहे हैं। अध्यात्म और विज्ञान, religion और science दोनों में लड़ाई चलेगी। दूरदर्शी, सत्यदर्शी और

युगदर्शी चाहे वे मुट्ठी भर ही क्यों न हों, पाण्डवों का याने धर्म का साथ देंगे और ग्यारह अक्षौहिणी सेना हार निश्चित होने पर भी कौरवों की ओर ही रहेगी। जो सत्य है वह प्रकट होकर रहेगा। जीत किसकी होगी, निश्चित है। भौतिकवाद पर अध्यात्म की विजय होगी। भौतिकवाद स्वयं इसका अपवाद नहीं कर सकता। पदार्थ के ऊपर आत्मा की विजय निश्चित है।

क्या धर्म और विज्ञान परस्पर-विरोधी हैं?

कम्यूनिस्ट कहते हैं कि साम्यवाद पूँजीवाद का कट्टर शत्रु है, किन्तु साथ-साथ यह भी मानते हैं कि साम्यवाद के पूर्व की अवस्था पूँजीवाद है। पूँजीवाद जिस आधार और सिद्धान्त पर चलता है, उसका अन्त निश्चित है। पूँजीवाद का अन्त ही साम्यवाद का प्रारम्भ है। पूँजीपतियों की सन्ध्या साम्यवादियों का विहान है। साम्यवाद के आने की व्यवस्था पूँजीवाद ही करता है। इसी प्रकार विज्ञान और धर्म परस्पर-विरोधी मालूम होते हुए भी एक व सहयोगी हैं। विज्ञान का युग अध्यात्म-युग के पूर्व की अवस्था है। विज्ञान के आविष्कार हमारी मानसिक उन्नति और शक्ति के परिचायक हैं। किन्तु आत्मा मन के भी ऊपर है। बहुत-सी बातों को विज्ञान अभी भी नहीं मालूम कर सका है और उसका explanation देने में असमर्थ है। लेकिन विज्ञान पूर्णता को पहुँच चुका है, ऐसा कोई भी सच्चा वैज्ञानिक नहीं कहता। मेरी समझ से विज्ञान और धर्म परस्पर-विरोधी नहीं, केवल विकास की दो अवस्थाएँ हैं। यहाँ पर धर्म का संकीर्ण अर्थ में प्रयोग न कर उसके विशाल रूप, उसके आध्यात्मिक मूल्य को ध्यान में रख कर उसे विज्ञान से भी ऊपर बतला रही हूँ।

स्थूल और सूक्ष्म का सम्बन्ध

विचार और पदार्थ में निश्चयत: विचार महत्त्वपूर्ण है। विचार मनस्-तत्त्व है। स्थूल पदार्थ से यह सूक्ष्म है। इसी तरह मन से भी ऊपर आत्मा है। वह और सूक्ष्म है। विज्ञान से आज यह सिद्ध हो चुका है कि कोई भी वस्तु जितनी ही सूक्ष्म होती जाती है उतनी ही उसकी शक्ति अधिक होती है। आत्मा अति सूक्ष्म है। उसकी शक्ति अनन्त व असीम है। आत्मा अदृश्य और अरूप है, लेकिन उसी से पदार्थ में जीवन व गति है। विज्ञान कितनी भी उन्नति कर जाय, वह सत्य को केवल खोजता है, सत्य का निर्माण नहीं करता। अभी भी मानव-जीवन के कुछ ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें विज्ञान की पहुँच पूरी नहीं है। कुछ घटनाएँ

ऐसी घटती हैं जिनके कारण और परिणाम में सम्बन्ध जोड़ सकने में विज्ञान असमर्थ है। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उनमें कोई तथ्य नहीं। आधुनिक वैज्ञानिकों ने ईश्वर की अनुपम और रहस्यमय सृष्टि को देख उसकी महानता और अस्तित्व को स्वीकार किया है। बड़े-बड़े वैज्ञानिक यह कभी नहीं कहते कि यही अन्तिम सत्य है और इसके आगे कुछ नहीं है।

वैज्ञानिक चमत्कार और अध्यात्म

प्राय: लोग वैज्ञानिक चमत्कारों को देख यह समझ बैठते हैं कि मनुष्य की शक्ति बढ़ गई है, क्योंकि उसने प्रकृति और अन्तरिक्ष पर विजय प्राप्त कर ली है। यह सही है मनुष्य ने जो खोज की है वह अद्‌भुत है। लेकिन इसके भी परे वह शक्ति है, जिसने इस सृष्टि का निर्माण किया है। मनुष्य जब अपने को अत्यन्त शक्तिशाली मान लेता है तो यह केवल उसके अहं और अभिमान की अभिव्यक्ति है। वह दुनिया में रहते हुए भी आँखें बन्द कर चलता है। आँखें रहते हुए भी वह सत्य को नहीं पहचान पाता। इसका कारण उसकी अहं की भावना है। मनुष्य इसे अस्वीकार नहीं कर सकता कि जो ज्ञान हमें अपनी पाँच ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त होता है वह सत्य का वास्तविक रूप नहीं। एक ही उदाहरण यहाँ काफी होगा। किसी रंग व आकार का ज्ञान हमें नेत्रों से होता है। वह अन्य कई नियमों के आधार पर होता है। बिना प्रकाश के नेत्र-इन्द्रियाँ नहीं देख सकतीं। फिर, नेत्र-इन्द्रिय के साथ यदि मन का संयोग न हो तो वे स्वयं नहीं देख सकतीं।

मनुष्य कितना ही बड़ा आविष्कार करे किन्तु पूर्णज्ञ होने का दावा नहीं कर सकता। इन सब के परे एक असीम सत्ता है, जो सबका निर्माण, संचालन और संहार करती है। उसे प्रकृति कहो या ईश्वर कहो या कुछ भी कहो, लेकिन एक असीम सत्ता है, जिसकी योजनानुसार ही सृष्टि में विकास और प्रगति हो रही है।

सत्य और विज्ञान

सभी वैज्ञानिक आविष्कार ईश्वरीय सत्ता के अन्दर ही आते हैं। विज्ञान और धर्म विरोधी नहीं। लेकिन धर्म यही कहता है कि विज्ञान मनुष्यों को सुखी नहीं बना सकता है और विज्ञान मानव को शान्ति नहीं दे सकता है। केवल विज्ञान मानव के दु:खों की दवा नहीं है। विज्ञान की सीमाएँ हैं। मनुष्य वैज्ञानिक

उपलब्धियों पर फूल उठता है, पर मैं समझती हूँ कि विज्ञान को श्रेय केवल इतना ही है कि वह ईश्वरीय नियमों को, जिनका ज्ञान अभी तक उसे नहीं था, खोज निकालता है और मनुष्य के कल्याणार्थ उनका प्रयोग करने की विधि निकालता है। उदाहरणार्थ, आजकल यह प्रयोग सफलता के साथ किया जा रहा है कि किसी स्वस्थ दशा में तत्काल मरे हुए व्यक्ति की आँखें निकालकर उन्हें अन्धे व्यक्ति की आँखों की जगह लगाकर अंधों को दृष्टि दी जा सकती है। सत्य यही है कि मनुष्य ने एक विशेष सत्य की केवल खोज की है, सत्य का प्रयोग भर सीखा है। उसने सत्य का स्वयं निर्माण नहीं किया है और न कर सकता है। उसने मृत व्यक्ति की स्वस्थ आँखों के उपयोग की नई विधि सीखी है। वह अपनी दृष्टि में एक खोज करता है, पर वास्तविकता यह है कि वहाँ सत्य के नियम पहले से थे। मनुष्य केवल उनको जानता और प्रयोग करता है। मनुष्य और विज्ञान के पास ऐसा कोई नुस्खा नहीं, जिससे वह स्वयं एक सजीव आँख का निर्माण कर ले।

हिन्दी में एक देहाती कहावत है—इस कोठी का धान उस कोठी में रखना। मेरी समझ से विज्ञान भी यही कर रहा है। वह सत्य के existing laws को ढूँढ़ निकालता है। फिर, मनुष्य के कल्याणार्थ उनका विभिन्न क्षेत्रों में प्रयोग करता है। किसी भी समझदार व्यक्ति का यह कहना कि ईश्वरीय-सत्ता नाम की कोई वस्तु नहीं है, मूर्खतापूर्ण है।

ज्ञान-प्राप्ति का मार्ग

जब तक मनुष्य स्वयं ज्ञानी नहीं बन जाता, तब तक उसे ज्ञानी पुरुषों की बात पर विश्वास करना चाहिए। उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण करना चाहिए। सत्य-प्राप्ति और ज्ञान-प्राप्ति का यही सरल मार्ग है। सन्त और महात्मा वे पुरुष होते हैं, जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है, जिन्होंने आत्मानुभव प्राप्त किया है। शास्त्र ज्ञानी महात्माओं के वचन हैं। सन्त व शास्त्र यही बतलाते हैं कि मनुष्य सर्वशक्तिमान् ईश्वर का ही अंश है। वह स्वयं ईश्वर-तुल्य हो सकता है, अर्थात् सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ और सर्वव्यापक हो सकता है, किन्तु यह केवल अपने अन्दर के ईश्वर को अनावृत करना है। मानवीयता के बन्धन को धीरे-धीरे उतार फेंकना है। मनुष्य ईश्वर की ही छाया का प्रतिरूप है। किन्तु नीचे उतरने से उसकी आत्मा के प्रकाश पर मैटर का कवरिंग हो जाने से वह अपने असली स्वरूप को भूल जाता है। मैटर से आच्छादित होने पर भी उसके

अन्दर से उसी आत्मा का छिट-पुट प्रकाश निकलता है, जिसे मनुष्य अपनी शक्ति समझता है। आत्मा के ही प्रकाश व शक्ति से मनुष्य का शरीर गतिमय, मस्तिष्क चेतन और भावनाएँ सक्रिय होती हैं। मनुष्य की जो शक्ति है, वह आत्मा की शक्ति है। शरीर और इन्द्रियों की सीमा में बँध जाने से आत्मा अपने पूर्ण स्वरूप में नहीं चमकती। हमारे शरीर, मन और इन्द्रियों में स्वयं अपनी शक्ति नहीं है, जो उसे गतिमय बना सके।

मनुष्य अल्पज्ञ है

मनुष्य अपने ही जीवन की बातों को पूरा-पूरा नहीं जानता। अपने जीवन और परिस्थितियों पर उसका वश नहीं। अपना भविष्य वह नहीं जानता। अपनी वर्त्तमान परिस्थितियों पर वह नियन्त्रण नहीं रख सकता, न इच्छानुसार उन्हें बना पाता है। वह अपनी प्रत्येक इच्छा को पूरी नहीं कर सकता। तब मनुष्य अपने को सर्वशक्तिमान् और बड़ा कैसे समझ लेता है? वैज्ञानिक आविष्कारों द्वारा मनुष्य के सुख-साधनों में वृद्धि अवश्य हो गई है। इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि मानवता का उपकार हुआ है। लेकिन, यही सत्य का अन्तिम स्वरूप नहीं। ईश्वरीय विकास-योजना का यह एक छोटा प्लैन है।

विज्ञान से शान्ति नहीं

आधुनिक आविष्कारों से एक लाभ हमें यह है कि दुनिया की दूरी और समय की समस्या को एक हद तक उन्होंने सुलझा दिया है। अध्यात्म के प्रचार व ज्ञान-यज्ञ में इन आविष्कारों की सहायता से मानवता का अत्यधिक उपकार किया जा सकता है। विज्ञान से दुःख दूर नहीं होंगे और न विज्ञान मानवता को शान्ति ही प्रदान कर सकेगा। अध्यात्म-मार्ग और धर्म ही मनुष्य को वास्तविक शान्ति और सुख दे सकता है। यदि भौतिक वस्तुओं से मनुष्य सुखी बन सकता तो धनी व्यक्ति समाज में सबसे सुखी व्यक्ति होने चाहिए। लेकिन आप धनी आदमियों के पास जाइए और एक-एक से पूछिए कि क्या वे अपने को परम सुखी समझते हैं?

सुखी कौन?

समाज में केवल एक ही जाति परम सुखी और सन्तुष्ट है। वह है संतों, वीतरागों और हरिजनों की जाति। जिन्होंने भगवान की शरण ली है, जिन्होंने

भगवत्प्राप्ति को जीवन का लक्ष्य और उस लक्ष्य को बेधने के लिए संसार को तीर-धनुष माना है, वही इस जगत् में सुखी और बुद्धिमान हैं।

दु:ख का कारण मानसिक रोग

जिनके पास धन है, जिनके पास बुद्धि है, जिनके पास यश और ऐश्वर्य है, उनके पास जाइए और पूछिए कि वे कोई अभाव महसूस करते हैं या नहीं, उन्हें चिन्ता की बीमारी है या नहीं, वे परेशान और दु:खी रहते हैं या नहीं। जिन्होंने जीवन की गहराइयों में उतरकर जीवन को पहचानने का थोड़ा भी प्रयत्न किया है, वे जानते हैं कि कोई मनुष्य संसार में सुखी नहीं। तृष्णा मनुष्य को किसी-न-किसी काम में उलझाए रहती है और मनुष्य अपने अभावों और अशान्ति को भूला रहता है। यदि ऐसा न होता तो मनुष्य अपनी चिन्ताओं से पागल हो जाता। कुछ लोग कहते हैं कि Religion is the opium of society, जो मनुष्य को यथार्थता से परिचित नहीं होने देता। पर मैं कहती हूँ धर्म नहीं, तृष्णा मनुष्य को भुलावे में डाल कर रखती है और उसे सत्य के नजदीक नहीं जाने देती।

बड़े-से-बड़े धनी व्यक्तियों को भी कोई-न-कोई चिन्ता व परेशानी लगी रहती है। चिन्ताएँ सबको होती हैं। केवल अलग-अलग व्यक्तियों की चिन्ता का स्वरूप भिन्न होता है। मामूली चीजें जो एक के लिए कोई महत्त्व नहीं रखतीं, दूसरे के लिए बड़ी चिन्ता का विषय हो जाती हैं। एक गरीब जहाँ एक कमरे में परिवार के पन्द्रह सदस्यों के साथ भी आराम की नींद ले लेता है, वहाँ धनी को एक पूरी कोठी भी अपनी आवश्यकताओं के लिए अपर्याप्त प्रतीत होती है। दूसरी कोठी बनवाने की चिन्ता उसे परेशान किए रहती है।

शान्ति का मार्ग–साधना

कहने का तात्पर्य यह है कि भौतिक साधन चाहे कितने भी प्राप्त हो जाएँ, मनुष्य तब तक सुखी नहीं हो सकता जब तक वह जीवन के वास्तविक रहस्य अथवा ज्ञान को नहीं प्राप्त करता। जीवन में सफलता और सुख चाहने वालों को हमारा हिन्दू-धर्म बहुत-सी ऐसी साधनाएँ बतला सकता है, जिनसे वे अपनी मनोवांछना पूरी कर सकते हैं। इसका यह मतलब नहीं कि वे साधनाएँ कोई जादू का डण्डा हैं, जिनके स्पर्श से ही मनुष्य में परिवर्तन हो जायेगा। धर्म और अध्यात्म तो विज्ञान के आगे की अवस्था है। विज्ञान का क्षेत्र अभी

पदार्थ तक सीमित है पर अध्यात्म सूक्ष्म का विज्ञान है। वास्तविक धर्म कभी भी अन्धविश्वास नहीं है। श्रद्धा को अन्धविश्वास कहना भूल है।

साधना का अर्थ–चित्त की एकाग्रता

बाह्य जगत् का ज्ञान हमें इन्द्रियाँ और मन कराते हैं। जीवन में सफलता चाहने वालों को अपने मन को एकाग्र करने की कला सीखनी चाहिए। मन की एकाग्रता होने से मानसिक शक्ति सबल होती है। मानसिक शक्ति के सबल होने से अनेक प्रकार के कार्य किए जा सकते हैं। महान् पुरुषों ने जो सफलता पाई, उसका रहस्य इसी में है कि वे अपने मन को एकाग्र कर किसी कार्य में लगाना जानते थे। जब तक मन के ऊपर नियंत्रण रखना और मन:शक्ति को किसी इच्छित कार्य में लगाना और बिखरी हुई मानसिक शक्ति को केन्द्रित करना हम नहीं सीखेंगे, तब तक जीवन में कोई कार्य पूर्णता व सफलता के साथ नहीं कर पाएँगे। मन के नियन्त्रण से ही मनुष्य को शान्ति प्राप्त हो सकती है। मन ही अर्थ और अनर्थ दोनों की जड़ है। मन के माने ही सब कुछ है। इसलिए विद्वान् पुरुष, जो इस सत्य को समझ लेते हैं, वे यह मानते हैं कि Peace is a mental conception. It is an attitude of mind which is to be realised and not to be acquired. शान्ति तो अपने अन्दर की वृत्ति है।

इसलिए हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में मन को वश में करने की, मन को शुद्ध करने की और उसे एकाग्र करने की बातें कही गई हैं। मन बहुत चंचल है। इसे कन्ट्रोल करना बहुत मुश्किल है। योगशास्त्रों में मन को पारे की तरह चंचल कहा गया है।

ध्यान की कठिनाइयाँ–विचार

प्राय: लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि ध्यान कैसे करें। जब हम ध्यान करने बैठते हैं तो उसी समय घर-गृहस्थी और इधर-उधर की बातें याद आने लगती हैं। कभी मन में बहुतेरी ऐसी बातें और काम ध्यान के ही समय याद आने लगते हैं, जो फुरसत के समय नहीं याद आते। पूजा और ध्यान के समय ऑफिस के झगड़े, बाल-बच्चों की बातें, मित्र और दोस्तों की बातें, राजनीति की बातें एक-एक कर याद आने लगती हैं। मन में एक विचार आता है और उसी सूत्र को पकड़ कर अन्य associated thoughts भी आने लगते हैं। कुछ देर

बाद जब मनुष्य सचेत होता है तो अपने मन की तेज गति देख कर चकित हो जाता है। विचारों के बहाव में बहते-बहते मन कहाँ-से-कहाँ चला जाता है। कौवे की तरह मन विचारों की एक डाल से दूसरी डाल पर, दूसरी से तीसरी डाल पर उड़ते-भटकते कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाता है। यदि विचारों की धारा में उल्टी ओर लौटकर हम विचारों का निरीक्षण व अन्वेषण करें तो मन की चंचल गति का कुछ अन्दाज लगा सकते हैं। एक घटना से दूसरी घटना पर, दूसरी से तीसरी पर घूमते हुए मन कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाता है। घर, मित्र, रेल, ऑफिस, गाँव, मकान, शहर—कहाँ-कहाँ के विचारों के प्रवाह में मन भटक जाता है। विचार की शुरुआत कहीं होती है और अन्त कहीं होता है।

साधक की समस्या

प्रत्येक साधक के सामने यह कठिनाई आती है कि मन, जिसमें विचारों की तरंगें हमेशा उठती रहती हैं, चाहे-अनचाहे कुछ-न-कुछ हमेशा सोचता रहता है। इसे कैसे प्रभु-स्मरण में लगाया जाय। प्राय: साधक साधु-सन्तों के पास जाकर अपनी समस्या रखते हैं। साधकों की समस्या है चित्त को कैसे एकाग्र करें, मन के ऊपर कैसे नियन्त्रण प्राप्त करें।

मन को वश में किया जा सकता है। चित्त को एकाग्र करना साधक का पहला काम है। केवल अध्यात्म के साधक को ही नहीं, वरन् सांसारिक मनुष्यों को भी सफलता और शान्ति के लिए मन को एकाग्र करना सीखना आवश्यक है। सभी धर्मोपदेशक कहते हैं प्रभु का ध्यान करो, मन को वश में करो, साधना करो, इत्यादि। बात तो ठीक है। पर साधक में इतना धैर्य नहीं कि वह दीर्घकाल तक चित्त को एकाग्र करने का प्रयत्न करे। गुरु भी ऐसे आजकल अधिक नहीं, जो साधक की कठिनाइयों में उसकी मदद करने को तैयार हों। फलत: साधक दीक्षा तो किसी से लेता है, परन्तु अपनी समस्याओं के समाधान के लिए हर किसी महात्मा के सत्संग की धूल छानता है, हर महात्मा से मिलता है, अपने प्रश्नों को उनके सामने रखता है, उत्तर पाता है और उलझे-सुलझे मस्तिष्क से पुन: घर वापस आ जाता है। बहुत-से अच्छे साधक प्रेरणा के अभाव में कुछ दिनों बाद साधना से उदासीन होने लगते हैं। उनके प्रारम्भिक उत्साह को यदि कायम रखने का, जीवित रखने का प्रयास न हुआ तो वे साधना में दिलचस्पी खो बैठते हैं। बाद में उन्हें अपनी साधना पुन: शुरू से आरम्भ करनी पड़ती है।

साधक और गुरु

जो गुरु साधकों की साधना में व्यक्तिगत रुचि लेते भी हैं उनकी कठिनाई आगे चलकर यह हो जाती है कि प्रत्येक साधक के निकट वे अधिक समय तक रुक नहीं सकते। फिर यदि जिज्ञासु और साधक अनेकों हों तो प्रत्येक के साथ वे पूरा-पूरा समय नहीं दे पाते। पुन: यदि साधक ध्यान में उन्हें न खींच सके और guidance न ले सके तो पत्रों से उन्हें बतलाना पड़ता है। इसमें भी पुन: गुरु की समस्या यह होती है कि यदि साधक और शिष्य सैकड़ों और हजारों हों और सबको guidance देनी हो तो गुरु किस-किसको कहाँ तक पत्र लिखे। जो गुरु साधकों की साधना में व्यक्तिगत रुचि रखता है, उसके सामने यह समस्या कुछ वर्षों में बृहत् रूप धारण कर लेती है। धन्यवाद है विज्ञान को, जिसकी वजह से आज गुरुदेव कहीं भी रहें, उनकी वाणी हम सुन सकते हैं। 'सत्यम्-वाणी' आप सुनना चाहते हों तो आप टेप-रेकार्डर ले लीजिए और सुनिए दिन-रात। जो स्वामीजी के दर्शन और सत्संग की इच्छा रखते हुए भी अपने पद के स्वमानित गौरव के कारण प्रवचन सुनने नहीं आ सकते, ऐसे व्यक्तियों और ऑफिसरों के लिए यह शुभ-सूचना है कि स्वामीजी के सभी प्रवचनों और भजनों को रिकार्ड किया जा चुका है। वे घर बैठे उपदेश सुन सकते हैं।

गुरुदेव अब कहीं भी रहें, आप उनके प्रवचनों को सुन सकते हैं। उनके साधना-सम्बन्धी पत्र भी प्रकाशित हुए हैं और आगे भी प्रकाशित होंगे। इस प्रकार उनके पत्र भी सर्वसुलभ हो गए हैं। गुरुदेव कहीं भी रहें, आप उनके प्रकाशित पत्रों को पढ़कर साधना कर सकते हैं। जो साधना की सीढ़ियों पर चढ़ ऊपर पहुँच सके हैं, उन्हें विज्ञान के सहारे की भी जरूरत नहीं। उनका अपना रेडियो-रिसीवर सेट और अपना ट्रान्समीटर है। वह स्वयं गुरु को देख-सुन व सन्देश भेज सकेंगे।

चित्त को एकाग्र करने की आवश्यकता

साधना की सबसे बड़ी कठिनाई है मन की चंचलता। लेकिन इस कठिनाई को दूर करने का उपाय भी गुरुदेव बतलाते हैं। मन को वश में लाने के कुछ सुगम-साधन मैं अभी आगे बतलाऊँगी। कुछ ऐसे सरल साधन हैं, जिनके अभ्यास से चंचल चित्त को स्थिर किया जा सकता है। ये योग की क्रियाएँ हैं और इनके अभ्यास से प्रत्येक को लाभ पहुँच सकता है। ये एकाग्रता के

अभ्यास ऐसे हैं, जिन्हें नास्तिक भी कर सकते हैं। चित्त को एकाग्र करने से विद्यार्थी, शिक्षक, राजनीतिज्ञ, व्यवसायी, न्यायाधीश, कर्मचारी, अधिकारी सभी को फायदा पहुँचेगा। जो योग का अर्थ *'योग: कर्मसु कौशलम्'* जानते हैं उनके लिए कर्म में कौशल प्राप्त करने के लिए भी मन को एकाग्र करना जरूरी है। प्रत्येक मनुष्य के पास मानसिक शक्ति है, पर बिखरी हुई है। वह फैले हुए पानी की तरह है, जिसका उपयोग एकत्रित करने पर ही हो सकता है। वर्षा का जल कुँओं और तालाबों में एकत्रित हो जाता है तो उससे अनेक कार्य होते हैं।

एकाग्रता से सफलता

अत: चित्त को एकाग्र करना साधना की पहली आवश्यकता है। आत्म-साक्षात्कार के लिए भी पहले चित्त को एकाग्र करना सीखना पड़ता है। चित्त को एकाग्र करने का अभ्यास होने से मनुष्य सांसारिक कार्यों के लिए भी उस योग्यता का उपयोग कर सकता है और परमार्थ के लिए भी उस शक्ति का होना जरूरी होता है। एकाग्र चित्त वालों को संसार में भी सफलता, यश और सुख प्राप्त होता है। यह स्पष्ट है कि जो काम एकाग्र चित्त के साथ, पूर्ण मनोयोग के साथ किया जाता है, वह सदैव पूर्ण और दोष-रहित होगा। चंचल चित्त से किया हुआ काम बिगड़ जाता है। चित्त की चंचलता से, गुरुदेव की वाणी में One misses the judgement.

धर्म के आलोचक कौन?

इसलिए हर एक व्यक्ति को चित्त को एकाग्र करने की कुछ सरल योग क्रियाएँ सीखनी चाहिए। धर्म हमें पहले यही सिखलाता है। धर्म के जितने रूप हैं, उनमें पहले मन को कैसे नियन्त्रित व केन्द्रित किया जाय, इसका ही ध्यान रखा गया है। जो धर्म का विरोध करते हैं वे वही हैं जिन्होंने कभी स्वयं धर्म का पालन नहीं किया, जिन्होंने कभी धर्म को न जानने का प्रयत्न किया, और न कभी उसके वैज्ञानिक आधार की ओर ध्यान ही दिया। वे इधर-उधर से दो-चार बातें सुनकर अपनी धारणा बना लेते और आलोचना करने लगते हैं। जो दूसरों की बुद्धि उधार लेकर धर्म का विरोध व आलोचना करते हैं, क्या उनकी बात मानने व सुनने योग्य है? क्या वकील के पास जाने से आपको दवाओं का नुस्खा मिलेगा? जिन्होंने धर्म को जानने का प्रयत्न किया है, उसकी सामाजिक और वैयक्तिक उपयोगिता पर विचार किया है, जिन्होंने

धार्मिक क्रियाओं का अभ्यास कर उसके लाभालाभ को जाना है, वही धर्म के विषय में अपना मत और विचार देने के अधिकारी हैं। उनके ही कथन में सत्य का अंश होगा, क्योंकि उनका प्राप्त ज्ञान experiment तथा experience पर आधारित है। साधु और महात्मा वास्तव में वही हैं, जो धर्म का व्यावहारिक और प्रायौगिक ज्ञान प्राप्त करते, ईश्वर-प्राप्ति के मार्ग का अनुसन्धान करते और साधना द्वारा वहाँ तक पहुँचते हैं।

बाह्य जगत् और अन्तर्जगत्

मनुष्य के दो जीवन और दो जगत् हैं। दोनों जगत् में उसे प्रतिदिन रहना पड़ता है। मनुष्य का शरीर दोनों की देहरी है, meeting point है। शरीर वह क्रॉसिंग है जहाँ से दो रास्ते हैं। एक इस बाह्य जगत् का रास्ता और दूसरा अदृश्य जगत् का रास्ता। मनुष्य के दो जीवन हैं, एक आन्तरिक और दूसरा बाह्य या बहिर्मुख जीवन।

बाह्य जीवन का अनुभव जाग्रत अवस्था में होता है और आन्तरिक जीवन का निद्रा के समय। बाह्य जीवन का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमें पाँच यन्त्र मिले हैं, जिनसे हमें अपनी बाहरी दुनिया का ज्ञान प्राप्त होता है। इनमें से यदि एक यन्त्र भी बेकार हो जावे तो उससे प्राप्त होने वाला ज्ञान हमें नहीं मिल सकेगा। जिस तरह पोस्टल डिपार्टमेन्ट में यदि हड़ताल हो जावे तो हमें पत्र नहीं मिल सकेंगे, उसी तरह हमारे शरीर का यदि एक भी डिपार्टमेंट काम करना छोड़ दे तो शरीर का काम रुक जायेगा।

इन्द्रिय-ज्ञान और मन

इन्द्रियाँ भी स्वयं कार्य करने वाली नहीं हैं। अपने आप में ये भी जड़ हैं। बिना मन के संयोग के इनसे ज्ञान प्राप्त नहीं होता। जैसे रात्रि में सो जाने के बाद आपको कानों से शब्द नहीं सुनाई पड़ते, नाक से गन्ध की अनुभूति नहीं होती और त्वचा से स्पर्श का ज्ञान नहीं होता। यदि सोए हुए आदमी की बल से आँखें खोल भी दी जाएँ तो भी उसे कुछ दृष्टि-ज्ञान नहीं होता, जब तक वह जाग न जावे। आँख, नाक, कान इत्यादि सभी इन्द्रियाँ स्वस्थ दशा में रहते हुए भी कार्य नहीं करतीं। इसका मतलब है कि इन्हें चेतन और कर्मशील करने वाली शक्ति कोई और है। वह है मन। मन भी आत्मा का एक स्थूल रूप है।

चित्त को एकाग्र करने के लिए मन की गतिविधि जाननी आवश्यक है। यदि मन का स्वरूप समझ में आ जावे तो फिर उसे नियन्त्रित करने का प्रयास करना चाहिए। यदि मन के ऊपर नियन्त्रण की शक्ति प्राप्त हो जावे तो उसका साधना की सफलता के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसलिए साधकों को सबसे पहले चित्त को एकाग्र करना बतलाया जाता है। इसे ही योग-ग्रन्थों में प्रत्याहार की साधना कहते हैं।

योगविद्या किसे कहते हैं

आत्मविद्या को प्राप्त करने के साधन या मार्ग को योगविद्या कहते हैं। आत्मज्ञान प्राप्त करने के लिए योग एक रास्ता बतलाता है। इसके बताए हुए मार्ग पर चलकर साधक सिद्धि की मंजिल पर पहुँचता और आत्मसाक्षात्कार करता है। हठयोग का आधार शरीर-विज्ञान है। शरीर के अवयवों और तत्त्वों का आधार लेकर योगशास्त्र आध्यात्मिक सत्यों पर प्रयोग करना सिखलाता है। जो लोग आज अपने को भौतिकवादी मानते हैं, उन्हें चाहिए कि योग-मार्ग से चलकर वे उस अनन्त को पहचानने की कोशिश करें। एक वैज्ञानिक बनने के लिए, एक प्रोफेसर, वकील या डॉक्टर बनने के लिए मनुष्य को 16-18 वर्षों तक अध्ययन और परिश्रम करना पड़ता है। और ईश्वर-दर्शन या ब्रह्मविद्या का ज्ञान वे बिना परिश्रम के ही चाहते हैं? कोई उन्हें सिद्ध करके दिखला दे! वे स्वयं साधना नहीं करना चाहते! वे स्वयं इस पथ पर नहीं चलेंगे और दूसरा यदि चलना चाहेगा तो यथासम्भव रोकने का प्रयास करेंगे।

जिन्होंने योग का अभ्यास किया है वे बतला सकते हैं और बतलाते हैं कि इस मार्ग से तुम अन्तिम सत्य को खोज सकते हो और इस मार्ग से चलकर तुम स्वयं अनुभव कर सकते हो कि ईश्वर है या नहीं। साथ ही इस रास्ते से चलकर तुम स्वयं सभी वस्तुओं के वास्तविक मूल्य को पहचान सकते हो।

योग के आठ अंग होते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि। ध्यान ही इनमें प्रमुख है। यम-नियम, आसन-प्राणायाम वगैरह केवल ध्यान की तैयारी है। वास्तव में ध्यान ही ईश्वर-प्राप्ति का मार्ग है। ध्यान के बाद समाधि की अवस्था आती है। समाधि परम-ज्ञान की अवस्था है। लेकिन ध्यान एकदम से शुरू नहीं किया जाता। इसके पहले यम-नियम का अभ्यास, आसन व प्राणायाम का अभ्यास, प्रत्याहार की कुछ साधनाएँ आवश्यक हैं। योगाभ्यास के इच्छुकों को इन सबका थोड़ा-थोड़ा

अभ्यास करना आवश्यक है। ये अभ्यास बहुत सरल हैं। सभी स्त्री-पुरुष, बच्चे व बूढ़े इनका अभ्यास कर सकते हैं।

चित्त एकाग्र कैसे किया जाय, यह प्रश्न उठता है। चित्त को एकाग्र करने के सवा लाख साधन अर्थात् उपाय हैं। कोई एक उपाय चुनकर साधक को प्रतिदिन उसका नियमित अभ्यास करना चाहिये। बारम्बार अभ्यास का प्रयत्न करने से साधना में सफलता अवश्य मिलती है। एकाग्रता के विभिन्न साधनों का अब वर्णन करूँगी।

पहला साधन—आसन

चित्त की एकाग्रता चाहने वालों को योगासनों को अपनी दिनचर्या में स्थान देना चाहिए। योगासन से न केवल शारीरिक स्वास्थ्य सुधरता है, वरन् मन की शान्ति व सन्तुलन भी प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार शरीर में रोग होते हैं, उसी प्रकार मन में भी रोग होते हैं। मन के रोग हैं—ईर्ष्या, क्रोध, चंचलता, लोभ, इत्यादि।

आसन करने से चित्त में शान्ति आती है। मन के भावों को जगाने के लिए बाह्य क्रिया या वस्तु माध्यम बनती है। गन्दी चीज देखकर घृणा, चोट देखकर करुणा और सेवा की भावना तथा आततायी देखकर पौरुष का भाव आता है। इसका अर्थ यह है कि बाह्य क्रिया या वस्तु से अन्तर के भाव को जगाया जा सकता है। वैसे ही आसन ऐसी यौगिक क्रियाएँ हैं जो चित्त की शान्ति के माध्यम हैं।

आसन करते समय मन में उद्वेगपूर्ण भाव न लाया जाय। ठीक ढंग से आसन करने से चित्त की एकाग्रता बढ़ती है। जो योगासनों को एक कला समझकर स्थिर चित्त से उसका अभ्यास नित्य करते हैं, उनकी चित्त-भूमिका निर्मल बनती है। आसन करते समय फिजूल की बातें नहीं सोचनी चाहिए। उस समय सारा ध्यान आसन करने की क्रिया पर ही रहना चाहिए। दत्त-चित्त होकर आसन करने से चित्त की एकाग्रता की शक्ति बढ़ती है। शारीरिक स्वास्थ्य से मन भी स्वस्थ रहता है। मन का स्वास्थ्य अच्छा रहे तो उसकी एकाग्रता की शक्ति भी बढ़ जाती है।

चित्त को एकाग्र करने का पहला साधन आसन ही है। यथोचित विधि से एकान्त में प्रतिदिन शान्त चित्त से आसनों का अभ्यास करना चाहिए। आसन करने का समय प्रातःकाल है। प्रातःकाल और एकान्त में करने से बाह्य विक्षेप

तथा आन्तरिक विक्षेप कम होते हैं। मनुष्य की सांसारिक चिन्ताओं के आरम्भ होने के पहले ही आसनों का अभ्यास समाप्त हो जाना चाहिए।

आसन करते समय पूरा ध्यान आसन की क्रिया पर ही रहना चाहिए। शरीर के जिस अंग पर आसन के कारण दबाव पड़ता हो, पीड़ा होती हो या किसी प्रकार की संवेदना होती हो, उसी अंग या स्थल पर मन को एकाग्र करें। किसी सूक्ष्म वस्तु पर चित्त को ठहराना कठिन होता है। लेकिन किसी अंग और वहाँ की संवेदना का आधार लेकर मन कुछ देर टिकने में समर्थ होता है। मनुष्य का मन बहिर्मुखी तथा गति का प्रेमी है। क्रिया में उसका मन लगता है, शून्य में नहीं। निश्चलता उसे खलती है। ऐसे प्रारम्भिक साधकों को पहले आसन करना शुरू करना चाहिए। चित्त की एकाग्रता का यह प्रथम पाठ व साधन है।

पुन: आसनों का कुछ दिन अभ्यास कर लेने पर आसन के साथ-साथ मानसिक जप करने का अभ्यास डालना चाहिए। आसन करने में जितना समय लगे, उतने समय तक गुरु या इष्ट-मंत्र का निरन्तर मानसिक जप करना चाहिए। ऐसा करने से मन की भाग-दौड़ समाप्त हो जाती है। जैसे बन्दर के गले में छोटी रस्सी डालकर उसे किसी खम्भे से बाँध दिया जाय तो वह उतनी ही दूर तक चढ़ता-उतरता रहेगा, जितनी रस्सी की लम्बाई होगी। मन की गति भी बन्दर की तरह चंचल है। इसलिए उसे यदि जप-कार्य में बाँध दिया जाय तो वह फिजूल की बातों के पीछे नहीं भागेगा। विचारों की धारा में बहकर दूर नहीं जायेगा। छोटी रस्सी का अर्थ है मन के विचरने का क्षेत्र याने विषय सीमित कर दिया जाय। मन केवल जप करे। अन्य बातों के बारे में न सोचे।

प्रारम्भ में यह कार्य नए साधकों को कठिन प्रतीत होगा। किन्तु थोड़े दिनों के अभ्यास से मन अभ्यस्त हो जायेगा और उसे कठिनाई नहीं मालूम होगी। आसन चित्त को एकाग्र करने का सबसे सरल साधन है। शारीरिक स्वास्थ्य तो मिलता ही है, साथ ही मानसिक स्वास्थ्य और शक्ति भी मिलती है।

दूसरा साधन–नादानुसंधान

चित्त को एकाग्र करने का दूसरा सरल उपाय है नादानुसंधान। नाद का अनुसंधान याने नाद की खोज करना। मनुष्य का मन बहिर्मुखी होता है। इन्द्रियों से वह विषयों का रस लेता है। उसे देखना, सुनना व बोलना पसन्द

है। लेकिन इन्हीं इन्द्रियों के सहारे, जिनसे मन बहिर्मुख होता है, उसे अन्तर्मुख भी किया जा सकता है। मन को एकाग्र करना उसे अन्तर्मुख अवस्था की ओर ले जाने का प्रयास है।

ध्वनि का सहारा लेकर भी चित्त को एकाग्र किया जाता है। यह अभ्यास सरल और मन को अच्छा लगने वाला है। कई ढंग से इसका अभ्यास किया जा सकता है।

प्रथम अभ्यास–गुंजन

सबसे पहले पूजा घर या एकान्त-स्थल में आसन बिछा लीजिए। एकान्त में ही अभ्यास अच्छी तरह हो सकेगा। अब जिस आसन में आप पूजा के लिए बैठते हों उसी में बैठ जाइए। ध्यान के लिए दो आसन उत्तम माने जाते हैं। पहला पद्मासन, दूसरा सिद्धासन। दोनों में से किसी आसन में बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। तत्पश्चात् दोनों हाथों की तर्जनी से दोनों कानों के छेद बन्द कर लीजिए। गम्भीर ध्वनि से गुंजन की आवाज मुँह से निकालिए। जैसे भौंरा गुंजन करता है तथा जैसे भ्रामरी प्राणायाम में आप आवाज निकालते हैं, उसी प्रकार आप गले से गुंजन की आवाज निकालिए। इस ध्वनि को आप ध्यान से सुनिए। अपनी पूरी श्रवण-शक्ति को इस आवाज पर केन्द्रित कीजिए। कानों के छेद बराबर उंगलियों से बन्द रखिए। इस प्रकार नित्य दस मिनट तक अभ्यास कीजिए।

गुंजन की आवाज करने के पहले फेफड़ों को श्वास से भर लीजिए। तत्पश्चात् श्वास निकालने के साथ-साथ गुंजन की आवाज निकालिए। नि:श्वास खूब धीरे-धीरे निकालिए।

इस अभ्यास में नए साधकों को एक यह कठिनाई होती है कि उंगलियों से कान बन्द करने पर, हाथों को उठाकर रखना पड़ता है। देर तक हाथ उठाए रखने से पीड़ा व कठिनाई होती है। इसलिए बहुत देर तक इस अभ्यास को अखण्ड जारी नहीं रखा जा सकता। इस कठिनाई को दूर करने के लिए आप दो उपाय काम में ला सकते हैं।

पहला उपाय है एक छोटा स्टूल अपने सामने रख लिया जाय और दोनों केहुनियाँ उस पर टिका ली जाएँ। दूसरा उपाय यह है। घी में या तेल में डुबा कर, फिर अच्छी तरह निचोड़ कर रूई के दो गोले तैयार कीजिए। नादानुसंधान के अभ्यास के समय रूई के गोलों से दोनों कान बन्द करके रखिए।

द्वितीय अभ्यास–प्रणवोच्चारण

पद्मासन या सिद्धासन, जो भी सुविधाजनक हो, लगा कर बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। कानों के छेद रूई या उंगली से बन्द रखिए। गुंजन के बदले प्रणव शब्द का उच्चारण कीजिए। प्रणव का उच्चारण धीरे-धीरे गम्भीर ध्वनि से होना चाहिए। जल्दी-जल्दी उच्चारण न किया जाय। उच्चारित ध्वनि को ध्यान से सुनें। सम्पूर्ण श्रवण-शक्ति को ध्वनि पर केन्द्रित करें। मन में दूसरे विचार न आवें। इस प्रकार कुछ देर अभ्यास नित्य करें।

तृतीय अभ्यास–अन्तर्ध्वनि

पूर्ववत् आसन में बैठिए। नेत्र बन्द। कानों के छेद भी बन्द रहें। किन्तु इस बार गले से कोई ध्वनि न निकालें। कानों के अन्दर होने वाली अन्तर्ध्वनि या अन्तर्नाद को सुनने की चेष्टा कीजिए। ध्यान देने पर आपको कानों के अन्दर कुछ ध्वनि सुनाई पड़ेगी। प्रारम्भ में यह ध्वनि चिन्-चिन् की सी आवाज होती है, जो झींगुर की आवाज से मिलती है। इस आवाज को आप ध्यानपूर्वक सुनते जायँ, जब तक चित्त उस आवाज में डूब न जाय। कभी-कभी सुनते-सुनते वह आवाज लुप्त हो जाती है। पुन: उस ध्वनि को पकड़ें और सुनते जायँ।

कभी-कभी एक के बदले कई ध्वनियाँ आपको एक साथ सुनाई देने लगेंगी। यदि ऐसा हो तो जिस ध्वनि को आप पहले सुनें, उसी को पकड़े रहें। पहली आवाज पर ही चित्त को एकाग्र करें। अपनी पूरी श्रवण शक्ति को उसी ध्वनि पर एकाग्र करने के प्रयत्न में लीन रहें।

चित्त की एकाग्रता ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है, त्यों-त्यों ध्वनि भी बदलती जाती है। लेकिन साधक को यह जानने की जरूरत नहीं कि किसके बाद कौन-सी ध्वनि आएगी। आध्यात्मिक मार्ग में साधक को सब चीजें अपने अनुभव द्वारा जाननी चाहिए। थ्योरी और पुस्तकीय ज्ञान कुछ मदद नहीं करता। किताबी ज्ञान से साधना-पथ और कठिन हो जाता है। अगली अवस्था का पूर्वज्ञान रहने से साधक अपने अनुभव के वास्तविक रूप को नहीं पहचान पाता। उसके मस्तिष्क में पहले से suggestions रहते हैं। फिर यदि उसे वैसा ही अनुभव हो भी तो वह समझ नहीं पाता कि वह मन का पूर्वज्ञान है या वास्तविक अनुभव।

इसके विपरीत यदि पहले साधना द्वारा आध्यात्मिक सत्यों का अनुभव कर लिया जावे और बाद में शास्त्र-ज्ञान से उसकी पुष्टि हो तो साधक का विश्वास

एकदम दृढ़ हो जाता है। साधना में बुद्धिज्ञान को हमेशा बाधक माना गया है। गुरुदेव भी बराबर शिष्यों से यही कहते हैं—No amount of book-reading will help you on the path of yoga and self-realisation.

नाद के द्वारा चित्त को एकाग्र करने के तीन अभ्यास अभी बतलाये मैंने। मनुष्य का मन स्वभाव से चंचल है। सूक्ष्म चीजों की अपेक्षा स्थूल चीजों का आश्रय लेकर मन को जल्दी पकड़ा जा सकता है। नाद का स्थूल आकार नहीं, लेकिन स्थूल ध्वनि है। पहले स्थूल के सहारे मन को पकड़िए, और जब वह पकड़ में आ जाय, तो स्थूल से हटाकर उसे सूक्ष्म में लाइए। पहले गुंजन पर, फिर प्रणव पर और अन्त में अनाहत नाद पर चित्त को एकाग्र कीजिए। ध्वनि दो प्रकार की होती है। एक आहत, दूसरी अन-आहत। आहत ध्वनि आघात व प्रयास से पैदा की जाती है। अनाहत ध्वनि बिना आघात और प्रयास किए पैदा होती है। अनाहत ध्वनि को voice of silence भी कहते हैं।

कुछ दिनों के अभ्यास के बाद आप कानों को बिना बन्द किए हुए ही, और बिना ध्वनि पैदा किए हुए अपने अन्दर अनाहत-नाद सुनने लगेंगे। नादानुसंधान के अभ्यास का समय हमेशा रात्रि या ब्रह्ममुहूर्त्त है। दिन में बाह्य कोलाहल के बीच अभ्यास करना कठिन है। शोरगुल में अन्तर्ध्वनि को पकड़ने में कठिनाई होती है। एकान्त और शान्त वातावरण में दिन में भी अभ्यास किया जा सकता है। तीनों अभ्यासों को क्रमश: प्रतिदिन करना चाहिए। पन्द्रह मिनट का अभ्यास प्रारम्भ में काफी है।

नादानुसंधान के अभ्यास से मन जल्दी एकाग्र होता है। धीरे-धीरे चित्त ध्वनि में डूबने लगता है। चित्त-वृत्ति रुक जाती है और चित्तवृत्ति के निरोध का नाम ही योग है—*योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:*।

अनाहत नाद सुनने के लिए बैखरी को मध्यमा में, फिर उसे पश्यन्ती में बदल कर अन्तत: परावाणी में आना पड़ता है। परावाणी ही अनाहत-ध्वनि है। क्षणमात्र के श्रवण से ही जिस आनन्द की प्राप्ति होती है, वह आनन्द कहने की चीज नहीं। सारा दु:ख बह निकलता है। सारे क्लेश थम जाते हैं। जीव उपाधिभाव से निवृत्त हो जाता है।

तीसरा साधन—शून्य दृष्टि

चित्त को एकाग्र करने का तीसरा उपाय अब सुनिए। इस साधन का अभ्यास दिन में किसी भी समय किया जा सकता है। बहिर्मुखी इन्द्रियों को बाहर की

ही वस्तु पर अटकाकर उन्हें अन्तमुर्खता का अभ्यास कराया जा सकता है। बाह्य जगत् की दृश्य वस्तु पर इन्द्रियों की सहायता से मन को एकाग्र किया जा सकता है। इस तृतीय साधन में रूप की इन्द्रिय, नेत्र को आधार बना चित्त को एकाग्र करने की कला सीखिए।

प्रथम अभ्यास—चित्र पर

अपने इष्ट या गुरुदेव का चित्र लीजिए। उसे इतनी ऊँचाई पर रखिए कि बैठने पर वह चित्र ठीक आपकी आँखों के सामने रहे। ऐसे स्टूल, चौकी या खिड़की पर रखिए कि वह आँखों से न ऊँचा हो और न नीचा ही। ठीक आँखों के सामने होना चाहिए। आँखों और चित्र के बीच में कम-से-कम डेढ़ फुट और अधिक-से-अधिक तीन फुट का फासला होना चाहिए।

आसन बिछाकर पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। दोनों हाथ चिन्मय मुद्रा या भूमिस्पर्श मुद्रा या अपनी ध्यान मुद्रा में रख कर बैठ जाइए। कोई मुद्रा न जानते हों तो दोनों हथेलियाँ गोद में एक-दूसरे पर रख कर बैठ जाइए। बैठने के समय यह ध्यान रहे कि रीढ़ की हड्डी हमेशा सीधी रहे।

आसन या मुद्रा में बैठकर अपलक नेत्रों से सामने रखे चित्र को निहारिए। पलकें न झपकें। बिना पलकों को गिराए लगातार चित्र को तब तक देखते जाइए जब तक आँखें दुःखने न लगें और आँखों से पानी न आ जावे। जब आँखें दुःखने लगें और उनमें पानी भर जाए तो दो-चार क्षणों के लिए आँखें बन्द कर लीजिए। पुनः खोलिए। फिर उसी प्रकार निहारिए। फिर आँखों के दुःखने पर कुछेक क्षण उन्हें बन्द कर लीजिए। पुनः खोलिए और निहारिए। इस प्रकार 8-10 मिनट प्रतिदिन अभ्यास कीजिए।

इष्ट के चित्र को पूरा-पूरा देखने के बदले किसी एक अंग को केन्द्र बनाकर केवल वहीं पर दृष्टि एकाग्र की जा सकती है। जैसे भाल के तिलक पर, नेत्रों की किसी पुतली पर, नासिका पर, भ्रूमध्य पर, चरण पर, इत्यादि। जहाँ इच्छा हो वहाँ पर दृष्टि एकाग्र की जा सकती है।

अपलक-दृष्टि से देखने को शून्य-दृष्टि या दृष्टि-साधन कहते हैं। कुछ लोग इन सब साधनों को क्रियायोग भी कहते हैं। क्रियायोग का अर्थ है क्रियाओं के द्वारा साधना-मार्ग अर्थात् आत्म-साक्षात्कार के रास्ते पर चलना। शून्य-दृष्टि का प्रथम अभ्यास प्रकाश में करने का है। अन्धेरे या कम प्रकाश में नहीं करना चाहिए।

द्वितीय अभ्यास–दीपक पर

आसन और मुद्रा में बैठकर दीपक की लौ पर शून्य-दृष्टि का अभ्यास अंधेरे में कीजिए। अरंडी के तेल का दिया अत्युत्तम होगा। अन्यथा सरसों के तेल का भी रखा जा सकता है। शून्य-दृष्टि के साधन के अन्य नियम पूर्ववत्। अन्तर केवल यही कि चित्र के बदले दीपक और प्रकाश के बदले इसे अंधेरे में करें।

तृतीय अभ्यास–भ्रूमध्य पर

पद्मासन या सिद्धासन में बैठें। दोनों हाथ मुद्रा में। आँखें खुली। दोनों भौहों के बीच के स्थान को नेत्रों से देखने की चेष्टा कीजिए। पलकें झपकेंगी नहीं। दृष्टि लगातार होनी चाहिए। बीच-बीच में विश्राम के लिए, प्रारम्भ में कुछ क्षणों के लिए आँखें बन्द की जा सकती हैं। किन्तु चेष्टा यही होनी चाहिए कि लगातार शून्य-दृष्टि स्थिर रहे। इस प्रकार 5-10 मिनट अभ्यास कीजिए। प्रारम्भ में 2-3 मिनट का अभ्यास कर धीरे-धीरे समय बढ़ाते जाइए। यही क्रिया आँखों को बन्द कर और अधखुली आँखों में भी की जाती है।

चतुर्थ अभ्यास–नासिकाग्र पर

आसन और मुद्रा में बैठकर अपनी दृष्टि नासिका के अग्रभाग पर ले जाइए। अन्य सब नियम पूर्ववत् रहेंगे। नासिका के ऊपरी सिरे को लगातार बिना पलक झपकाए देखते रहें। 5-7 मिनट नित्य अभ्यास कीजिए। दिन और रात्रि, दोनों समय इसे कर सकते हैं।

पंचम अभ्यास–नभोदृष्टि

आसन व मुद्रा में बैठें। गर्दन ऊपर आसमान की ओर कीजिए। पहले आसमान को देखिए। फिर भ्रूमध्य को देखिए। लगातार पाँच-सात मिनट तक देखिए। पलकें नहीं झपकें। इसी प्रकार ऊपर सिर किए हुए नासिकाग्र भी देखिए। पलकें नहीं झपकें। 2-3 मिनट से शुरू कर धीरे-धीरे समय बढ़ाइए।

षष्ठम अभ्यास–स्वरूप पर

आसन व मुद्रा में बैठकर सामने एक दर्पण रखकर, जो आँखों के ठीक सामने हो, अपने ही रूप पर शून्य-दृष्टि का साधन वैसे ही कीजिए, जिस तरह गुरु या इष्ट-देव के चित्र पर किया जाता है। अन्य सब नियम वहीं रहेंगे।

शून्य-दृष्टि-साधन द्वारा मन को एकाग्र करने के कई तरीके मैंने बतलाए। और भी बहुत-से तरीके हो सकते हैं, पर यहाँ बतलाए हुए तरीके उत्तम माने जाते हैं। साधकों को इनमें से कोई एक इच्छानुकूल साधन चुनकर उसका प्रतिदिन दृढ़ता से अभ्यास करना चाहिए। नियमपूर्वक अभ्यास करने वाला अपनी मनोशक्ति का स्वामी बनता है। उसकी मनोशक्ति दूसरों की अपेक्षा सबल और सफल होती है। मन की एकाग्रता व शक्ति से वह किसी भी कार्य में सफलता व सिद्धि की प्राप्ति कर सकता है। चित्तवृत्ति के एकाग्र होने से ध्यान और ध्यान से समाधि की प्राप्ति होती है।

इस क्रिया के प्रथम अभ्यास में सिद्धि प्राप्त हो जाने पर काले बिन्दु या स्फटिक या जल के माध्यम से अज्ञात घटनाओं का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

इस क्रिया के द्वितीय अभ्यास में सिद्धि प्राप्त हो जाने पर अलोक की आत्माओं को उतारा जा सकता है।

इस क्रिया के प्रथम दो अभ्यासों के सिद्ध हो जाने पर साधक 'तेजोमय दृष्टि' याने magnetic look की प्राप्ति करता है।

इस क्रिया के षष्ठम अभ्यास के सिद्ध हो जाने पर साधक अपने सूक्ष्म शरीर को परकायाप्रवेश कराने की विधि जान लेता है।

चौथा साधन–प्राणायाम

मन और इन्द्रियों को वश में करना कठिन कहा जाता है। हमारे ऋषि-मुनियों द्वारा प्रदत्त योगविद्या में कुछ ऐसे सहज और सरल साधन वर्णित हैं, जिनसे मन को सहज ही वश में लाया जा सकता है। कठिनाई यही है कि पश्चिम की हवा में हम उड़े चले जा रहे हैं। अपनी संस्कृति व धर्म के अध्ययन, विकास और प्रचार के लिए हम न शक्ति देने को तैयार हैं और न समय। धर्म क्या है, यह भी जानने की चेष्टा नहीं करते। हममें हीनता की भावना इतनी ज्यादा आ गई है कि हम अपना कर्त्तव्य भूल गये हैं। वास्तव में धर्म का अर्थ गलत लगाया जाता है और व्यवहार में भी गलत प्रयोग हो रहे हैं। हिन्दू-धर्म के सनातन-ज्ञान के पक्ष की अवहेलना कर हिन्दू धर्म टिक नहीं सकेगा।

हिन्दू-धर्म-ग्रन्थों में चित्त को एकाग्र करने के अनेक उपाय बतलाए गए हैं। तीन उपाय पहले बतला चुकी हूँ। अब चौथा साधन सुनिए। सबके लिए सहज और करने में सरल साधन है श्वास-क्रिया द्वारा चित्त को एकाग्र करना। श्वास

से हम प्राणवायु को अन्दर लेते हैं। प्राणवायु के साथ मन का बहुत संयोग रहता है। इसलिए श्वास पर चित्त एकाग्र करने से मन की गति रुक जाती है। श्वास को अन्दर लेना, बाहर निकालना और रोक लेना—इसे ही प्राणायाम कहते हैं। प्राणायाम इन्हीं तीन क्रियाओं के योग का नाम है। प्राणायाम के द्वारा भी मन बहुत जल्दी एकाग्र होता है। श्वास के द्वारा चित्त एकाग्र करने की दो-चार विधियाँ सुनिए।

प्रथम क्रिया

सिद्धासन या पद्मासन में सुखपूर्वक बैठ जाइए। आँखें बन्द कर लीजिए। बायाँ हाथ मुद्रा में रखिए। दाहिना हाथ नाक के छेद को बन्द करने और खोलने के लिए तैयार रखिए। अब दाहिने हाथ के अंगूठे से नाक के दाहिने छेद को दबाकर बन्द कर लें। नाक के बायें छेद से धीरे-धीरे श्वास अन्दर लीजिए। फिर दाहिने हाथ की अनामिका उंगली से बाएँ छेद को बन्द कर दाहिना छिद्र खोल दीजिए। दाहिने छिद्र से धीरे-धीरे निःश्वास छोड़ दीजिए।

पुनः दाहिनी नाक से धीरे-धीरे श्वास अन्दर लीजिए। दाहिनी नाक बन्द कीजिए। बाँयीं खोल दीजिए। बाँए छेद से श्वास को धीरे-धीरे बाहर निकालिए।

पुनः बाएँ नाक से पूर्व की तरह श्वास अन्दर लीजिए और दाहिने से बाहर निकालिए। दाहिने से लेना, बाँए से निकालना, बाँए से लेना, दाहिने से निकालना। पुनः दाहिने से लेना, बाँए से निकालना। यही क्रम बराबर चलेगा। पन्द्रह-बीस बार इसी प्रकार कीजिए।

नियम—श्वास लेते और निकालते समय पूरा ध्यान श्वास-प्रश्वास की क्रिया पर रहना चाहिए। ऐसा भाव लाइए, जैसे आप श्वास को अन्दर जाते और बाहर निकलते देख रहे हों। प्राणायाम की क्रिया से मन बहुत जल्दी एकाग्र होने लगता है। दो ही दिन के अभ्यास में आपको इसका अनुभव होने लगेगा।

द्वितीय क्रिया

अपने निश्चित आसन में बैठ जाइए। बाँया हाथ मुद्रा में। दाहिने हाथ को नाक पकड़ने के काम में लाएँगे। अनामिका से बाँया छेद और अंगूठे से दाहिना छेद बन्द किया जावेगा। मध्यमा और तर्जनी भ्रूमध्य पर रहनी चाहिए। कनिष्ठा

सदैव खुली रहेगी। प्राणायाम की किसी भी क्रिया में इसी प्रकार नाक को पकड़ा जाता है।

इस द्वितीय क्रिया में श्वास और प्रश्वास बराबर की मात्रा या परिमाण में अन्दर लिए और निकाले जाएँगे। श्वास को नापने के लिए मानसिक गिनती गिनी जाती है। गिनती का उच्चारण जोर से न कर, मन में करना होगा।

अब क्रिया के लिए तैयार हो जाइए। एक से आठ तक मानसिक गिनती गिनते हुए श्वास को बाँयी नाक से अन्दर लीजिए। अनामिका और अंगूठे से नाक के दोनों छेद बन्द कर लीजिए। एक से बत्तीस तक गिनती मन में श्वास रोक कर कीजिए। एक से सोलह तक मन में गिनती गिनते हुए दाहिनी नाक से श्वास बाहर निकालिए। क्रिया यूँ है, श्वास लेना, अन्दर रोकना और छोड़ना। तीनों की गिनती का अनुपात है–8:32:16, याने 1:4:2।

अब दाहिनी नाक से इस क्रिया को शुरू कीजिए। उसी अनुपात में दाहिनी नाक से श्वास अन्दर लीजिए, श्वास अन्दर रोकिए और फिर बाँयी नाक से धीरे-धीरे श्वास बाहर निकाल दीजिए।

इसी प्रकार पाँच-सात बार प्रतिदिन इस क्रिया का अभ्यास कीजिए। इससे नाड़ी-शुद्धि व चित्त की एकाग्रता प्राप्त होती है। चित्त की एकाग्रता के लिए नाड़ी को शुद्ध करना पड़ता है। योग-शास्त्र में इसे 'नाड़ी-शोधन क्रिया' भी कहते हैं। इससे फेफड़ों की भी कसरत होती है।

तृतीय क्रिया

पद्मासन या सिद्धासन में बैठिए। दोनों हाथ मुद्रा में रखिए। आँखें खुली रहेंगी। नाक के दोनों छेदों से बराबर की गिनती में श्वास अन्दर लीजिए। बराबर की मात्रा में दोनों छिद्रों से श्वास बाहर निकालिए। जितनी मात्रा में आप श्वास अन्दर लेवें, उतनी ही मात्रा में श्वास बाहर भी निकालें। चार-चार तक की मात्रा में श्वास अन्दर लेना और चार मात्रा में ही बाहर भी निकालना। इस क्रिया में श्वास को अन्दर नहीं रोकना है। इस क्रिया को अब यूँ करें।

मन में 1, 2, 3, 4 कहते हुए श्वास अन्दर लें। मन में 5, 6, 7, 8 कहते हुए श्वास बाहर निकालें। 9, 10, 11, 12 कहते हुए श्वास अन्दर लें। 13, 14, 15, 16 कहते हुए श्वास निकालें। इसी प्रकार 500 तक की गिनती कहते जाएँ और चार-चार तक की गिनती में श्वास अन्दर लें और बाहर निकालें। 100 की गिनती के बाद 101, 102, 103, 104 इस तरह कहते जाना चाहिए।

200 की गिनती के बाद भी इसी प्रकार 201, 202, 203, 204 कहते जाना चाहिए। इसी प्रकार 500 तक क्रम चलेगा।

एक बात और ध्यान रखें। 248 तक की गिनती तक आप आँखें खुली रखें। बाद में आँखें बन्द करके इस क्रिया को करें। इस क्रिया में आपका पूरा-पूरा ध्यान श्वास की गति और गिनती पर रहना चाहिए। बन्द आँखों से भी आप श्वास की गति और गिनती की क्रिया को देखने की चेष्टा करें।

चतुर्थ क्रिया

अपने ध्यान के आसन व मुद्रा में बैठ जाइए। यह क्रिया तृतीय क्रिया का ही एक दूसरा रूप है। इसमें भी आपकी श्वास और प्रश्वास की गति समान होनी चाहिए। किन्तु गिनती का मानसिक उच्चारण न कर, आप अपने मंत्र का मानसिक उच्चारण कीजिए। मंत्र का चार बार मानसिक उच्चारण अर्थात् जप करते हुए श्वास अन्दर लीजिए। चार बार जप करते हुए श्वास बाहर निकालिए। फिर चार बार मानसिक जप करते हुए श्वास अन्दर लीजिए। इसी प्रकार करते जाइए।

उदाहरणार्थ, यदि आपका मन्त्र 'ॐ नमः शिवाय' है तो इस प्रकार करें। ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, ॐ नमः शिवाय, कहते हुए श्वास अन्दर लें। इसी प्रकार चार बार मन में ॐ नमः शिवाय कहते हुए श्वास बाहर निकालें। इस प्रकार नित्य 10-15 मिनट तक मानसिक जप के साथ प्राणायाम कीजिए। आँखें बराबर बन्द रखें। ध्यान श्वास क्रिया व गिनती पर।

इस क्रिया को 'चतुर्थ प्राणायाम' भी कहा जाता है। चित्त को एकाग्र करने के सभी साधनों में यह श्रेष्ठ है।

पाँचवाँ साधन—अन्तर्मौन

अन्तर्मौन राजयोग की क्रिया है। सब योगों में राजयोग को श्रेष्ठ माना गया है। राजयोग में मन ही मन का अध्ययन करता है। मन से ही मन को वश में लाया जाता है। मन को जीतने के लिए मन को ही साधन बनाया जाता है। मनुष्य के सुख और दुःख का कारण मन और उसकी वृत्तियाँ हैं। मन से ही हमें सब चीजों का ज्ञान और अनुभूति होती है। कोई वस्तु हमें सुन्दर दिखती है, उसका कारण हमारे मन की कल्पना है। कोई वस्तु कुरूप दिखती है, उसका कारण

भी मन की मान्यता है। एक पारखी को कोई वस्तु अमूल्य मालूम पड़ती है। वही वस्तु अज्ञानी के हाथ में पड़कर मिट्टी-तुल्य समझी जाती है। इन दोनों का कारण मन की विभिन्न अवस्थाएँ हैं। केवल दृष्टिगत-ज्ञान के आधार पर मूल्य नहीं बढ़ा-घटा। एक चित्रकार और कवि को गाँव का प्राकृतिक वातावरण सुन्दर दिखता है। लेकिन वहाँ के निवासियों को वहाँ की जमीन और पेड़-पौधे साधारण ही दिखते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे जीवन में मन का विशेष स्थान है। सुख-दु:ख का भान कराने वाला मन ही है।

अन्तर्मौन की क्रिया मन के द्वारा मन को पकड़ने की विधि है। मन से ही मन को कन्ट्रोल करने का प्रयास किया जाता है। यदि मन की गतिविधि को ठीक तरह से समझा जाय तो मन को नियंत्रित करना आसान हो जाता है। राजयोग का अभ्यासी मन से मन का अध्ययन करता है। मन से मन को वश में करने के दो-चार तरीके यहाँ बतलाऊँगी।

प्रथम अभ्यास–विचार दर्शन

सिद्धासन या पद्मासन में बैठ जाइए। दोनों हाथों को ध्यान के लिए निश्चित मुद्रा में रखिए। रीढ़ की हड्डी बिल्कुल सीधी रखिए। आँखें बन्द कर लीजिए। अब मन में आने वाले विचारों पर ध्यान दीजिए। जो विचार आपके मन में आ रहे हों, उन्हें आने दीजिए। आते हुए विचारों को रोकने, हटाने या दबाने का प्रयत्न जरा भी नहीं कीजिए। जो जो विचार आते हों उन्हें आने दीजिए और आप उन विचारों को 'चुपचाप देखते जाइए।' आप अपना सारा ध्यान उन विचारों पर केन्द्रित कीजिए। यह कल्पना कीजिए जैसे आप दर्शक हैं और विचारों को देख रहे हैं। द्रष्टा बनकर विचारों का आना-जाना देखते जाइए। मन के व्यापारों का अध्ययन कीजिए। कैसे मन एक विचार से दूसरे विचार पर, एक घटना से दूसरी घटना पर विचार करता रहता है। कैसे मन बीती हुई घटनाओं को मन में दुहराता है या भविष्य की कल्पनाएँ करता है। एक दर्शक की भाँति आप केवल मन में आने वाले विचारों को देखते जाइए। विचारों को रोकने या हटाने का प्रयत्न छोड़ दीजिए। अपने आपको थोड़ी देर के लिए मन से अलग समझिए। यह कल्पना कीजिए कि आप एक अलग व्यक्ति हैं और मन एक अलग चीज है। आप मन और उसके कार्यों को देखभर रहे हैं।

इस तरह कुछ देर और कुछ दिन के अभ्यास से आप अनुभव करेंगे कि जैसे ही आप मन की गति और विचारों के प्रवाह को देखने लगते हैं, मन की

गति रुकने लग जाती है, मन स्थिर होने लगता है, विचार अपने-आप थमने लगते हैं, विचारों का आना अपने-आप बन्द होने लगता है और मन निश्चल होने लगता है।

इस अभ्यास में आपको विचारों का आना स्वयं नहीं रोकना पड़ता। केवल विचार-दर्शन का अभ्यास करना पड़ता है। मन को वश में लाने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। विचारों के दर्शन का अभ्यास करने से ही मन की गति थमने लगती है।

द्वितीय अभ्यास–विचार-सर्जन

पूर्ववत् आसन लगाकर बैठ जाइए। हाथों को मुद्रा में रख लीजिए। आँखें बन्द रखिए, रीढ़ की हड्डी सीधी रखिए। इतना कर लेने पर अब आप अपने मन में किसी एक विषय का विचार लाइए। घर, ऑफिस, यात्रा, बच्चा–किसी भी वस्तु या घटना का विचार लाइए। 5-7 सेकेण्ड उस विषय पर विचार कीजिए या उसके सम्बन्ध में आने वाले विचार को देखिए।

उस विचार को 5-7 सेकेण्ड के बाद मन से हटा दीजिए। अब दूसरा विचार मन में लाइए किसी अन्य विषय का। कुछ सेकेण्ड उस विचार को देखिए। फिर उसे भी हटा दीजिए। फिर तीसरा विचार मन में लाइए। उसे भी कुछ सेकेण्ड मन में रखिए। उस पर विचार कीजिए और उसे देखिए। फिर इस तीसरे विचार को भी हटा दीजिए। अब चौथा विचार मन में लाइए। इसके साथ भी पूर्ववत् व्यवहार करें। इस प्रकार आप एक-एक विचार मन में लाते जावें और उसे हटाते जावें। विचारों को स्वयं लाना और स्वयं हटा देना। एक-के-बाद-एक विचार मन में पैदा करते जाइए। एक को हटाकर दूसरा लाइए, दूसरे को हटाकर तीसरा, इसी प्रकार विचारों को स्वयं अपनी इच्छा से उत्पन्न कीजिए। इसे ही 'विचार-सर्जन-क्रिया' कहते हैं।

15-20 मिनट इस क्रिया का अभ्यास अवश्य करें। इससे विचारों पर नियंत्रण की शक्ति प्राप्त होती है। स्वेच्छा से आप अपनी विचार-शक्ति को किसी कार्य में लगा सकते हैं। जिन्हें चिन्ता करने की आदत है, उन्हें यह अभ्यास करने से लाभ होगा। विचारों के आप स्वयं स्रष्टा बनते हैं। कुछ दिनों के बाद विचार आपकी इच्छा के विरुद्ध आना छोड़ देंगे। आप मन के इशारे पर नहीं नाचेंगे, वरन् मन आपके इशारों पर चलेगा। आप अपने मन के स्वामी होंगे। फिर आप अपनी मनोशक्ति का मनचाही दिशा या कार्य में प्रयोग कर सकेंगे।

तृतीय अभ्यास–विचार-विसर्जन

पद्मासन या सिद्धासन में बैठिए। भूमिस्पर्श, चिन्मय या किसी भी मुद्रा में हाथ रखिए। आँखें बन्द और रीढ़ की हड्डी सीधी।

अब पहले आप अपना ध्यान मन की ओर ले जाएँ। आपके मन में क्या विचार आ रहे हैं, देखिए। जो-जो विचार आपके मन में आते जाएँ, उन्हें हटाते जाइए। मन में किसी विचार को टिकने का मौका मत दीजिए। विचार आते जावें, आप उन्हें हटाते जाइए। यहाँ विचारों को मन में लाना आपका काम नहीं। आपका काम केवल विचारों को हटाते जाना है। विचार स्वयं आते हैं। उन्हें आने दीजिए। आप केवल विचारों को हटाते जाइए। एक विचार आवे, हटा दीजिए। दूसरा आवे, हटा दीजिए। तीसरा, चौथा, इसी प्रकार जिस क्रम से विचार आते जाएँ, उसी क्रम से आप उन्हें हटाते भी जाइए। आपको न विचारों को आने से रोकना है और न उन्हें लाना ही है। सिर्फ विसर्जन याने हटाते जाना है।

ऐसा कुछ देर अभ्यास कीजिए। इस क्रिया के अभ्यास से विचार रुकते हैं और चित्त शान्त होता है। विचारों का आना कुछ देर बाद बन्द होने लगता है। विचारों के थमने से मन स्थिर और एकाग्र होता है। साधकों और संसारानुरागियों, दोनों के लिए ये क्रियाएँ उपयोगी और लाभदायक हैं। कुछ दिन अभ्यास कर आप स्वयं देखें।

चतुर्थ अभ्यास–निर्विचार अवस्था

ध्यान के आसन और मुद्रा में बैठकर आँखें बन्द कर लें। मन की ओर ध्यान ले जाइए। एक झटके के साथ अपने मन को एक क्षण के लिए विचार-शून्य कर दें। झटका शारीरिक नहीं मानसिक होगा। मन को एक मानसिक झटका देकर एक क्षण के लिए निश्चल कर दीजिए। Sudden mental jerk देकर मन को कुछ क्षणों के लिए विचार-रहित करने की चेष्टा कीजिए। इस अवस्था में मन में कोई भी विचार नहीं रहेगा। इसी तरह बार-बार मन को कुछ इन्टरवल पर निर्विचार याने no-thought की दशा में लाने की चेष्टा कीजिए।

प्रारम्भ में यह क्रिया कुछ अटपटी और कठिन लगेगी। किन्तु प्रथम तीन अभ्यास करने से आप इस क्रिया को भी समझ जाएँगे और कर सकेंगे। इस क्रिया का अभ्यास साधना के बीच या दिन में कार्यों के बीच भी कभी-कभी करते रहें। बीच-बीच में एक झटके के साथ मन को निर्विचार कर देना या मन

को एकदम विचारों से खाली कर देना—यही अन्तर्मौन कहलाता है। यह क्रिया मन को चुप कर देती है, इसीलिए इसे 'इनर साइलेन्स' या अन्तर्मौन कहते हैं, और अन्तर्मौन के साधक को मुनि।

अन्तर्मौन या निर्विचार की सिद्धि होने पर इसी अवस्था में इष्ट का रूप उतारना चाहिए। इस क्रिया के सिद्ध होने पर आप संस्कारों का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं और आकाशीय रिकार्डों को पढ़ सकते हैं।

छठवाँ साधन—अजपा-जप

मन को वश में करने का एक सरल साधन यहाँ बतलाऊँगी। यह साधन सरल तो है ही, साथ ही सब लोग इसका अभ्यास कर सकते हैं। गुरुदेव बराबर साधकों से कहते हैं कि विचारों पर नियन्त्रण तुम बलपूर्वक नहीं प्राप्त कर सकते। उनको धीरे-धीरे नियन्त्रित करना सीखना चाहिए। वे कहते हैं कि यदि तुम विचारों को रोकने में असमर्थ हो, तो पहले उन्हें बदलना सीखो। बुरे विचारों के बदले अच्छे विचार मन में लाओ। पहले विचारों की क्वालिटी को सुधारो। यह हो जाने पर फिर धीरे-धीरे विचारों को कम करो। विचारों को एकदम न रोककर धीरे-धीरे कम करो। विचारों की संख्या और उनके विचरने के क्षेत्र या विषय कम करो। विचारों को minimise करो।

विचारों को कम करने के बाद उन्हें एकाग्र करो। एक विषय पर उन्हें लाओ। और अन्त में उस एक विचार को भी हटा दो। निर्विचार या चित्तवृत्ति के सम्पूर्ण निरोध की अवस्था लाओ। चित्त का इस प्रकार से लय किया जा सकता है।

विचारों को बदलना, कम करना, एक करना और अन्त में निरुद्ध या एकदम समाप्त कर देना—चित्त को एकाग्र और पूर्णत: निरोध में करने का यह संगत तरीका है।

इसके पूर्व विचारों को नियन्त्रित करने के तरीके अन्तर्मौन की साधना में मैंने बतलाये। अब यहाँ पर विचारों को कम व एकाग्र करने का साधन बतलाऊँगी।

मन में विचार इसलिए अधिक आते हैं चूँकि मन खाली रहता है। घर में यदि मनुष्य न रहे तो जानवर और कीड़े-मकोड़े वहाँ स्थान बना लेंगे। मन में यदि सद्‌विचार न रहेंगे तो वहाँ बुरे और निरर्थक विचार आते-जाते रहेंगे। कहा जाता है कि खाली दिमाग शैतान का घर होता है। इसलिए सबसे पहले निरर्थक विचारों को आप मन से निकाल दीजिए। मनुष्य के मन में जितने विचार आते हैं,

उनमें अधिकांश निरर्थक और अनुपयोगी होते हैं। उनका कोई महत्त्व नहीं होता सिवाय इसके कि वह व्यक्ति के मन की गन्दगी को बढ़ाते हैं। अनेक विचार बाहरी घटनाओं की प्रतिक्रिया मात्र होते हैं। उनका उपयोग कुछ नहीं होता।

निरर्थक विचारों को मन में रखने से मन की शक्ति का ह्रास होता है। मानसिक शक्ति का एक अच्छा हिस्सा उन निरर्थक बातों को सोचने में व्यय हो जाता है। इसीलिए मनुष्य को अपनी मानसिक शक्ति में भी इकोनौमी करनी चाहिए। कम खर्च करना चाहिए। उस शक्ति को इस प्रकार बचाकर उपयोगी और स्थायी महत्त्व के विषयों में लगाना चाहिए।

मानसिक शक्ति को बढ़ाने के लिए मन को किसी एक वस्तु या विषय में केंद्रित करने का अभ्यास करना चाहिए। इसका अभ्यास इस प्रकार करना चाहिए। किसी मन्त्र का श्वास के साथ निरन्तर मानसिक जप करते रहने का अभ्यास करना चाहिए। सोऽहं मंत्र का श्वास के साथ जप उत्तम है। उसकी विधि यह है। 'सो' कहते हुए श्वास अन्दर खींचे और 'हं' कहते हुए श्वास को बाहर निकालें। इसी प्रकार श्वास के साथ मन्त्र दुहरायें, अर्थात् जप करें। उच्चारण मुँह से बोलकर नहीं, केवल मन से होना चाहिए।

इस प्रकार श्वास के साथ जप सर्वोत्तम माना जाता है। इस जप का प्रभाव भी शक्तिशाली होता है। योग-शास्त्रों में इस जप की बड़ी महिमा गायी गई है। इसे अजपा-जप कहते हैं। इस जप की सिद्धि से अनेक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। इस प्रकार दिनभर में जीव 21600 जप कर लेता है।

दिनभर प्रत्येक श्वास के साथ आप इस जप को नहीं भी करें तो भी दो समय अवश्य करने का प्रयत्न करें। एक तो साधना व ध्यान में बैठने के पूर्व 15 मिनट इस प्रकार श्वास के साथ जप करके तब ध्यान करें। दूसरा, अवकाश के क्षणों में इस प्रकार जप करने का अभ्यास डालें। आपका मन जब भी खाली हो, आप उपर्युक्त तरीके से जप करें। कभी-कभी ऐसा भी कार्य और समय होता है, जब हम कर्मेन्द्रियों से कार्य करते हैं पर मन खाली रहता है। जैसे स्नान के समय, कपड़े पहनते समय, टहलते समय, ऑफिस जाते समय या एक काम समाप्त कर दूसरे काम में लगने के बीच का समय। इन सब क्षणों को हम अजपा-जप के साधन में लगा कर कई लाभ प्राप्त करते हैं। जो समय फिजूल चिन्तन में व्यतीत होता, उसे बचा लेते हैं। मानसिक शक्ति एकाग्र व सबल होती है। इन्टरवल का पीरियड भी साधना के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है।

खाली समय को मनुष्य सिगरेट पीने, गप्प लगाने और निष्प्रयोजन घूमने में व्यतीत कर देता है। इन क्षणों का भी मनुष्य अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए उपयोग कर सकता है। बहुतेरे अफसर और पदाधिकारी क्लबों में जाकर व्यर्थ की आलोचनाओं, ताश खेलने और निन्दा करने में जीवन व्यतीत कर देते हैं। उसे वे मनबहलाव समझते हैं। पर यह मनबहलाव का healthy और harmless तरीका नहीं है। मैं यह नहीं कहती कि उन्हें रिक्रियेशन याने मनोरंजन नहीं करना चाहिए। पर मेरा अनुभव यह है कि हमारे हिन्दू-धर्म की साधनाओं में बहुत-सी ऐसी सरल योग की क्रियाएँ हैं, जिनसे कम समय में सरलता से मानसिक तनाव और थकावट को दूर किया जा सकता है। ये क्रियाएँ बहुत वैज्ञानिक हैं। साधारण जनता में इनका प्रचार अभी तक इसलिए नहीं हो सका, क्योंकि राजनीतिक परिस्थितियाँ ऐसी थीं जिनमें धर्म और अध्यात्म का प्रचार नहीं किया जा सकता था। यहाँ के धर्म और संस्कृति को नष्ट करने के सैकड़ों प्रयास किए गए, पर इतने झंझावातों को सहकर भी वह आज जीवित है।

मैं यही कहूँगी कि आप अपने खाली क्षणों का सदुपयोग कीजिए। उन्हें अच्छे और रचनात्मक कार्यों में लगाइए। मानसिक शक्ति को व्यर्थ की बातें सोचने में मत खर्च कीजिए। मानसिक जप एक सरल साधन है, जो मन की शक्तियों को बिखरने से रोकता है। निष्प्रयोजन बातों को सोचने से मनुष्य की संकल्पशक्ति कमजोर होती है। जो मनुष्य जितनी अधिक फिजूल की बातें सोचता है, उसकी कर्मशक्ति उतनी ही शिथिल हो जाती है।

मन को बाँधने का सहज तरीका है अजपा-जप का साधन। जिस समय आप कोई कार्य कर रहे हों, उस समय आपका पूरा ध्यान उस कार्य पर रहना चाहिए। परन्तु ज्यों ही आप वह काम समाप्त करें, अपना अजपा-जप चालू कर दें, जब तक दूसरा काम आपके हाथ में न आ जावे। यह इन्टरवल का समय केवल एक मिनट का हो, या दो मिनट का हो, कोई बात नहीं। कम समय हो तो भी जप तो शुरू हो ही जाना चाहिए।

अजपा-जप स्वयं में एक बड़ी शक्तिशाली साधना है। यह साधना यदि पूर्णावस्था को पहुँच जाय तो मनुष्य सिद्ध कहलाता है। वह मनुष्य हर समय अन्तर्मुखी रहता है। इसे सहज-समाधि भी कहते हैं। जिन्हें सफलता की चाह है वे इस साधन का जरूर अभ्यास करें। मन की एकाग्रता की शक्ति का विकास करने का यह सरल साधन है।

चित्त को एकाग्र करने के कई एक उपाय मैंने बतलाए। कुछ और भी बतलाऊँगी। इन सब साधनों से चित्त को एकाग्र और लय करने में आशातीत सफलता मिलती है। अध्यात्म-मार्गी को तो इनका अभ्यास करना ही चाहिए, किन्तु साधारण व्यक्तियों को भी इनसे बहुत फायदा पहुँचेगा। कोई भी व्यक्ति, चाहे वह गृहस्थ हो, व्यवसायी हो, शिक्षक हो, विद्यार्थी हो, डॉक्टर हो या जीवन के किसी क्षेत्र में काम करता हो, इन साधनों से अपनी मानसिक शक्ति का विकास कर सकता है। यह जरूरी नहीं कि वह आस्तिक और धर्मानुरागी हो। नास्तिकों को भी इनसे वही लाभ पहुँचेगा जो आस्तिकों को। ये साधना के अंग ही नहीं, सफलता की कुंजियाँ भी हैं।

सफलता के इच्छुक महत्त्वाकांक्षी व्यक्तियों को इनका अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए। इनमें से एक-दो क्रियाएँ चुनकर उनका अभ्यास करना चाहिए। पन्द्रह मिनट का प्रतिदिन का अभ्यास काफी होगा।

जिनका चित्त हमेशा अशान्त रहता है, जिन्हें हमेशा चिन्ता करने की आदत हो, जिनमें आत्म-विश्वास की कमी हो, जिन्हें नींद न आती हो, जिनका मन हमेशा विक्षिप्त रहता हो, जो अपनी बुरी आदतों को छुड़ाना चाहते हों, उनके लिए ये साधन अत्यन्त उपयोगी और अचूक औषधियाँ हैं।

ये क्रियाएँ आत्म-सुधार की भी साधनाएँ हैं। जिनमें कोई बुरी आदत हो, जिसे वे चाहकर भी न छोड़ पाते हों, वे यदि इन क्रियाओं को करें तो उनकी बुरी आदतें कुछ समय बाद अपने आप छूट जाएँगी। उन्हें छोड़ने के प्रयास की जरूरत नहीं पड़ेगी। यदि आप सुखी बनना चाहते हों तो इन क्रियाओं को व्यवहार में अपनाइए।

इन साधनाओं से मानसिक सन्तुलन प्राप्त होता है जो प्रत्येक के लिए आवश्यक है। जीवन की दौड़ और संघर्ष में वही व्यक्ति जीतता है और जीवित रहता है जो सन्तुलित मस्तिष्क वाला है। यह दुनिया योग्यतमों के लिए वरदान है। सारी प्रकृति और दुनिया के व्यापारों में, राजनीति के क्षेत्र हों या आर्थिक क्षेत्र, सभी जगह हम survival of the fittest का ही सिद्धान्त व्यवहृत होते देखते हैं। इसलिए आप भी अपनी शक्तियों और गुणों का विकास करें। मानसिक शक्ति को बढ़ाने के ये सरल साधन हैं। संसारी और वीतरागी, दोनों को ये साधन सफलता का रास्ता बतलाएँगे।

मानसिक रोगों की संख्या भी दिनोंदिन बढ़ रही है। मानसिक सन्ताप दूर करने के लिए लोग मनोरोग चिकित्सक के पास दौड़ते हैं। वह आपसे अनेक

प्रकार के प्रिय-अप्रिय प्रश्न पूछता है। उससे सरल चिकित्सा है कि आप कुछ योग की क्रियाएँ सीखें और अपने डॉक्टर स्वयं बनें। मनोविज्ञान की खोज अभी अधूरी है। हमारे देश के योगी और ऋषिगण मनोविज्ञान के उच्चतम स्तर से भी ऊँची अवस्था तक पहुँचे हुए थे। उन्होंने अपनी खोजों पर पुस्तकें लिखीं। पर उन अमूल्य ग्रन्थों की रक्षा की व्यवस्था भारतवासियों ने नहीं की। न उस ज्ञान का प्रचार किया, जिससे यह जीवित रह सके। महर्षि पतंजलि के 'योग-दर्शन' में चित्त-विषयक विस्तृत ज्ञान उपलब्ध है।

सातवाँ साधन—बिन्दु धारणा

पद्मासन या सिद्धासन में बैठिए। हाथों को मुद्रा में रखिए। आँखें बन्द कर लीजिए। कल्पना कीजिए कि दोनों भौहों के बीच में एक प्रकाश-पुंज बिन्दु है। इस बिन्दु के ऊपर चित्त को एकाग्र कीजिए। इसके पूर्व आपको मैंने ऐसी साधनाएँ बतलाईं, जिनमें ज्ञानेन्द्रियों के सहारे चित्त को एकाग्र किया जा सकता है। अब कुछ ऐसी साधनाएँ बतला रही हूँ, जिन्हें 'सूक्ष्म साधना' भी कहा जा सकता है।

भ्रूमध्य के बीच, आँखें बन्द कर, बिन्दु को देखने की चेष्टा कीजिए। यदि बिन्दु देखने में कठिनाई हो तो एक गोल चवन्नी लेकर गोंद से भौहों के बीच चिपका लें। फिर जिस जगह चवन्नी की वजह से दबाव या संवेदना की अनुभूति होती हो, वहाँ पर प्रकाश की कल्पना करें।

एक अन्य ढंग से भी बिन्दु-साधना की जा सकती है। भौहों के बीच, थोड़ा-सा ऊपर, पूर्ण-चन्द्रमा का ध्यान करें। पूर्णिमा का चाँद जब कभी आपने देखा हो, उसका ध्यान भ्रूमध्य के बीच करें। बिन्दु-ध्यान की सिद्धि से पूर्वापर का ज्ञान होता है।

बिन्दु-साधना के पूर्व कुछ देर तक यदि 'नासिकाग्र-दृष्टि' का अभ्यास कर लिया जाय तो अच्छा रहेगा।

आठवाँ साधन—पंच तत्त्व धारणा

एकाग्रता के अभ्यास के लिए पंच तत्त्वों पर भी ध्यान करना चाहिए। योग-ग्रन्थों में इसका भी वर्णन मिलता है। तत्त्व पाँच होते हैं—क्षिति, जल, पावक, समीर और गगन। इन तत्त्वों के ऊपर ध्यान करने से मन सूक्ष्म होकर ध्यान के योग्य बनता है। ध्यान के लिए यह आवश्यक होता है कि चित्त की वृत्तियाँ

एक हो जावें। पंच-धारणा के साधन से चित्त-वृत्ति एक व सूक्ष्म होती है। अब एक-एक कर पंच-धारणा के साधनों की विधि सुनिए।

प्रथम–पार्थिवी धारणा

अपने ध्यान के आसन व मुद्रा में बैठ जाइए। नेत्र बन्द कर लीजिए। पृथ्वी-तत्त्व का ध्यान कीजिए। प्रत्येक तत्त्व का एक-एक रंग, आकार व बीज-अक्षर होते हैं। पृथ्वी तत्त्व का रंग पीला व बीज अक्षर 'लं' है। पृथ्वी तत्त्व के ध्यान में आपको धरती की कल्पना करके अपने मन में पृथ्वी की गुरुता का भाव लाना है। आप यह कल्पना करें कि पृथ्वी की तरह आप स्थिर, धीर और भारी हो गए हैं। आपका आसन पृथ्वी पर एकदम दृढ़ हो गया है। आप भूमि पर बैठे हैं और आपका वजन भारी होता चला जा रहा है। कोई भी शक्ति आपको आसन से हटा नहीं सकती। आपका शरीर पृथ्वी पर इस तरह दृढ़ हो गया है, जैसे भारी चट्टान। आपका आसन अचल है। दस-पन्द्रह मिनट नित्य इस प्रकार का ध्यान करिए।

द्वितीय–आम्भसी धारणा

आसन और मुद्रा में बैठकर जल-तत्त्व पर ध्यान कीजिए। जलतत्त्व का रंग श्वेत और बीज अक्षर 'वं' है। ध्यान में आप ऐसा सोचें जैसे आप अनन्त जलराशि के बीच बैठे हैं या लेटे हैं। चारों ओर जल ही जल है। आप उसमें उसी प्रकार तैर रहे हैं, जैसे कमल का पत्ता या नौका रहती है। आपने किसी नदी या समुद्र को देखा हो तो उसके जल की कल्पना करें। अपनी mental eye से visualise करने की चेष्टा करें। अपनी कल्पना के रूप को साकार चित्र देने की कोशिश करें। आप अनुभव करने की कोशिश करें कि जैसे सचमुच ही आप जल की तरंगों के बीच बैठे हैं। लहरें आपसे टकराकर लौट जाती हैं। नीला जल बहुत दूर तक फैला है, इत्यादि, इत्यादि। संक्षेप में जल-तत्त्व का ध्यान आपको करना है।

तृतीय–आग्नेयी धारणा

पहले की ही तरह आसन और मुद्रा। नेत्र बन्द। अब यह ध्यान कीजिए, जैसे आप अग्नि के बीच बैठे हुए हैं। चारों ओर अग्नि की ज्वाला उठ रही है। अग्नि की लपटें आप सचमुच देख रहे हैं। साकार कल्पना कीजिए कि धधकता हुआ

अग्निकुण्ड है और लाल अंगारों पर आप बैठे हैं। वह्नि के आसन में आप बैठ कर ध्यान कर रहे हैं। आग की लपटें आप के शरीर से लिपट रही हैं। वस्त्र जल रहा है पर आपको ताप नहीं लगता। आप शान्त योगी की भाँति बैठे हैं। अग्नि-तत्त्व का रंग सिन्दूरी लाल व बीज अक्षर 'रं' है।

चतुर्थ–वायवी धारणा

आसन और मुद्रा में बैठें। आँखें बन्द कर लें। अब यह भावना करें कि आपके चारों ओर वायु ही वायु है और आपका आसन धीरे-धीरे पृथ्वी से ऊपर उठ रहा है। जैसे वायुयान ऊपर उठ रहा हो, वैसे ही आप भी पृथ्वी छोड़ रहे हैं। आप वायु में धीरे-धीरे ऊपर उठ रहे हैं। वायु ही आपको ऊपर उठा रही है। पहले आप धीरे-धीरे ऊपर उठ रहे हैं। फिर तेजी से आपका आसन वायु को चीरता हुआ ऊपर आसमान की ओर जा रहा है, जैसे वायुवान या तीर तेजी से ऊपर जाता है। अपनी भावना को तीव्र और कल्पना को साकार और सजीव रूप देने की चेष्टा करें। वायु में उड़ने की भावना मन में करते जाएँ।

आप सोचें कि वायु के झूले पर आप बैठे हैं। वह झूला निरन्तर एक ही दिशा में ऊपर उठता जा रहा है। ऊपर, नीचे, चारों ओर वायु ही वायु है, और कुछ नहीं। वायु के वस्त्रों ने आपको चारों ओर से लपेट रखा है। कल्पना करें कि आपका शरीर वायु की भाँति या धुनी हुई रूई की भाँति हल्का हो गया है और होता जा रहा है। वायु आपको निरन्तर ऊपर की ओर उड़ाए चली जा रही है।

यह वायवी धारणा है। वायु-तत्त्व का रंग मटमैला तथा बीज अक्षर 'यं' है।

पंचम–आकाशी धारणा

आसन और मुद्रा में यह भावना करें कि आसमान में उड़ते-उड़ते आप एक जगह जाकर आकाश में स्थिर हो गए हैं। चारों ओर आकाश-तत्त्व है। आपका आसन आकाश में टिका हुआ है। वायु के ऊपर, बादलों के भी पार आप पहुँच गए हैं। जिधर आप देखते हैं, उधर नीले आसमान के अलावा और कुछ भी दिखाई नहीं देता। अनन्त दूरी तक नीला आकाश फैला हुआ है।

किसी सुन्दर संध्या के नीले आकाश की स्मृति अपने मन में लाइए। कल्पना को सजीव करिए कि चारों ओर आकाश ही आकाश है और बीच में आप। इस भाव को मन में देर तक टिकाइए। अन्तश्चक्षु से आकाश के नीले मनोहारी रूप को देखने की चेष्टा कीजिए। पूरे मनोयोग से इस चित्र

को देखिए। वातावरण का दृश्य मानस-पटल पर खींचिए। जितनी सजीवता और यथार्थता ला सकें, लाइए। भावना करिए कि जैसे सचमुच खुली आँखों से आप यह दृश्य देख रहे हैं। आपकी भावना जितनी सजीव होगी, उतना ही चित्त स्थिर और लय होगा।

चित्त को एकाग्र और लय करने के अन्य साधन सुनिए।

नवाँ साधन–स्वप्न

पातंजल-योग के अनुसार स्वप्नों के सहारे भी चित्त को एकाग्रता का अभ्यास कराया जा सकता है। स्वप्न में कोई सुन्दर, प्रकाशपूर्ण या आनन्द देने वाली चीज दिखे तो उसका आप ध्यान करें। पूर्व की भाँति ही आसन व मुद्रा में बैठना आवश्यक है। नेत्र बन्द कर आप किसी स्वप्न का ध्यान करें। स्वप्न में जिस व्यक्ति के दर्शन से आपको आनन्द पहुँचा हो, कोई आनन्ददायक घटना घटी हो या प्रकाशपूर्ण वस्तु दिखी हो, उसका ध्यान करें। यदि किसी महात्मा या देवपुरुष या देवी का दर्शन हुआ हो तो उसका ध्यान करें।

नित्य सुबह बिस्तर से उठते ही आप बैठकर अपने देखे हुए स्वप्न को याद करें और पूरा दुहरायें। यदि हो सके तो स्वप्नों को डायरी में नोट भी करें। इससे चित्त की एकाग्रता बढ़ती है और स्मरण-शक्ति भी तीव्र होती है। स्वप्न-विद्या से पूर्वापर का ज्ञान भी होता है।

दसवाँ साधन–निद्रा

आसन और मुद्रा में बैठें। रीढ़ की हड्डी सीधी रखना न भूलें। नेत्र बन्द रखें। अब आप निद्रा की अनुभूति मन में लाइए। ऐसा अनुभव करने का प्रयास कीजिए, जैसे आपको गहरी नींद आ रही है। जाग्रत-लोक से आप स्वप्नलोक या निद्रा-देश में प्रवेश कर रहे हैं। पलकें भारी हो रही हैं। शरीर का भान छूट रहा है। लेकिन इसमें आपको कुछ सावधानी की भी जरूरत है। निद्रा की अनुभूति करते हुए भी आपको सोना नहीं है। शरीर निद्रा से झुकना नहीं चाहिए। आपका आसन स्थिर और शरीर सीधा रहेगा। इसलिए सावधान! नींद नहीं आनी चाहिए और शरीर का भान भी न रहे।

आप अपनी अनुभूति को सजीव करते जाइए। कल्पना कीजिए कि नींद के बादल आपके ऊपर छा गए हैं। उन्होंने आपको ढँककर दुनिया से बिल्कुल अलग कर दिया है। आप सोए नहीं हैं, पर निद्रा की अनुभूति सजग है।

इस तरह निद्रा पर चित्त एकाग्र करने पर इन्द्रियाँ अन्तर्मुख व मन एकाग्र होता है। यह साधन गुरु के निरीक्षण में सीखा जाय तो सूक्ष्म शरीर के परे भी पहुँचा जा सकता है।

ग्यारहवाँ साधन–वीतराग-ध्यान

योग के ग्रन्थों के अनुसार वीतरागी-व्यक्ति के ध्यान से चित्त एकाग्र और लय को प्राप्त होता है। वीतरागी उन्हें कहते हैं, जिन्होंने चित्त की वृत्तियों को जीतकर आत्म-साक्षात्कार कर लिया हो। जो अपनी इन्द्रियों के स्वामी हों, जो काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेषादि से ऊपर हों, ऐसे वीतरागी पुरुषों का, जो साधु, सन्त और योगी ही होते हैं, ध्यान करने से चित्त का शीघ्र लय होता है। मानव-रूप होने से वह स्मरणीय होता है। किसी भी सन्त-महात्मा पर इस प्रकार ध्यान करना अच्छा है। इसलिए हिन्दू धर्म में गुरु को बहुत महत्त्व दिया गया है। सभी आध्यात्मिक साधनाओं में पहले गुरु का ध्यान करना बतलाया जाता है। जो अध्यात्म-मार्ग में आगे बढ़े और जिन्होंने ज्ञान पाया, उन्होंने गुरु की महिमा गोविन्द से बढ़ कर बतलाई है। तुलसीदास, सूरदास, मीरा, कबीर–सभी ने गुरु को बहुत महत्त्व दिया है।

यह भी सही है कि यदि गुरु में श्रद्धा और भक्ति हो तो उनका ध्यान जल्दी उतरता है। गुरु का ध्यान करना सरल और सहज है। गुरु का रूप देखा हुआ होने से उस पर ध्यान करने में सरलता होती है। यदि भक्ति भरपूर हो तो चित्त का शीघ्र ही लय हो जाता है। इसलिए साधकों को गुरु पर ध्यान करने से सफलता मिलती है। संसार रूपी सागर में गुरु जलयान है, जिसकी मदद से सरलता से यात्रा पूरी की जा सकती है। गुरु पर ध्यान करने से टेलीपैथी के अभ्यास में सरलता रहती है।

बारहवाँ साधन–षट्चक्र-ध्यान

मनुष्य के शरीर के अन्दर कई चक्र हैं, जो षट्चक्र कहे जाते हैं। वैसे तो यौगिक चक्रों का विषय ही अलग हो जाता है, जो कुण्डलिनी-योग कहा जाता है, किन्तु एकाग्रता के साधनों में ये भी आते हैं। हमारे शरीर में नीचे से लेकर भ्रूमध्य तक जो छ: चक्र हैं, उन चक्रों पर भी चित्त को एकाग्रता का अभ्यास कराया जाता है। प्रत्येक चक्र के आधार-देश, आकार, दल, रंग, गुण, अक्षर इत्यादि होते हैं। प्रत्येक चक्र के देवता और देवी शक्तियाँ होती हैं।

इन चक्रों के नाम हैं—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्धाख्य और आज्ञा चक्र। ये चक्र रीढ़ की हड्डी में नीचे से ऊपर तक विभिन्न स्थानों में हैं। रीढ़ के निचले स्थान में मूलाधार, दो अंगुल ऊपर स्वाधिष्ठान, नाभि में मणिपुर, हृदय में अनाहत, कण्ठकूप में विशुद्धाख्य और भ्रूमध्य में आज्ञा चक्र हैं। इनमें से किसी एक चक्र को चुनकर उसके ऊपर ध्यान करना चाहिए। मन को उस स्थान पर ले जाकर अन्त:दृष्टि या अन्तश्चक्षु से उस चक्र को देखने का प्रयास करना चाहिए।

कुण्डलिनी-योग के अभ्यासी इन चक्रों पर ही ध्यान करते हैं। ये चक्र बड़े शक्तिशाली होते हैं। एक-एक चक्र के जागने से एक-एक सिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य के अन्दर एक बहुत बड़ी शक्ति है, जिसे 'कुण्डलिनी शक्ति' कहा जाता है। यह साधारण मनुष्यों में सुप्तावस्था में है। इसे किसी प्रकार जागृत कर दिया जाए तो मनुष्य की शक्तियाँ बहुत बढ़ जाती हैं। इसे अन्त: प्राणायाम के द्वारा भी जगाया जा सकता है। एकाग्रता के इस साधन का अभ्यास गुरु से लेना चाहिए।

तेरहवाँ साधन—पंचेन्द्रिय-ध्यान

पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को भी एकाग्रता का साधन माना गया है। इन्द्रियों और उनके विषय के ध्यान और रस की अनुभूति पर भी चित्त को एकाग्र किया जा सकता है। इन्द्रियों और उनके विषय पर ध्यान करने से मन उस-उस विषय से विरत होकर स्थिर हो जाता है। इन्द्रिय-अनुभूति पर ध्यान करने से इन्द्रियाँ स्वयं विषय से अलग हो जाती हैं और फलत: चित्त लय हो जाता है। इन्द्रिय-ज्ञान तभी तक होता है, जब तक मन का उससे संयोग होता है। मन बहुत चंचल है। इसलिए पहले उसे किसी इन्द्रिय-विशेष पर स्थिर और एकाग्र करने का प्रयत्न किया जाता है। इन्द्रियों की सहायता से वह बहिर्मुख होता है और इन्द्रियों की सहायता से उसे अन्तर्मुख भी किया जा सकता है।

इस प्रकार के ध्यान की विधि यह है कि आँख, नाक, कान, जिह्वा और त्वचा में से किसी एक इन्द्रिय पर मन को ले जाया जाय। पाँचों इन्द्रियों के विषय क्रमश: रूप, गन्ध, शब्द, रस और स्पर्श हैं। जिस इन्द्रिय पर ध्यान किया जाय, उससे प्राप्त होने वाली अनुभूति याने उस स्थल की संवेदनाओं पर मन को एकाग्र कीजिए। उदाहरण के लिए नेत्र को लीजिए। अपने ही नेत्रों का ध्यान कीजिए। नेत्र बन्द होने पर भी नेत्रों से देखने की चेष्टा कीजिए। ऐसा अनुभव कीजिए कि आप वैसे ही देख रहे हैं जैसे खुली आँखों से देखते हैं।

इसी तरह कर्णेन्द्रिय का ध्यान कीजिए। कान के गुण श्रवण-शक्ति पर विचार कीजिए। कानों से जो कुछ सुनाई दे रहा हो, उस पर चित्त को एकाग्र कीजिए। ऐसा करते-करते चित्त लय होने लगता है। मन अन्तर्मुख और एकाग्र हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे मन थम गया है। मन में किसी प्रकार का वेग नहीं रहता। मन चेतन रहता है, लेकिन चेतन होने पर भी निष्क्रिय रहता है। यह नींद की अवस्था नहीं होती। मन जागा रहता है पर सोचता कुछ नहीं।

इसी प्रकार जिह्वा के ऊपर भी ध्यान किया जाता है। जिह्वा के तीन केन्द्रों में ध्यान किया जा सकता है। जिह्वा के अग्र, मूल और मध्य में से किसी एक जगह को केन्द्र बनाकर मन को वहाँ ले जाना चाहिए। वहाँ की संवेदना पर मन को पूरा-पूरा एकाग्र करना चाहिए।

इसी प्रकार नासिका और उससे प्राप्त होने वाली गन्ध और अनुभूति पर ध्यान करना चाहिए। पूरी सच्चाई और गम्भीरता से एकाग्रता का प्रयत्न करने से सफलता मिलती है।

इसी प्रकार त्वचा से स्पर्श और अन्य प्राप्त-अनुभूतियों का ध्यान कर चित्त को एकाग्र किया जा सकता है। त्वचा पर प्राप्त प्रभावों पर मन को ले जाइए। मन से देखिए कि वहाँ आपको त्वचा की इन्द्रिय से कौन-सा संज्ञान प्राप्त हो रहा है। ठण्ढक, गर्मी, कोमलता, शीतलता—क्या-क्या अनुभव हो रहा है।

इस प्रकार इन्द्रियाँ भी योग-प्राप्ति की साधन हैं। इसलिए मैं समझती हूँ कि शरीर एक ऐसा अमूल्य साधन है, जिससे मनुष्य सब प्रकार का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। इसकी रक्षा और देखभाल ठीक ढंग से होनी चाहिए।

अब तक जितनी साधनाएँ बतलाई गईं, जब तक कोई उनका अभ्यास नहीं करेगा, उनका महत्त्व नहीं जान सकेगा। अध्यात्म-मार्ग में जानना याने अध्ययन उतना जरूरी नहीं, जितना कि करना। योग सिद्धि केवल अभ्यास और वैराग्य से मिलती है।

इन क्रियाओं को समझा कर कहने पर कुछ लोगों को ये अभ्यास कठिन मालूम होंगे। बहुत-से लोग ऐसे हैं जो अभी ध्यान करने के लिए तैयार नहीं। एकाग्रता के लिए इस प्रकार प्रयासपूर्ण प्रयत्न के लिए तैयार नहीं। जिनके मन में योग के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति नहीं जगी है और जो इन साधनों को करने में अपनी असमर्थता का अनुभव करते हैं, उनके लिए हिन्दू-धर्म दूसरे सरल साधनों की भी व्यवस्था करता है। ये साधन आकर्षक और मन को अच्छे लगने वाले हैं, जिससे साधारण-से-साधारण मनुष्य की भी उनमें दिलचस्पी

हो जाय। बहुत-से लोग आँख भी बन्द करना नहीं चाहते। आँख बन्द करने में उनका दम घुटने लगता है।

सरल व आकर्षक साधनाएँ

ऐसे सभी लोगों के लिए हिन्दू धर्म जप, संकीर्तन और उपासना की विधि बतलाता है। मौन, उपवास, व्रत इत्यादि भी अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण हैं। वे एकाग्रता के साधन कैसे हैं, यहाँ पर यह बतलाऊँगी।

चौदहवाँ साधन–जपयोग

जप बहुत ही महत्त्वपूर्ण योग है। प्राय: लोग इसका महत्त्व न जानकर अजीब-अजीब धारणाएँ बना लेते हैं। साइकोलोजी में आज इनटेलिजेंस टेस्ट के लिए तरह-तरह के ऐपरेटस बनाकर परीक्षा की जाती है। बच्चों को खिलौनों और चित्रों के माध्यम से विभिन्न प्रकार का ज्ञान कराया जाता है। जनता को शिक्षित करने के लिए रेडियो, सिनेमा और प्रदर्शनी का आधार लिया जाता है। उसी प्रकार माला जपना, याने मंत्र-जप करना भी ऐसी महत्त्वपूर्ण क्रिया है, जिससे मन को सरलता से एकाग्र किया जा सकता है। मन को एकाग्र करने में जप से बड़ी सहायता मिलती है। जप प्रभावशाली होता है। इससे शरीर, मन व आत्मा के बीच मैग्नेटिक लिंक कायम हो जाता है।

इसीलिए सभी धर्मों में किसी-न-किसी रूप में जपमाला को स्थान दिया गया है। मुसलमान भी जप करते हैं। क्रिश्चियन भी रोज़री रखते हैं। ईश्वर के नामस्मरण पर सभी जोर देते हैं।

जप का अर्थ है ईश्वर के नाम का बारम्बार और लगातार स्मरण तथा उच्चारण। जप में मुँह से उच्चारण ही काफी नहीं। इष्ट-स्मरण याने मन का संयोग भी आवश्यक है। जप का अर्थ माला की संख्या पूरी करना ही नहीं। माला पूरा करना भी अच्छा है, क्योंकि उससे मन की दृढ़ता और प्रबल संकल्प-शक्ति प्राप्त होती है। दृढ़ संकल्प-शक्ति भी साधना की आवश्यक शर्त्त है।

वास्तव में जप एक योग है। इसका लक्ष्य जप के माध्यम से योग की अवस्था याने अन्तर्मुख अवस्था को प्राप्त करना है। जप करते-करते मन एकाग्र हो जावे और अन्त में लय भी हो जावे, यही जप का उद्‌देश्य है।

मन की चंचलता से साधक परेशान रहते हैं। मन उन्हें कभी भी स्थिर नहीं रहने देता। ध्यान के समय अन्य विचार आकर साधक को ईश्वर या इष्ट के

ध्यान से विमुख कर देते हैं। सूक्ष्म-ध्यान से मन को बहिर्मुख होने से रोका जाता है, और उसे अन्तर्मुख होने का अभ्यास कराया जाता है। पर यह सब लोगों से नहीं सधता।

मन को नियंत्रित करने में जप बहुत सहायक होता है, क्योंकि शरीर आसन में बँध जाता है। हाथ माला जपने में, उंगलियाँ मनकों को फेरने में, जिह्वा मन्त्र या नाम के उच्चारण में और कान जप की ध्वनि सुनने में व्यस्त तथा नेत्र प्रभु के रूप को निहारने में मस्त! फिर किसी इन्द्रिय को फुरसत कहाँ कि वह अन्य बातों की ओर ध्यान दे। मन की सारी शक्ति जपने, बोलने, सुनने और देखने में लगी रहती है। फिर वह उछल-कूद करे तो कैसे?

मन की गति जानवर की तरह है। पहले तो वह भागने के लिए बड़ी उछल-कूद मचाता है। किन्तु जब बार-बार पकड़ कर उसे काम में जोत दिया जाता है तो धीरे-धीरे वह काम का अभ्यस्त होकर उछल-कूद भूल जाता है। बालक के हाथ से कोई वस्तु लेने के लिए माँ उसे खिलौने पकड़ा देती है। बालक खिलौने में रमकर वस्तु की याद भूल जाता है। इसी तरह मन को भी बाहर से अन्दर ले जाने के लिए यह सरल उपाय है कि मन को जप, श्रवण और दर्शन में व्यस्त रखा जाय। अनेक वस्तुओं के पीछे दौड़ने के बदले तीन-चार वस्तुओं में रमने के लिए उसे बाध्य किया जाय। जप से मन के रमण के क्षेत्र सीमित हो जाते हैं, और उनके काम निश्चित कर दिए जाते हैं।

जप करने के विविध ढंग

जप करने के अनेक तरीके होते हैं, जैसे माला पर जप, त्राटक में जप, ताल के साथ जप, तानपूरे में जप, इष्ट-मूर्ति देखते हुए जप, पूजा के यन्त्र को उलटते और देखते हुए जप, मन्त्र के मानसिक स्पन्दनों पर ध्यान-सहित जप, नगाड़े पर जप, घनघनाने वाली घंटी पर जप, घड़ी की आवाज के साथ जप, शरीर के यौगिक चक्रों पर ध्यान के साथ जप, यौगिक चक्रों के दलों और अक्षरों पर जप। प्राणायाम या श्वास-क्रियाओं के साथ भी जप किया जाता है। जैसे कुम्भक में जप, रेचक और पूरक के साथ जप, चतुर्थ-प्राणायाम में जप, इत्यादि। योगासनों के साथ भी जप किया जाता है।

जप एकाग्रता का एक उत्तम साधन है। मन्त्र के अनुष्ठान व पुरश्चरण भी किए जाते हैं, जिनका प्रभाव बहुत अधिक होता है। चित्त की चंचलता को शान्त करने में जप बहुत सहायक होता है।

हिन्दू धर्म में साधनाओं की कमी नहीं। हर विचार, स्वभाव, वृत्ति वाले इसमें शान्ति का मार्ग पा सकते हैं। हिन्दू धर्म यह कभी नहीं कहता कि केवल एक यही मार्ग है, अन्य नहीं। ईश्वर-प्राप्ति के वह अनेक मार्ग और साधन बतलाता है। जीवन के सर्वांगीण पहलुओं का अध्ययन कर हिन्दू धर्म शान्ति और आनन्द का मार्ग बतलाता है। जो मार्ग जिसे रुचिकर लगे, वह उसी मार्ग से परम-ज्ञान की अवस्था प्राप्त कर सकता है।

जप के तीन प्रकार

जप के तीन प्रकार होते हैं—बैखरी, उपांशु और मानसिक। बैखरी वह जप है, जिसमें मन्त्र का उच्चारण मुँह से बोलकर जोर-जोर से श्रवण-योग्य आवाज में किया जाता है। दूसरा प्रकार है उपांशु। इसमें जप की आवाज जोर से नहीं होती। फुसफुसाहट याने whisper में यह जप किया जाता है। तीसरा जप है मानसिक। इस जप में मन्त्र का केवल मानसिक उच्चारण किया जाता है। इस जप में न तो मुँह से आवाज निकलती है और न जिह्वा से ही उच्चारण की चेष्टा की जाती है। जिस प्रकार मन में विचार आते हैं या मानसिक वार्तालाप किया जाता है, उसी प्रकार मन्त्र का मानसिक उच्चारण होता है। इसे मानसिक जप कहते हैं।

जप करने का तरीका इस प्रकार है। पहले बैखरी में जोर-जोर से बोलकर जप कीजिए। तत्पश्चात् बहुत धीमी आवाज में, जिसे कोई सुन भी न सके, जप कीजिए। यह फुसफुसाहट की आवाज में जप होगा। इसके बाद आप मानसिक जप कीजिए। तीनों प्रकार की जप की संख्या एक निश्चित अनुपात में होनी चाहिए। यदि बैखरी में आप तीन माला जप करें तो उपांशु में दो और मानसिक में एक।

पन्द्रहवाँ साधन—संकीर्तन

चित्त को एकाग्र करने का एक मनोरंजक साधन है—संकीर्तन। संकीर्तन का अर्थ है प्रभु की कीर्ति को या नाम को भाव के साथ प्रेमपूर्वक गाना। बहुतों को आसन, प्राणायाम, धारणा और ध्यान रुचिकर नहीं मालूम होते। पर संगीत ऐसी वस्तु है, जिसे मनुष्य क्या, पशु-पक्षी और वनस्पति वर्ग भी पसन्द करते और प्रभावित होते हैं। संगीत में मोहिनी-शक्ति है। नासमझ बच्चे भी संगीत-प्रेमी होते हैं।

संगीत भी साधना का एक रूप है। भाव के साथ भगवन्नाम का भजन करने से चित्त स्वाभाविक रूप से एकाग्र और लय होता है। संकीर्तन का भी वही महत्त्व है जो जप का। इसमें भी जिह्वा गाने में, कर्ण सुनने में, मन भजन के भाव में और हाथ ताल या मंजीरा या अन्य बजाने में तल्लीन हो जाते हैं।

यदि भाव के साथ भजन किया जाय तो संकीर्तन से भी वही समाधि की अवस्था प्राप्त होगी, जो योगियों को प्राणायाम, धारणा और ध्यान से होती है। यौगिक क्रियाओं में संकीर्तन योग सर्वश्रेष्ठ है।

सोलहवाँ साधन–उपासना

उपासना भी चित्त को एकाग्र करती है, बशर्ते उसे भाव और भक्ति के साथ किया जाय। यदि इष्ट की मूर्ति में प्रेम का भाव हो, यदि भक्त सचमुच उसे अपने इष्ट का पार्थिव रूप मानता हो, यदि मूर्ति में उसे अपने प्रिय की छाया दिखती हो, और प्रभु की सर्वव्यापकता में उसे अटल विश्वास हो, तो उपासना और अर्चना से भी उसे अभीष्ट की प्राप्ति होगी और वह योग की उच्च अवस्था को प्राप्त करेगा। चित्त की चंचलता को रोकने और मन को ईश्वर की ओर लगाने का यह सरल और मधुर साधन है। अपनी सारी भावना को इष्ट पर केन्द्रित करने का इससे उत्तम और आकर्षक साधन अन्य नहीं।

उपासना में भक्त अपनी सारी इच्छाओं को इष्ट के चरणों में समर्पित कर देता है। हर घटना और कर्म को अपने इष्ट की इच्छा समझ कर उस पर न प्रसन्न होता है और न रोष प्रकट करता है। भावुक और भक्ति-प्रधान स्वभाव वाले व्यक्तियों के लिए उपासना का मार्ग सर्वोत्तम है। साधना के अन्य साधन उपासना-मार्ग की तुलना में नीरस हैं। कुछ साधन ऐसे हैं जो बुद्धिवादी को अपील करते हैं, पर भावुक और हृदय-प्रधान व्यक्ति को आकर्षित नहीं करते।

अत: जिन व्यक्तियों में बुद्धि की अपेक्षा हृदय ही अधिक प्रधान है, भाव-पक्ष अधिक है, जिनमें सौन्दर्य और मधुरता के प्रति आकर्षण है, उनके लिए उपासना द्वारा योग की अवस्था प्राप्त करना ही निश्चित मार्ग है, ऐसा समझना चाहिए। बुद्धि की अपेक्षा भाव या हृदय के प्रधान होने का यह अर्थ नहीं होता कि वह मनुष्य बुद्धिहीन है या वह अन्य मनुष्यों की अपेक्षा कम बुद्धिमान् है। जिनके स्वभाव में भक्ति और प्रेम अधिक है, वे उपासना-मार्ग से आगे बढ़ सकते हैं। भक्ति की चरमावस्था में चित्त का एकदम लय हो जायेगा।

गृहस्थों के लिए, जिन्हें हरदम कोई-न-कोई चिन्ता लगी रहती है, उपासना का मार्ग सरल है। गृहस्थी में कुछ-न-कुछ कमी हमेशा रहती है। अभाव का नाम ही है गृहस्थाश्रम। यदि अभाव की भावना बिल्कुल मिट जाय तो मनुष्य गृहस्थाश्रम में रहकर भी योगी हो जाता है। गृहस्थ को सारी कठिनाइयों के बीच उपासना करने में दिक्कत नहीं होगी, लेकिन ध्यान-योग का अवलम्बन करने में जरूर कठिनाई होगी। आँख बन्द कर वह ध्यान नहीं कर सकेगा। किन्तु इष्ट को स्नान कराना, वस्त्र पहनाना, चन्दन लगाना, धूप दिखाना, भोग लगाना, आरती करना—इन सब क्रियाओं को करने से ही धीरे-धीरे उसका चित्त एकाग्र होने लगता है। ये क्रियाएँ ही उसका चित्त एकाग्र करने का साधन बन जाती हैं।

जितनी देर भक्त अपने इष्ट के लिए यह कार्य करता रहता है, उतनी देर उसका चित्त इष्ट की ओर ही लगा रहता है। एक तरफ वह उतनी देर तक के लिए गृहस्थी की चिन्ताओं से अलग हट जाता है और दूसरी ओर उपासना-क्रिया के बीच इष्ट का उसे निरन्तर चिन्तन होता रहता है। नित्य समय पर भोग, आरती, शयन इत्यादि कराने से उसे दिनभर और काम के बीच भी इष्ट-चेतना बनी रहती है। हर झंझट और दु:ख के बीच भी नियमपूर्वक नित्य प्रभु की उपासना करने से उसकी वासनाएँ एकाग्र हो जाती हैं। इसीलिए हिन्दू-धर्म में उपासना भी भगवत्-प्राप्ति का साधन माना जाता है।

सत्रहवाँ साधन—मौन और उपवास

हिन्दू धर्म की साधनाओं में अध्यात्म-मार्गी को मौन रखना और अनेक धर्म-पर्वों पर उपवास रखना बतलाया जाता है। मौन और उपवास से अनेक लाभ तो होते ही हैं, किन्तु उनसे चित्त की एकाग्रता भी प्राप्त होती है। मौन धारण से मन की शक्ति बढ़ती है। मौन रहकर मनुष्य को अपना समय जप, स्वाध्याय और साधना में लगाना चाहिए। मौन रहने से वाणी पर कन्ट्रोल प्राप्त होता है और वाणी के कन्ट्रोल से मन का कन्ट्रोल। चुप रहने से मन बहुत-से विषयों में प्रवृत्त होने वाली अपनी मानसिक शक्ति को व्यय होने से रोकता है। मन ही सबका डाइरेक्टर है। जब मन किसी वस्तु में जाता है, तभी तत्सम्बन्धी इन्द्रियाँ भी कर्म में प्रवृत्त होती हैं। इसी प्रकार उपवास करने से भी मन का नियन्त्रण होता है। उपवास से मन की दृढ़ता और शक्ति, दोनों बढ़ती हैं।

एकाग्रता पर अपने प्रवचनों को समाप्त करने से पहले मैं सूर्यनमस्कार के विषय पर कुछ प्रकाश डाल देना चाहती हूँ।

सूर्य नमस्कार

मनुष्यों को अपने जीवन में कुछ नियम और सिद्धान्त बरतने चाहिए। जो मनुष्य जीवन में कुछ सिद्धान्तों का पालन भी करता है, साथ ही एक खुले दिमाग से दुनिया की सब चीजों का मूल्यांकन करता और हर समय का, हर क्षण का सदुपयोग करने की चेष्टा करता रहता है, वह जीवन में अन्य लोगों की अपेक्षा अधिक सुखी और पूर्ण होता है। जीवन में कुछ आदर्श और कुछ नियम जरूर होने चाहिए। यह आवश्यक नहीं कि मनुष्य एक ही नियम या सिद्धान्त का पालन जीवन भर करता रहे। यदि कुछ दिनों के व्यवहार और प्रयोग के बाद वह यह समझे कि अब उन सिद्धान्तों से चिपकने से कोई लाभ नहीं और उन सिद्धान्तों के अनुभव और ज्ञान उसे प्राप्त हो चुके हैं तो वह नए सिद्धान्तों की खोज में आगे बढ़ सकता है।

एक मूर्तिकार एक पत्थर हाथ में लेता है। उसे तराशते-तराशते एक ऐसा रूप देना चाहता है, जिसकी कल्पना उसके मन में रहती है। एक विशेष रूप देने के लिए वह पत्थर से उस भाग को अलग करता जाता है, जिसकी उसे आवश्यकता नहीं होती। जो भाग उसकी दृष्टि से उसकी मूर्ति की सुन्दरता के लिए आवश्यक है, वह उसे रख कर बाकी भाग को निकाल देता है।

मनुष्य का जीवन उसके हाथ में एक पत्थर है। मनुष्य स्वयं उसका शिल्पी है। वह अपने जीवन को जैसा चाहे, वैसा बना सकता है। लेकिन अधिकांश मनुष्य अपने जीवन को इस दृष्टिकोण से नहीं लेते। यदि वे चाहें तो अपने जीवन को वैसा ही सुन्दर, सुखी और पूर्ण बना सकते हैं, जैसा कि एक शिल्पी अपनी मूर्ति को बनाना चाहता है और बना सकता है।

अब आप यह प्रश्न करेंगे कि जीवन को सुन्दर कैसे बनाया जाय। तो मैं आपसे यही कहूँगी कि आदर्श क्या है यह तो सभी जानते हैं, पर उसका जीवन में व्यवहार नहीं करते। जीवन कैसे सुन्दर बन सकता है, इस पर चर्चा तो बहुत कर सकते हैं, पर जीवन को अच्छा बनाने के लिए कोई कदम नहीं उठा सकते। इसलिए मैं यही सलाह दूँगी कि आप पहले अपने जीवन को उन्नत बनाने के लिए एक निश्चय कीजिए। और एक व्रत लीजिए।

यदि आपने निश्चय कर लिया तो पहले किसी एक नियम के पालन का व्रत लीजिए और वह है कि प्रतिदिन आप सूर्य-नमस्कार करें। सिर्फ एक इसी नियम का संस्कार अपने जीवन में आप डाल लें तो आपको बहुआयामी लाभ होगा।

सूर्य-नमस्कार का अभ्यास आज हजारों लोग कर रहे हैं और सबका यही अनुभव है कि इससे बढ़ कर कोई अन्य स्वास्थ्यवर्द्धक साधन नहीं। शारीरिक स्वास्थ्य के लिए यह अचूक है।

सूर्य की किरणें हमारे स्वास्थ्य और जीवन के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इस भूमण्डल के प्रत्येक जीव को सूर्य जीवन देता है। वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य—सभी के लिए सूर्य की किरणें अत्यन्त आवश्यक और जीवनदायिनी हैं। इसी कारण हिन्दू सूर्य को एक ग्रह मात्र नहीं, वरन् ईश्वर या देवता मानते हैं। अनेक पर्वों और त्यौहारों के बहाने सूर्य की उपासना, सूर्यदर्शन इत्यादि को महत्त्व देते हैं। इतवार का व्रत, छठ का व्रत और गायत्री-उपासना जैसे बहुत-से व्रत हैं, जो सूर्य की उपासना के रूप में किए जाते हैं। हर पूजा में सब देवताओं के साथ सूर्यदेव की पूजा का ध्यान रखा गया है।

सूर्य की किरणों में रोग के कीटाणुओं को नष्ट करने की क्षमता होती है। सूर्य में सभी वस्तुओं को पुष्ट करने की शक्ति होती है। सूर्य में विकास और प्रगति की शक्ति है। सूर्य में गन्दी और दूषित वस्तुओं को जलाने की शक्ति है। सूर्य की प्रात:कालीन किरणों में अल्ट्रावायलेट किरणें होती हैं। सूर्य की किरणें जब पानी से छन कर आती हैं तो उनमें नेत्रों को आनन्द देने वाली शक्ति होती है, अत: सूर्य की किरणें नेत्रों की ज्योति बढ़ाती हैं, फेफड़ों और हृदय को स्वस्थ करती हैं। सूर्य की किरणों का लिवर, स्प्लीन और आमाशय पर भी स्वास्थ्यकारी प्रभाव पड़ता है। चर्म-रोगों में सूर्य-किरणें अमित उपकारी होती हैं। सूर्य-किरणों का विज्ञान ही अलग है। इस पर अनेक और बड़े-बड़े प्रयोग किए जा रहे हैं। सूर्य-किरणों से खाना बनाने, मशीन चलाने, लिखने व स्क्रिप्ट पढ़ने के प्रयोग हो रहे हैं।

अभी तक आपको मैंने मन को एकाग्र करने के अनेक वैज्ञानिक, सरल, आकर्षक और व्यावहारिक तरीके बतलाए। कोई भी व्यक्ति इनमें से किसी एक साधन का अभ्यास कर चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर सकता है। अब आपको एक ऐसी महत्त्वपूर्ण क्रिया बतलाऊँगी, जिससे आपको न केवल मानसिक बल की प्राप्ति होगी, वरन् शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति भी साथ-साथ प्राप्त होगी। अब तक बतलाई गई कई-एक साधनाओं का सम्मिश्रण इस क्रिया में आप पायेंगे।

यह क्रिया है सूर्य नमस्कार। सूर्य नमस्कार में एक नहीं, अनेक गुण हैं। यह शरीर का व्यायाम और आसन की बारह मुद्राओं का संकलन है। इससे

शरीर की मांसपेशियाँ सबल होती हैं, रक्त-संचालन तीव्र होता है, शरीर के अन्दर के अवयव पुष्ट होते हैं, स्नायु-बल प्राप्त होता है और ग्रन्थियाँ पुष्ट होती हैं। सूर्य की किरणों से शरीर में स्वास्थ्य-वर्द्धन और कीटाणुओं का नाश होता है। सूर्य की किरणों से मनुष्य को प्राण-शक्ति और विद्युत-तरंगें प्राप्त होती हैं, जो जीवन और स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं। केवल सूर्य नमस्कार करने से आपको सब आसनों के करने का फायदा, प्राणायाम का फायदा, उपासना का फायदा और भगवन्नाम की महिमा का फायदा पहुँच सकता है। यदि आप बहुत-से आसनों, मुद्राओं, प्राणायामों और जप के फेरे में न पड़ना चाहते हों तो मेरी केवल एक बात पकड़ लीजिए। वह है नित्य सूर्योदय के समय सूर्य-देव के सामने खड़े होकर यथोचित विधि से नमस्कार कीजिए।

सूर्य इस जगत् का आत्मा कहा जाता है– *'सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च'*। सूर्य सृष्टि के सभी प्राणियों के लिए आवश्यक है। नित्य सुबह नहा-धोकर आप सूर्य के सामने खड़े होकर सूर्य-देवता की स्तुति करते हुए लोटे से जल प्रदान करें। जल इस प्रकार गिरावें कि गिरते हुए जल से सूर्य-किरणें छनकर आपके हृदय पर पड़ती रहें। ये किरणें अत्यन्त गुणकारी हैं। इनमें अल्ट्रावायलेट किरणें होती हैं। सूर्य-चिकित्सा अन्य चिकित्सा-विज्ञानों की तरह एक अलग विज्ञान है। सूर्य-रश्मियों का सही उपयोग जीवन को बना सकता है और गलत प्रयोग नष्ट भी कर सकता है। आतशी शीशे पर सूर्य-किरणें केन्द्रित करने से वस्तु जलने लगती है। यदि यह नेत्र के कोमल बिन्दु पर पड़ जाय तो दृष्टि चली भी जाती है।

सूर्य-किरणों में शरीर को स्नान कराने से त्वचा के रोग नहीं होते। अन्य लाभ तो हैं ही। भारत में सूर्य को देवता मानते हैं। सूर्य के अनेक व्रत और पर्व होते हैं। इन सभी के पीछे वैज्ञानिक दृष्टिकोण है। हमारे पूर्वजों ने सूर्य की बहुत महिमा गाई है। ऋग्वेद में सूर्य-देव की अनेक स्तुतियाँ लिखी हुई हैं।

अत: सूर्य की उपासना प्रत्येक व्यक्ति को करनी चाहिए। स्वास्थ्य और मंगल चाहने वालों को नित्यप्रति उठकर शौचादि से निवृत्त हो, नहा-धोकर ठीक सूर्योदय के समय सूर्य नमस्कार करना चाहिए। अब आपके सामने सूर्य नमस्कार की पूरी विधि दिखलाई जाएगी। साथ-साथ सूर्य नमस्कार की सम्पूर्ण विधि सविस्तार मैं समझाती जाऊँगी। अब आप ध्यान से देखें व सुनें।

सूर्य नमस्कार करते समय बदन पर गेरू में रंगे हल्के कपड़े रहने चाहिए ताकि सूर्य की किरणें उससे छन कर सीधे आपके बदन पर पड़ सकें। एक

कम्बल लम्बाई में बिछा लीजिए। अब सूर्य की ओर मुख करके कम्बल पर खड़े होइए। पहले सूर्य देव की दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार स्तुति कीजिए–

ॐ आसत्येन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्मयेन सविता रथेनाऽऽ देवो याति भुवना विपश्यन्॥
उद्वयं तमसस्परि पश्यन्तो ज्योतिरुत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम्॥

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतव:।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुमित्रस्य वरुणस्याग्ने:।
आप्रा द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

ॐ सूर्यं सुन्दरलोकनाथममृतं वेदान्तसारं शिवम्।
ज्ञान ब्रह्ममयं सुरेशममलं लोकैकचित्तस्वयम्॥
इन्द्रादित्यं नराधिपं सुरगुरुं त्रैलोक्यचूडामणिम्।
ब्रह्माविष्णुशिवस्वरूपहृदयं वन्दे सदा भास्करम्॥

आदित्यस्य नमस्कारान् ये कुर्वन्ति दिने दिने।
जन्मान्तरसहस्त्रेषु दारिद्र्यं नोपजायते॥
नमो धर्मविधानाय नमस्ते कृतसाक्षिणे।
नम: प्रत्यक्षदेवाय भास्कराय नमो नम:॥

अकालमृत्युहरणं सर्वव्याधिविनाशनम्।
सूर्यपादोदकं तीर्थं जठरे धारयाम्यहम्॥

सूर्य की इस प्रकार स्तुति कर लेने के बाद अब सूर्य-नमस्कार के लिए तैयार हो जाइए। आपको मालूम है कि 12 मुद्राओं के संकलन से सूर्य नमस्कार सम्पन्न होता है। प्रत्येक मुद्रा आसन की एक अवस्था होती है।

सूर्य-स्तुति के बाद इन बारह मन्त्रों का उच्चारण कीजिए–1. ॐ मित्राय नम: 2.ॐ रवये नम: 3.ॐ सूर्याय नम: 4.ॐ भानवे नम: 5.ॐ खगाय नम:

6. ॐ पूष्णे नमः 7. ॐ हिरण्यगर्भाय नमः 8. ॐ मरीचये नमः 9. ॐ सवित्रे नमः 10. ॐ आदित्याय नमः 11. ॐ अर्काय नमः 12. ॐ भास्कराय नमः

सूर्य नमस्कार में आसनों का क्रम इस प्रकार है–

1. सर्वप्रथम सूर्याभिमुख होकर दोनों हाथ जोड़कर छाती पर रखें। सीधे खड़े रहें। श्वास रोककर इस मन्त्र का उच्चारण करें– ॐ मित्राय नमः।
2. दोनों हाथों को ऊपर उठाइए। सिर बीच में और दोनों हाथ एक दूसरे के समानान्तर रहें। हथेलियों का रुख सूर्य की ओर रहे। थोड़ा-सा हाथों को पीछे ले जाकर छाती तान लीजिए। आँखें बन्द रखिए। हाथों को ऊपर ले जाते समय श्वास अन्दर खींचिए। द्वितीय मन्त्र का भाव के साथ मानसिक उच्चारण कीजिए– ॐ रवये नमः।
3. श्वास को बाहर निकालते हुए दोनों हाथों को पृथ्वी की ओर ले जाइए। सिर, धड़ और कमर झुकाइए। हथेलियाँ जमीन को छू लें। दोनों पैरों के घुटने मुड़ने नहीं चाहिए। सिर को यथाशक्ति घुटनों से सटा लीजिए। तृतीय मन्त्र का मानसिक उच्चारण कीजिए– ॐ सूर्याय नमः।
4. श्वास को अन्दर खींचते हुए चौथी अवस्था में इस प्रकार आइए। बाएँ पैर को पीछे की ओर फेंकिए। बायें पैर का पंजा और घुटना जमीन को छूता रहेगा। दाहिना घुटना मोड़ कर पंजे पर बैठिए। दोनों हथेलियाँ जमीन पर रहेंगी। कमर को दाहिने घुटने पर दबाइए और छाती को आगे तानिए। सिर को थोड़ा पीछे ले जाकर मुख को सूर्य की ओर रखिए। नेत्र बन्द रखिए। चतुर्थ मन्त्र का उच्चारण कीजिए– ॐ भानवे नमः।
5. चौथे आसन में जैसे आप बाएँ पैर को पीछे ले गए थे, उसी प्रकार दाहिने पैर को भी उस पैर के समानान्तर पीछे ले जाइए। कमर का भाग ऊपर उठा हुआ रहेगा। दोनों हथेलियाँ जमीन पर रहेंगी। सिर दोनों हाथों के बीच में रहेगा। अब दोनों हाथ तने हुए, दोनों पैर तने हुए दोनों पंजों पर, और कमर का भाग ऊपर रहेगा। शरीर की पूरी आकृति पृथ्वी पर एक त्रिकोण बनाते हुए रहेगी। दण्ड व्यायाम की पूर्वावस्था की भाँति श्वास बाहर छोड़िए। मन्त्रोच्चारण कीजिए– ॐ खगाय नमः।
6. केहुनियों पर से हाथ मोड़ते हुए पूरे शरीर को पृथ्वी पर लाइए। जमीन पर शरीर का वजन दोनों हथेलियों, माथा, छाती, घुटनों और पंजों पर रहेगा। बाकी भाग जमीन से अछूता रहेगा, यह याद रखें। यह मुद्रा साष्टांग प्रणाम की तरह होती है, जिसमें शरीर के केवल आठ अंग जमीन का

स्पर्श करते हैं। इस अवस्था में श्वास को अन्दर खींचकर कुछ सेकेण्ड रोक कर निकाल दीजिए। मानसिक उच्चारण कीजिए– ॐ पूष्णे नमः।

7. सिर और धड़ को पृथ्वी पर से उठाइए। केहुनियाँ आधी सीधी कर लीजिए। सिर को पीछे ले जाते हुए धड़ को कमान की तरह झुकाइए। आँखें बन्द रखिए। श्वास अन्दर खींचिए। यह स्थिति भुजंगासन की तरह होगी। सातवें मन्त्र का उच्चारण कीजिए– ॐ हिरण्यगर्भाय नमः।
8. दोनों हथेलियों और पैरों के दोनों पंजों को यथास्थान रखते हुए, उन पर बल देकर कमर को ऊपर उठा लीजिए। नम्बर पाँच में आपने जो स्थिति ली थी, वही ले लीजिए। सिर दोनों हाथों के बीच में रहेगा। इस अवस्था में आकर श्वास छोड़ दीजिए। आठवाँ मन्त्र मन में बोलिए– ॐ मरीचये नमः।
9. दाहिने पैर को आगे बढ़ाकर घुटना मोड़ कर, दाहिने पंजे के बल बैठ जाइए। बाँया पैर सीधा पीछे ही रहेगा। दोनों हाथ सीधे और हथेलियाँ जमीन पर रहेंगी। छाती तानिए, सिर पीछे ले जाइए। श्वास अन्दर खींचिए और मन्त्रोच्चारण कीजिए– ॐ आदित्याय नमः।
10. बाँया पैर जो पीछे है उसे भी उठाते हुए दाहिने पैर की बराबरी में लाकर झुकी हुई अवस्था में खड़े हो जाइए। दोनों हथेलियाँ जमीन को छूती हुई रहेंगी। सिर घुटनों से यथाशक्ति सटा रहेगा। घुटने बिल्कुल सीधे रहेंगे। यह नम्बर तीन वाली मुद्रा है। इसमें श्वास बाहर छोड़ दीजिए और उच्चारण कीजिए– ॐ सवित्रे नमः।
11. दोनों हाथों को ऊपर उठाते हुए सीधे खड़े हो जाइए। दोनों हाथ सिर के ऊपर समानान्तर रहेंगे। हथेलियों का रुख सूर्य की ओर। उठते हुए श्वास अन्दर खींचिए। यह अवस्था नम्बर दो की भाँति है। नेत्र बन्द रखें और ग्यारहवें मन्त्र का मानस-उच्चारण करें– ॐ अर्काय नमः।
12. दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार की मुद्रा में छाती पर रखें। बदन सीधा रहे। आँखें बन्द सिर थोड़ा-सा पीछे की ओर रहे, जिससे सूर्य-किरणें अच्छी तरह छाती व अन्य अंगों पर पड़ें। श्वास छोड़िए और अन्तिम बारहवें मन्त्र का मानसिक उच्चारण कीजिए– ॐ भास्कराय नमः।

यह सूर्य नमस्कार का एक राउण्ड हुआ। एक बात ध्यान में रखें कि प्रथम बार क्रिया नम्बर चार और नौ में आपने बराबर बाएँ पैर को पीछे रखा था और दाहिने पैर को आगे रख, घुटने मोड़ कर उस पर बैठे थे। अब जब आप सूर्य नमस्कार का दूसरा राउण्ड करेंगे तो नम्बर 4 और नम्बर 9 में दाहिने पैर को

पीछे फैलायेंगे और बायें पैर के घुटने को आगे मोड़ कर बैठेंगे। इसमें सिर्फ यही याद रखने की बात है।

आरम्भ में कम-से-कम दो राउण्ड सूर्य नमस्कार करना चाहिए, लेकिन इसकी संख्या धीरे-धीरे प्रतिदिन बढ़ाते जानी चाहिए। अच्छे स्वास्थ्य के लिए 20-22 नमस्कार काफी होंगे। प्रत्येक व्यक्ति को अपने स्वास्थ्य और शक्ति को देखते हुए कम-से-कम संख्या में शुरू करना चाहिए और अपनी सुविधानुसार धीरे-धीरे बढ़ाना चाहिए।

व्यायाम के रूप में सन्ध्या समय भी सूर्य नमस्कार का अभ्यास किया जा सकता है। जाड़ों में संख्या और भी बढ़ाई जा सकती है। अब आप स्वयं सूर्य नमस्कार करना आज से ही प्रारम्भ कर दें और स्वयं उसके लाभों का अनुभव करें। जो किसी प्रकार का आसन या व्यायाम नहीं करते, उन्हें सूर्य-नमस्कार अवश्य करना चाहिए। उपासना, व्यायाम, प्राणायाम तथा सूर्य-किरण-स्नान इन सबका फायदा उन्हें एक साथ ही मिलेगा।

यह जीवन आपके हाथ में एक अमूल्य पुष्प है। इसका सदुपयोग कीजिए। लोभ, तृष्णा, ईर्ष्या, निन्दा से इसे मलिन मत कीजिए। जीवन आपके हाथ में वह अमूल्य हीरा है, जिसे आप अपनी योग्यता से इच्छानुसार सुन्दर रूप भी दे सकते हैं और कुरूप भी बना सकते हैं। स्वस्थ शरीर और मन, दोनों मनुष्य के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं और उन्हें प्राप्त करने का एक सहज उपाय, जिसे सभी कर सकें, मैंने बतलाया। आजकल खेल और व्यायाम के नए-नए साधन निकल आए हैं, पर वे सर्व-साधारण को उपलब्ध नहीं। उनके लिए धन, स्थान और समय की जरूरत होती है। काम में बहुत व्यस्त रहने वाले, सीमित आय वाले व बड़े-बड़े शहरों में रहने वाले, जिन्हें स्थान की भी समस्या रहती है, उन सबके लिए सूर्य-नमस्कार एक सहज समाधान प्रस्तुत करता है। कम खर्च में, कम समय में, कम-से-कम स्थान में आप अत्युत्तम स्वास्थ्य प्राप्त कीजिए।

यही है सनातन धर्म की विशेषता। यह ऐसी जीवन-पद्धति बतलाता है जो सबके लिए सुलभ है। अमीर-गरीब, ऊँच-नीच, संसारी-वैरागी सबको रास्ता बतलाता है। यही एक धर्म है जो आज के वैज्ञानिक युग में भी जीवित रह सकता व जीवित रख सकता है। इसकी साधनाएँ अपूर्ण जीवन से आरम्भ होकर पूर्णत्व में परिणत होती हैं। आइए, आज हम अपने को केवल हिन्दू कह कर सन्तोष न करें, वरन् हिन्दू धर्म का योग अपने विषम और अपूर्ण जीवन में उतारें। गुरुदेव यही कहने हमारे बीच में विचर रहे हैं। आप उनकी भी वाणी सुनिए।

योगनिद्रा अथवा हिप्नौटिज्म

माँ योगशक्ति

स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं से

बिहार योग विद्यालय द्वारा प्रकाशन – 1968, 2013



योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

योगनिद्रा अथवा हिप्नौटिज्म

सन् 1968 में प्रकाशित इस पुस्तक में माँ योगशक्ति ने हिप्नौटिज्म की प्रक्रिया का विवेचन प्रस्तुत करते हुए यह सिद्ध किया है कि हिप्नौटिज्म योगनिद्रा की गहनतर प्रक्रिया का अल्पांश मात्र है। साथ ही उन्होंने योगनिद्रा के विविध लाभों और जीवनोपयोगी प्रयोगों की भी चर्चा की है। यह पुस्तक जनसाधारण और साधकगण, दोनों के लिए उपयोगी है।

–*सम्पादक*

आज के लिए योग

योग के दो ही प्रामाणिक स्रोत हैं। पहला योग-निष्ठ गुरु और दूसरा प्राचीन योग-शास्त्र, याने टीचर और साहित्य।

योगी गुरुओं का प्राय: जन साधारण के बीच अभाव है, क्योंकि सिद्ध गुरु जनता के बीच प्रकट रूप से नहीं रहते। या तो वे डिस्टर्बैन्स के भय से अपने परिचय को छिपा कर रहते हैं या फिर जन कार्य में उनकी कोई रुचि नहीं होती। केवल अपनी शक्तियों का विकास और दु:खी, आर्त्त लोगों की अदृश्य सहायता—यही दो कार्य उनके होते हैं।

योग की शिक्षा का दूसरा स्रोत है मुनियों द्वारा रचित शास्त्र। घेरण्ड मुनि, स्वात्माराम योगी, कपिल मुनि, गोरखनाथ आदि की हठयोग-प्रदीपिका, हठयोग-सार, योगसूत्र तथा गोरक्षसंहिता जैसे सब प्रसिद्ध ग्रन्थ हैं, जिन्हें प्रामाणिक मानते हैं। इन पुस्तकों में शरीर शास्त्र के सिद्धान्त के आधार पर हठयोग की क्रियाएँ बतलाई गई हैं।

पतंजलि मुनि का विश्वप्रसिद्ध शास्त्र 'योगसूत्र' राजयोग का मूल स्तम्भ है। महर्षि पतंजलि के राजयोग का मुख्य विषय मानसिक शक्तियों का विकास कराना है। उनके ग्रन्थ में विशेषकर मानसिक पक्ष को ही लेकर छिपी हुई शक्तियों को विकसित करने का उपाय व उसका परिणाम बतलाया गया है। मानसिक गुत्थियाँ, उनका निराकरण, मनस् का विकास और शक्ति एवं सिद्धि की प्राप्ति—ये पातंजल-योगदर्शन के विषय हैं। प्राय: लोगों को यह शंका होती है कि महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित योग सिद्धियाँ एवं पुराणों-उपनिषदों में वर्णित अष्ट सिद्धियाँ गप्प हैं या कुछ यथार्थ भी है उनमें। उत्तर यह है कि वे सब सही हैं और आज के युग में भी सम्भव और प्राप्य हैं, बशर्ते हम उनकी प्राप्ति के लिये तत्पर हों और उनका नियमित अभ्यास करें। यदि कोई भी व्यक्ति मनोयोग से योग की क्रियाओं का अभ्यास करेगा तो उसे निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। यदि विदेशियों ने योग का अभ्यास करके बहुत कुछ जाना और अनेकों पुस्तकें लिख डालीं, जिनकी लाखों प्रतियाँ

फैशनेबलों के बीच बिकती हैं, तो आप यह कैसे मान लेते हैं कि योग की वार्ता गप्प है?

इतना ही नहीं, बल्कि उन्हीं योग की क्रियाओं, और योग एवं अध्यात्म विषयक ज्ञान को लेकर आज मेन्टल-साइन्स, पैरा-साइकोलौजी, डबल नेचर, डुएल परसनैलिटी, हिडेन पॉवर ऑफ माइन्ड, इनर सेल्फ, सुप्राकौन्श्यस, अन्कौन्श्यस, सुपर सेन्स इत्यादि अनेक नामों के आवरण में प्रस्तुत किया जा रहा है। उपनिषद्, पुराण, गीता, वेद, योग-शास्त्र इत्यादि में जो कुछ वर्णित है वह ऐसा अमूल्य ज्ञान और अन्तिम सर्वोपरि सत्य है कि उस ज्ञान को समझने योग्य मानसिक विकास की सीमा तक पहुँचने में सम्पूर्ण मानवता को हजारों वर्ष का समय लगेगा। तब भी वह ज्ञान सुलभ है उनके लिए जो समझबूझ कर उसे प्राप्त करने के लिये कटिबद्ध हो चुके हैं। केवल प्रेरणा, हार्दिक जिज्ञासा और अभ्यास में रुचि, ये तीन बातें जिस किसी में हों उसके लिये इस अपूर्व-ज्ञान का रास्ता बराबर खुला मिलेगा। मानसिक शक्ति अनन्त है किन्तु उस शक्ति का भी स्रोत आत्मा है। आत्मा ही अनन्त, शक्तिशाली, सर्वज्ञ और सर्वव्यापी है और उसी की शक्ति मस्तिष्क, मन, बुद्धि, इच्छा, कर्म इत्यादि के द्वारा व्यक्त होती है। शरीर, मन, बुद्धि और चित्त केवल आत्मशक्ति को प्रकट करने के यन्त्र हैं। ये यन्त्र सब में एक समान विकसित रूप में नहीं होते। आप स्वयं जानते हैं कि मस्तिष्क तो हर एक व्यक्ति के पास होता है पर उसकी शक्ति सब में समान नहीं होती। अनपढ़ और गँवार लोगों की बात छोड़ भी दी जाए तो भी देखा जाता है कि एक साथ, एक समान शिक्षा प्राप्त करनेवाले छात्रों की बुद्धि का स्तर एक-सा नहीं होता। यही कारण है कि आत्मशक्ति सर्व-समर्थ होने पर भी, उसके प्राकट्य की मात्रा और स्वरूप, आत्मा के इन यन्त्रों—शरीर, मन, बुद्धि और चित्त के ऊपर निर्भर करते हैं। इसी कारण से आत्म-विद्या का ज्ञान और प्रयोग सब लोग समान रूप से नहीं करते।

योग के अभ्यासों द्वारा शरीर, मन, बुद्धि और चित्त अधिक सूक्ष्म, परिष्कृत, शक्तिशाली और तीक्ष्ण बनते हैं। इन यंत्रों के तीक्ष्ण व सूक्ष्म होने से कई मानसिक शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। विलपावर बढ़ता है जिसे हम संकल्पशक्ति के नाम से जानते हैं। यह संकल्पशक्ति अद्‌भुत शक्ति है। इसके बल पर अनेक कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। संकल्प शक्ति के एक नहीं, सैंकड़ों प्रमाण प्राप्त किए जा सकते हैं। हिप्नौटिज्म, टेलीपैथी,

प्रीमोनिशन, क्लेयरवायन्स, थौटरीडिंग, मेन्टल प्रोजेक्शन, इत्यादि अनेक प्रयोग और विद्याएँ सब यौगिक शक्ति की ही धाराएँ हैं। और इन सब को हिन्दू धर्म में 'योग' के नाम से ही सम्बोधित किया जाता है। योग भारत की एक प्राचीन अमूल्य विद्या है और जो कुछ हम प्राचीन भारतीयता के नाम से जानते हैं वह हिन्दू धर्म की देन है विश्व को। वह मानवता की पूंजी है।

हिप्नौटिज्म भी और कुछ नहीं केवल योगशक्ति का प्रयोग है। संकल्प-शक्ति को थोड़ा-सा बढ़ाने का अभ्यास कर लेने से हर कोई हिप्नौटिज्म का अभ्यास कर सकता है। यह केवल मानसिक शक्ति है, मन के स्वभाव और धर्म को समझ कर उसका रचनात्मक तथा उपचारात्मक प्रयोग का सम्भावित उपाय है, जिसकी चर्चा आगे की जायेगी।

योग का अभ्यास करने से प्रत्येक को तीन फायदे होते हैं–(1) शारीरिक स्वास्थ्य की प्राप्ति, (2) मानसिक शान्ति और शक्ति का विकास तथा (3) आत्मा का विकास और ज्ञान। अर्थात् शरीर और मन के परे की वस्तुएँ जैसे, पूर्व जन्म का ज्ञान, आगम का ज्ञान, मृत्यु के बाद का ज्ञान इत्यादि। यह सब सम्भव है और अनेक जगहों पर अनेक लोग इन चीजों पर खोज कर रहे हैं और प्रमाणों का संग्रह कर रहे हैं। मृत्यु के पश्चात् के जीवन पर अब पश्चिमी विद्वान् भी विश्वास करते हैं और कई पुस्तकें इस विषय पर स्वयं क्रिश्चियन लोगों द्वारा लिखी जा चुकी हैं। इंग्लैंड के कई समाचार पत्रों में मृत्यु के बाद की सच्ची कहानियाँ और घटनाएँ सप्रमाण प्रकाशित होती हैं।

इसलिये अब इन बातों पर अविश्वास करने और टालने से काम नहीं चलेगा। बल्कि इन विषयों पर तो पर्याप्त शोध होना चाहिये तथा ऐसे कार्यों को प्रोत्साहित भी करना चाहिये। तभी यह ज्ञान सर्वलभ्य होगा और मानव कल्याण की दिशा में प्रयोग के उपाय खोजे जाएँगे। इक्के-दुक्के प्रयास इधर-उधर अनेक लोगों द्वारा हो रहे हैं और उन्हें सफलता भी मिली है, किन्तु साधनहीनता के कारण उनका प्रयास सार्वजनिक ध्यान को आकर्षित करने में असमर्थ होता है। विदेशों में साधनों की कमी नहीं है। अतएव वहाँ के कार्य जनता की दृष्टि में आ जाते हैं।

अमेरिका में साइकिक रिसर्च सोसायटी ने इस दिशा में कुछ कार्य किया था। भारत में साधु और गुरु परम्परा के अतिरिक्त भी कुछ संस्थाओं ने मनुष्य की अतीन्द्रिय शक्तियों की खोज में काफी परिश्रम और सफलता प्राप्त की है। थियोसोफिकल सोसायटी के सी.डब्ल्यू.लेडबीटर ने अनेक पुस्तकें इस

पर लिखी हैं। बंगला साहित्य में मृत्यु के पार जीवन पर कई एक सप्रमाणिक पुस्तकें हैं जैसे अभेदानन्द की देवयान पुस्तक। श्री अरविन्द ने सुपर कौन्श्यस के ऊपर सविस्तार प्रकाश डाला है।

अब यह बात सन्देहजनक नहीं है कि मनुष्य की शक्तियाँ अनन्त हैं। इनका विकास सम्भव है और एक साधारण मनुष्य असाधारण मनुष्य बन सकता है—कोई बुद्ध और गाँधी, कोई अरविन्द और रमण, कोई टैगोर और निराला, कोई जयशंकर प्रसाद और प्रेमचन्द, कोई शंकराचार्य, विवेकानन्द और शिवानन्द, कोई बिड़ला और डालमिया, कोई जगदीशचन्द्र बसु और रामानुजम् तो कोई राजेन्द्र और नेहरू। सभी कुछ-न-कुछ बन सकते हैं, इसमें सन्देह नहीं। ऐसे तो सभी कुछ-न-कुछ हैं ही, चाहे दरिद्र हों या अशिक्षित या बीमार। परन्तु यदि हम आत्मविज्ञान के नियमों को जान कर उसका ठीक-ठीक उपयोग करने की चेष्टा करने लग जाएँ तो हम अपने को जहाँ हैं वहाँ से और ऊँचा उठा सकते हैं। अधिक अच्छे, अधिक विद्वान् और जीवन में और अधिक सफल हो सकते हैं।

वास्तव में हम सब मेलियोरिस्ट हैं। मेलियोरिज्म (Meliorism) यह विश्वास करता है कि इस दुनिया को हम सब मनुष्य मिलकर और अच्छा बना सकते हैं। इस दुनिया में दु:खों और अभावों का रोना न रोकर यदि हम सब मेलियोरिस्ट बन कर सुधार के लिये कमर कसकर तैयार हो जाएँ तो हमारी इस दुनिया में भी काफी प्रगति हो जाएगी।

दुनिया का विकास तो हो रहा है किन्तु धीरे-धीरे। यौगिक क्रियाओं के द्वारा मनुष्य अपने को कम समय में अधिक विकसित और शक्तिसम्पन्न बना सकने में समर्थ होता है। योग के अभ्यास से यह विकास जल्दी होता है। अब योग की एक शाखा, एक व्यावहारिक विज्ञान 'योगनिद्रा' की चर्चा की जाएगी।



हिप्नौटिज्म
जिसे योगनिद्रा कहें तो अच्छा

योगनिद्रा और हिप्नौटिज्म दोनों एक ही वस्तु हैं परन्तु 'हिप्नौटिज्म' शब्द के बारे में लोगों ने कुछ अजीब धारणाएँ बना रखी हैं। हिप्नौटिज्म से वे ऐसा समझते हैं कि यह कोई रहस्यमयी विद्या है। मुझे भी इसके विषय में पहले बहुत कौतुहल था। किन्तु योगनिद्रा के अध्ययन, अभ्यास व प्रयोगों से इसके प्रति मेरी धारणाएँ अब बिल्कुल ही बदल गई हैं। जैसा रहस्य से भरा इसे साधारण व्यक्ति समझता है वैसा यह नहीं है।

हिप्नौटिज्म शब्द तो अंग्रेजी भाषा से आया अवश्य है पर भारतवर्ष के लिये यह कोई नयी विद्या नहीं। साइकोलौजी को आज के पढ़े-लिखे विद्वान् पाश्चात्य की देन समझ बैठे हैं पर मनोविज्ञान और आत्मविज्ञान पर जितनी रिसर्च हमारे देश में अत्यन्त प्राचीन काल से होती आयी है, उतनी और किसी जगह नहीं हुई। हमारे यहाँ पूर्वजों ने जितना साहित्य लिखा वह सब inner consciousness और physical consciousness में एक तादात्म्य और अन्तर-सूत्र खोजने की चेष्टा का परिणाम-मात्र ही तो है। मनोविज्ञान अभी अन्तिम सत्य तक पहुँचने के प्रयास में पहला कदम है पर अध्यात्म-विज्ञान अन्तिम सत्य तक पहुँच चुका है।

भारतवर्ष में प्राचीन समय से वशीकरण, योगनिद्रा, मारण, उच्चाटन, आदि विद्याएँ प्रचलित थीं। यदि सच कहा जाए तो हिप्नौटिज्म केवल योगनिद्रा का एक तरीका है। जिस प्रकार एक बच्चे को धीरे-धीरे किसी विद्या की ट्रेनिंग दी जाती है, उसी तरह अविकसित मस्तिष्क वाले बड़े बच्चे भी किसी दूसरे की मदद से अपनी कमजोरियों को स्वयं दूर कर सकने में समर्थ हो सकते हैं। बच्चों में स्वयं सीखने की शक्ति व ज्ञान अपर्याप्त रहता है, इसलिए वे माता, शिक्षक या किसी दूसरे के माध्यम से ज्ञान ग्रहण करते हैं। इसी तरह हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा एक दूसरी एजेन्सी की मदद से

स्वयं में एक विशेष कर्म करने की इच्छा व शक्ति पैदा करने की क्रिया कही जा सकती है।

हिप्नौटिज्म 'हिप्नौस' या 'हिप्नौसिस' शब्द से बना है। 'हिप्नौसिस' का वास्तविक अर्थ है 'निद्रा की अवस्था पैदा करना'। कृत्रिम निद्रा लाने के कई उपाय होते हैं। कृत्रिम निद्रा की अवस्था में मनुष्य की इन्द्रियों द्वारा ज्ञान ग्रहण की शक्ति साधारण अवस्था से अधिक हो जाती है। हिप्नौटिज्म के पीछे शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान की जो थ्योरी है वह योगनिद्रा की साधना का किन्डर-गार्टन-स्टेज है। योग के अभ्यास में जब मनुष्य प्रवृत्त होता है तो उसे साधना में subjective अनुभव प्राप्त होते हैं। ध्यान योग का अभ्यास करनेवाले व्यक्ति जब ध्यान करने की टेकनिक पकड़ और समझ लेते हैं तो उनके लिये फिर मनोविज्ञान वैसा ही होता है जैसे grown ups के लिये गुड़ियों का खेल। पतंजलि के योगदर्शन में हैं तो केवल 195 सूत्र, पर मेरा अनुमान है कि एक-एक सूत्र की व्याख्या में एक-एक किताब लिखी जा सकती है। योग के विद्यार्थी और उसमें भी राजयोग का विद्यार्थी, जिसे मन से मन को पकड़ने की कला सीखनी पड़ती है और जो साधना के rocket में मन को फिट कर उससे आत्मा का सन्धान करता है, उसे हिप्नौटिज्म और मेस्मेरिज्म में कोई नवीनता नहीं, बल्कि योगनिद्रा का रूपान्तर दिखता है।

हिप्नौटिज्म कोई विशेष विद्या नहीं है। मनुष्य के मन की सहज स्वाभाविक गति का विशेष प्रयोजन के लिये उपयोग किया जा सकता है। यह उपयोग केवल पश्चिम में ही हुआ, ऐसा नहीं कहा जा सकता। पश्चिम में विद्वानों ने हिप्नौटिज्म के जितने प्रयोग किये हैं, उनमें पूर्ण सफलता उन्हें कभी नहीं मिली। इसे पूर्ण विज्ञान वे नहीं कह सके। कुछ समय तक तो हिप्नौटिज्म की (उन्नीसवीं शताब्दी और बीसवीं के प्रारम्भ तक) खूब चर्चा रही, पर अब उसे निरर्थक और हानिकारक समझ कर छोड़ दिया गया है। किन्तु जिन्होंने कभी इस विषय का अध्ययन नहीं किया वे अभी भी इसे एक अद्‌भुत और रहस्यमयी विद्या समझते हैं, जो वास्तव में और कुछ नहीं, योगनिद्रा मात्र है।

हिप्नौटिज्म के प्रयोग के लिए सभी व्यक्ति अच्छे subject अर्थात् प्रयुक्त (जिस पर प्रयोग किया जा सके) नहीं बन सकते। इसका अर्थ यही निकलता है कि यह पूर्ण विज्ञान नहीं है। विज्ञान तो वही हो सकता है जिसमें सत्य का स्वरूप सर्वदा एक समान रहे और जिसमें सत्य की जब चाहे तब परीक्षा की जा सके। इसलिए हिप्नौटिज्म को विज्ञान किसी रूप में नहीं कहा जा सकता।

हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा में चार बातें होती हैं। पहली, प्रयुक्त को कृत्रिम निद्रावस्था में लाया जाता है। दूसरी, उसे कई तरह के निर्देश दिये जाते हैं। यहाँ निर्देश का मतलब है सुझाव देना। तीसरी, प्रयुक्त से आदेशों का पालन कराया जाता है। चौथी, किसी तरह के उपाय से प्रयुक्त की कल्पना शक्ति को ऊँचा उठाने की प्रयोक्ता भरपूर चेष्टा करता है।

इन चारों बातों की आगे हम परीक्षा करेंगे। जैसा कहा और समझा जाता है कि प्रयुक्त को कृत्रिम निद्रा में सुला दिया जाता है, यह ठीक नहीं है। हिप्नौटिक अवस्था निद्रा से भिन्न अवस्था है। प्रयुक्त को नींद कभी नहीं आती। फिर जो व्यक्ति हिप्नौटाइज्ड नहीं होना चाहता उस पर कभी भी हिप्नौटिज्म का प्रयोग नहीं किया जा सकता। पश्चिम के विद्वान्, जिन्होंने हिप्नौटिज्म के प्रयोग किए, प्राय: प्रयुक्त से लिखवा लेते थे कि मैं हिप्नौटिज्म के प्रयोग के लिये तैयार हूँ। ऐसा करने से प्रयुक्त के मन में प्रयोक्ता के प्रति आज्ञाकारिता एवं समर्पण का पूर्व-भाव मन में पहले से ही रोप दिया जाता है। फिर यदि हिप्नौटाइज्ड व्यक्ति प्रयाक्ता के निर्देश और आदेश के अनुसार ही कुछ देखे, सुने और करे तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है।

हिप्नौटिज्म का प्रयोग और प्रचार, मनुष्य को बेहोशी की-सी अवस्था में लाकर उसपर चीर-फाड़ की जा सके, इसलिए हुआ। फिर इसी तरह कुछ आवयविक-दोषों से उत्पन्न बीमारियों को ठीक करने के लिए प्रयोग हुए। कुछ अन्य बीमारियाँ, जो शरीर-यंत्रों के उचित कार्य न करने के कारण उत्पन्न होती हैं, उनके उपचार के लिए लोगों ने हिप्नौटिज्म का प्रयोग किया। पुन: कुछ ऐसे प्रयोग भी हुए जैसे घड़ी का समय बतलाना, रंग बतलाना, स्मृति से बचपन की बातें बतलाना इत्यादि। इन सब चीजों को अद्‌भुत एवं चमत्कारिक समझा गया। किन्तु यदि विचार कर देखा जाय तो ये सब स्वाभाविक एवं व्यावहारिक चीजें हैं। हिप्नौटिज्म का साइन्स न जानते-समझते हुए भी मनुष्य नित्यप्रति इनका प्रयोग करता है। मन का कुछ स्वाभाविक गुण होता है। मन की प्रवृत्तियों, कर्मों, उसे वश में करने के तरीकों इत्यादि विषयों पर भारत के प्राचीन ग्रन्थों में बहुत अधिक प्रकाश डाला गया है। Material science से subjective science को अत्यन्त उपयोगी ही नहीं बल्कि अतीव आवश्यक समझ कर ही हमारे यहाँ के ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों और योगियों ने इन पर रिसर्च की और उसका प्रचार किया। धर्म और ईश्वर के साथ उसका सम्बन्ध जोड़ने का विशेष प्रयोजन यही है कि किसी तरह मनुष्य-मात्र इन क्रियाओं को

अपना ले और व्यवहार में लाए। इसलिए यदि आप अपने मन और व्यक्तित्व को ठीक-ठीक जानना और पहचानना चाहते हो तो आपको राजयोग एवं योगनिद्रा का अभ्यास करना जरूरी है। ध्यान-योग की ओर बढ़ें, आपको स्वत: सब मालूम पड़ने लगेगा।

हिप्नौटिज्म, जिसके लिए हर जगह योगनिद्रा शब्द का ही प्रयोग करेंगे, में प्रयुक्त को निद्रा कभी नहीं आती, क्योंकि यदि उसे पूर्ण निद्रा आ जाय तो फिर वह प्रयोक्ता के आदेशों का पालन नहीं कर सकेगा। जिस समय प्रयुक्त आज्ञानुसार कार्य करता है, उस समय वह बिल्कुल जागृत अवस्था में रहता है। मनुष्य बिना योगनिद्रा के प्रयोग के भी दिन-रात अपने आस-पास के लोगों व वातावरण से सदा ही प्रभावित होता रहता है। हरेक आदमी की अपनी-अपनी विशेष रुचि, खास विचार और गुण होते हैं। बाह्य जगत् में भी वह अपने मनपसन्द विचार, समाज एवं व्यक्ति की ओर झुक जाने के लिए अन्दर से बराबर तैयार रहता है। ऐसे व्यक्ति जो कोमल और ग्रहणशील स्वभाव के होते हैं, वे जल्दी किसी से आत्मीयता ग्रहण कर लेते हैं। जहाँ फिर आत्मीयता का प्रश्न आ जाता है और प्रयोक्ता प्रयुक्त के विश्वास को प्राप्त कर लेता है तो फिर आदेश और निर्देश के अनुसार कार्य करने में प्रयुक्त को कुछ कठिनाई नहीं होती। यह मानव स्वभाव की विशेषता है। इसे हिप्नौटिज्म कहना गलत है।

जहाँ विश्वास और आत्मीयता होती है, वहाँ पर प्राय: मनुष्य संकल्प और विकल्प – reasoning, thinking और counter thinking नहीं करता। यह स्वाभाविक है। कोई व्यक्ति जब अपने ऑफिसर के सामने रहता है, उस समय वह अपने power के विषय में नहीं सोचता। उस समय उसका सारा ध्यान आज्ञापालन और ड्यूटी के प्रति रहता है। ऑफिसर से वह सवाल-जवाब नहीं करता। इसी तरह हमारा मन भी जब अकेला रहता है तब तो वह तर्क-वितर्क, संकल्प-विकल्प करता है, किन्तु ऐसे व्यक्ति के सामने जिसे वह अपने से श्रेष्ठ, आवश्यक और हितैषी समझता है, उसकी बुद्धि surrender कर देती है। surrender का यह भी मतलब नहीं लगाना चाहिए कि प्रयुक्त की विचार-बुद्धि समाप्त हो जाती है। प्रयुक्त समझता सब कुछ है, किन्तु उसके विरोध में बुद्धि का प्रयोग नहीं करता। क्या एक रोगी डॉक्टर के सामने समर्पण नहीं करता? क्या एक निम्न कर्मचारी उच्च कर्मचारी के सामने नहीं झुकता? मनुष्य अपने स्वभाव के अनुसार ही विशेष

गुण और व्यक्तित्व के सामने सम्मोहित होता है। धन की कामना रखनेवाले धन से सम्मोहित होते हैं, पावर की इच्छा वाले पावर से सम्मोहित होते हैं, ज्ञान की इच्छा वाले ज्ञान से सम्मोहित होते हैं और कलाकार कला से सम्मोहित होता है। कई लीडर ऐसे होते हैं जो अपने किसी विशेष गुण के कारण जनता को अपने पीछे चलने के लिए बाध्य कर देते हैं। यही तो है सम्मोहन विद्या। चाहे इसे हिप्नौटिज्म कहिये या और कुछ। बल्कि यूँ कहिए कि जब एक प्रोफेशनल हिप्नौटाइजर इस विद्या का voluntarily प्रयोग करता है तो वह अपने को एक दायरे में सीमित कर लेता है। इस सीमित दायरे में उसे सफलता से अधिक असफलता होती है। आत्मा और मन के स्वाभाविक गुणों को हिप्नौटिज्म या एक विशेष कला या विज्ञान बनाकर हम आत्मशक्ति को स्वच्छन्द होकर कार्य करने से रोक देते हैं।

प्राय: लोगों का कहना है कि पुरुष की अपेक्षा स्त्रियों पर हिप्नौटिज्म के प्रयोग अधिक सफल होते हैं। पर ऐसा नहीं है। स्त्रियाँ प्राय: deep slumber यानी गम्भीर निद्रा में तुरन्त चली जाती हैं। फिर वे प्रयोक्ता की बातों को न तो सुन सकती हैं, और न ही उत्तर दे सकती हैं। इसके विपरीत पुरुष, जिनमें साधारणत: बुद्धि अधिक होती है जल्दी हिप्नौटाइज्ड हो सकते हैं। हिप्नौटिज्म की अवस्था में सुनने व बोलने की क्रिया शुरू से आखिर तक चालू रहती है। प्रयुक्त को पूरा ध्यान प्रयोक्ता की आवाज पर रखना पड़ता है, और पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर देना तथा आदेश का पालन, जैसे हाथ उठाओ, आँखें खोलो, बन्द करो, मुट्ठी बाँधो इत्यादि करते रहना पड़ता है। यह सब आदेश देते और करते प्रयोक्ता की बुद्धि धीरे-धीरे अलसाने लगती है। ऐसी अवस्था में स्त्रियाँ तो जरूर ही गम्भीर निद्रा में चली जाती हैं; इसलिए उनसे फिर बात नहीं की जा सकती। किन्तु जिनके पास बुद्धि है, सोचने की शक्ति है, केवल वही जगे रह सकते हैं। उन्हें न तो नींद आती है और न ही उनकी संकल्प-विकल्प की शक्ति समाप्त होती है। इसलिए बुद्धिवादी ही हिप्नौटिज्म के प्रयोग के लिए उपयुक्त subject हो सकते हैं। बुद्धिवादियों में प्रयोक्ता के प्रति यदि सम्मान की भावना न हो, तो वह व्यक्ति कभी अच्छा subject न तो बन सकता है, और न बनना ही पसन्द करेगा।

साधारण समझ-बुद्धि का विशेष प्रयोग ही हिप्नौटिज्म है। हिन्दू-धर्म की साधनाओं की यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से नाप-तौल की जाय, मीन-मेख निकाल कर, cutting और pruning कर उसे विज्ञान के बटखरे के बराबर

बनाने की चेष्टा की जाय तो वह बहुत कुछ सारहीन हो जायेगा। आज की वैज्ञानिक पद्धति, जिससे लोग इतने ज्यादा enamoured हैं, मैं समझती हूँ कि वह चकाचौंध तो पैदा करता है किन्तु, वस्तु एवं शक्ति को सीमित बनाने की चेष्टा भी करता है। विशेषकर 'योग' जैसे महत्त्वपूर्ण विषय को आधुनिक विज्ञान के दृष्टिकोण से देखना उसे छिछला बना देना है। हिन्दू धर्म में बतलायी हुई जीवन-पद्धति और साधनाएँ self hypnotism का ही एक परिष्कृत और सुसंस्कृत सुपर-वैज्ञानिक रूप हैं। कीर्तन, भजन, व्रत, उपवास, मौन, आरती, उत्सव क्या हैं? क्या ये auto-suggestions और हिप्नौटिज्म के साधन नहीं? क्या अर्चना और उपासना की पद्धति से मनुष्य के अन्दर की बुराइयाँ, mental-confilict, guilty-consciousness, inferiority-complex, sex-desire इत्यादि का sublimation तथा frustrations का let-out नहीं होता? इसी को वैज्ञानिकता और आधुनिकता मानते हैं न आप? ठीक है, वैज्ञानिक दृष्टि से भी धर्म और साधना की महत्ता को तौल लीजिए। किन्तु इस तरह की वैज्ञानिक दृष्टि को अपनाने से Super natural science की महत्ता कम हो जाती है। साधना का केवल यही उपयोग और यही रूप उसके अधिक महत्त्वपूर्ण और अधिक शक्तिशाली पक्ष की अवहेलना कर देता है। इस रूप में धर्म, योग, अध्यात्म इत्यादि विषय में सिवा materialist लोगों के (जिनकी संख्या जगत् में बहुत कम है), किसी और की श्रद्धा नहीं रहेगी। जगत् के 80-90 प्रतिशत निवासी ईश्वर के अस्तित्व, आत्मा के अस्तित्व, सूक्ष्म जगत् और सूक्ष्म शक्तियों के अस्तित्व में विश्वास रखने वाले हैं।

इसलिए 'हिप्नौटिज्म' को विशेष विज्ञान न मानकर योगविद्या का प्राइमरी पाठ ही समझना चाहिये। वाणी के माध्यम से प्रयुक्त का विश्वास प्राप्त करना तथा मन की ग्रहणशीलता का उपयोग कर उसे यथोचित निर्देश देकर कार्य कराना, कल्पना शक्ति को stimulate करके उनमें मनचाही प्रतिक्रिया उत्पन्न करना—यही हिप्नौटिज्म का कार्य-क्षेत्र है। रोगों का उपचार और चरित्र सुधार, जो आज पश्चिम में साइकोएनालिसिस के द्वारा किया जाता है, वह यहाँ साधु-सन्त-योगी केवल धर्माचरण द्वारा करा देने में समर्थ हैं। मन में दबी हुई इच्छा या आघात, जिसे हिप्नौटिस्ट बातों से प्रयुक्त को थकाकर उगलवाते हैं, वह यहाँ भारत में साधु-सन्त ईश्वर के प्रति अनन्यभक्ति, पूर्ण समर्पण-भाव और शुद्ध, निष्कपट प्रेम का उपदेश देकर

दु:खी और रोगी के अन्त:करण को निर्मल कर देने में सहायता देते हैं। किसी अच्छे सन्त का सत्संग, प्रवचन और श्रवण भी तो एक प्रकार का हिप्नौटिज्म ही है। भजन से लोगों के अन्त:करण को छू लेना, यह भी तो हिप्नौटिज्म ही है। लोगों के सुख-दु:ख को सुनना और सुखद, स्वस्थ निर्देश देना, यह भी psychiatry याने मानसोपचार ही है। साधना, जप, प्राणायाम, योगासन, ध्यान सब healthy auto-suggestions के क्या माध्यम नहीं हो सकते?

यहाँ पर मैंने परिचय-रूप में आपको हिप्नौटिज्म के विषय में कुछ ज्ञातव्य बातें बतलाईं। यदि विस्तृत विश्लेषण किया जाय तो इस पर एक लम्बा निबन्ध हो जायेगा। लेकिन मुझे इतना मालूम है कि हिप्नौटिज्म के विषय में लोगों ने अद्‌भुत विश्वास बना रखे हैं। वे बिल्कुल ठीक नहीं है। योग में बहुत-सी ऐसी क्रियाएँ हैं जो बहुत ऊँची हैं। परन्तु उनके अभ्यास और परीक्षण के लिये आज किसी को फुरसत नहीं। मनुष्य मेटिरियलिस्टिक यानी बहिर्मुखी वृत्तिवाला हो गया है और योग अन्तर्मुखी योग्यता की अपेक्षा करता है। यदि मनुष्य अपने अन्तर में डुबकी लगाकर तब ऊपर के जगत् में आये तो वह अपने साथ मानसरोवर के तल के एकाध रत्न भी प्राप्त कर ऊपर आ सकता है। और तब उसका जगत् में प्रयोग भी कर सकता है। हिप्नौटिज्म योग के समक्ष बहुत ही तुच्छ चीज है। बल्कि हिप्नौटिज्म, हिप्नौटिज्म नहीं योगनिद्रा है और इसे अब से योगनिद्रा ही बराबर कहें तो अच्छा होगा।



योगनिद्रा-विज्ञान

हिप्नौटिज्म मनोविज्ञान है और मनोविज्ञान है आत्मविद्या का एक आंशिक सत्य। सभी विज्ञानों को दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है। कुछ विज्ञान मनुष्य के अस्तित्व के बाहर की वस्तुओं का अध्ययन और ज्ञान प्राप्त करते हैं और पुनः उनसे मनुष्य को क्या लाभ प्राप्त हो सकता है इसे खोज निकालते हैं। जैसे 'एटौमिक एनर्जी' का पता वैज्ञानिकों ने लगाया और अब उस अणुशक्ति का मनुष्य के लिए किन-किन क्षेत्रों में और कैसे प्रयोग किया जा सकता है, यह खोज हो रही है। यह बाह्य विज्ञान हुआ। किन्तु, कुछ ऐसी भी विद्याएँ हैं जो केवल मनुष्य से ही सम्बन्ध रखती हैं। शास्त्रों के अनुसार एक परा विद्या कहलाती है, दूसरी अपरा विद्या। हिप्नौटिज्म, मनोविज्ञान, योग, धर्म, नीति इत्यादि मनुष्य के अपने जीवन और अस्तित्व से सीधा सम्बन्ध रखनेवाले हैं। हिप्नौटिज्म योग का ही एक अंग है जो योगनिद्रा के नाम से योगी जनों को विदित है।

योगनिद्रा का आधार शक्ति है। प्रत्येक मनुष्य में यह शक्ति होती है, जिसे योगशक्ति भी कह सकते हैं। इसी शक्ति को जगाने पर वह अनेक रूपों में मनुष्य के द्वारा प्रकट होती है, जैसे प्रेमशक्ति, कर्मशक्ति, धर्मशक्ति, ओजशक्ति, ज्ञानशक्ति, आत्मशक्ति, योगशक्ति, प्राणशक्ति और इच्छाशक्ति। इन शक्तियों को प्रत्येक मनुष्य अपने में जगा सकता है तथा इनका संचार दूसरे में भी कर सकता है। थोड़ी बहुत मात्रा में ये शक्तियाँ हर मनुष्य के अन्दर हैं पर कुछ साधक या जिज्ञासु विशेष साधनाएँ करके इन शक्तियों को बढ़ाते हैं। पर कोई भी शक्ति हो, यह वास्तव में आत्मशक्ति ही है। कुछ लोग विशेष प्रयास के द्वारा इनमें से कुछ शक्तियाँ जागृत करते हैं तथा कुछ में ये स्वाभाविक रूप से विद्यमान रहती हैं। हिप्नौटिज्म के नाम से हम जिसे जानते हैं वह आत्मशक्ति है। योग के सभी अभ्यास अपनी आत्मशक्ति, जिसे कुण्डलिनी शक्ति भी कह सकते हैं, जगाने के लिए हैं। इन अभ्यासों का करना 'साधना' कहलाता है। ये अभ्यास यौगिक क्रियायें हैं, जिन्हें अपने अन्दर स्थित योगशक्ति को जगाने के लिए मनुष्य करता है।

हिप्नौटिज्म के लिए जिस शक्ति का हम प्रयोग करते हैं वह है प्राणशक्ति। इसे ही कुछ विद्वानों ने personal magnetism कह कर व्यक्त किया है। Animal magnetism, nerve force, human electricity—ये सब उसी शक्ति के ही नाम हैं। मनुष्य अपनी will power को, जो आत्मशक्ति की एक छोटी धारा है, proper training देकर दूसरे व्यक्ति को, जिसमें will power को जागृत होने का मौका अभी तक नहीं मिल सका है, प्रभावित कर सकता है। मनुष्य में ही सारी शक्ति है। यह शक्ति कहीं बाहर से नहीं लाई जाती। किन्तु, उस आत्मशक्ति के कार्य करने के साधन हैं मन, बुद्धि, शरीर, चित्त और अहंकार। वास्तव में will power को ट्रेनिंग देने का अर्थ है मनुष्य की संकल्प-शक्ति को बढ़ाना। जिनकी संकल्प-शक्ति बढ़ी हुई रहती है वे कम विकसित संकल्प-शक्ति वालों को प्रभावित कर सकते हैं। कम विकसित संकल्प-शक्ति वाले का यह मतलब नहीं कि वह कम पढ़ा-लिखा हो। संकल्प-शक्ति अनपढ़ में भी हो सकती है। साथ ही एक विद्वान् में नहीं भी हो सकती। कभी-कभी लोग यह समझते हैं कि बौद्धिक व्यक्ति के पास will power अधिक होगा और ज्ञान के आधिक्य के कारण उसे आसानी से hypnotise नहीं किया जा सकेगा। परन्तु ज्ञानी व्यक्ति को एक कुशल प्रयोक्ता बहुत आसानी से अपनी संकल्प-शक्ति से प्रभावित कर सकेगा। यह अनुभूत तथ्य है।

हिप्नौटिज्म के विषय पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इसकी थ्योरी आपको मालूम हो सकती है। पर योगनिद्रा का व्यावहारिक ज्ञान और शिक्षा देने वाली पुस्तकों एवं शिक्षण-संस्थाओं का अभाव है। योगनिद्रा के विज्ञान के द्वारा human personality के अनेक दोष दूर किए जा सकते हैं। बहुत से mental errors को सुधार कर व्यक्ति अपना जीवन सुन्दर बना सकता है। मन की बीमारियों को ड्रग्स के द्वारा कभी भी दूर नहीं किया जा सकता है। सुधार होने के बदले उनसे शरीर में और भी अधिक जहरीले तत्त्व भर जाते हैं, जो कुछ समय बाद शरीर में नुकसान लाते हैं। इस प्रकार की मानसिक बीमारियों को योगनिद्रा की तकनीक से दूर किया जा सकता है। अनेक विद्यार्थी तथा स्त्रियाँ आजकल ऐसी तकलीफों का शिकार बन रहे हैं, जिनकी दवा एलोपेथिक डॉक्टरों के पास नहीं मिल सकती। आजकल शिक्षित वर्ग के लोगों में बीमारियों के कीटाणु सबसे पहले उनके मस्तिष्क में ही प्रवेश करते हैं। रोग-कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति केवल WBC में ही नहीं, बल्कि मन के कोषाणुओं में भी है। तो मन के कोषाणुओं को किस प्रकार मजबूत बनाया जाय?

मन के कोषाणु यदि मजबूत हो जाएँ तो वे किसी भी हानिकारक विचार-तत्त्व को मन में प्रविष्ट होने से रोकेंगे। इसलिए मन को पहले इस बात की ट्रेनिंग मिलनी चाहिये कि जो आप चाहते हैं वैसा ही react करें। आपकी इच्छा के इशारे पर ही मन को सक्रिय और निष्क्रिय होना चाहिये। इस परिणाम को प्राप्त करने के लिए योगनिद्रा के दो तरीके अपनाये जा सकते हैं। प्रथम, अपने मन को इस प्रकार की ट्रेनिंग आप स्वयं देवें। दूसरे, यदि आप अपने में शक्ति की कमी का अनुभव करते हों तो इस कार्य में किसी दूसरे से मदद लें। जिन लोगों में असाधारण संकल्प-शक्ति पायी जाती है वे तो अपने आप ही अपने को auto-hypnosis के द्वारा ठीक कर सकते हैं। पर जिनमें आत्मविश्वास नहीं, निर्भयता नहीं, स्वतन्त्र बुद्धि नहीं, जीवन में महत्त्वाकांक्षा नहीं, कोई लक्ष्य नहीं, वे न तो अपने जीवन के दोषों को स्वयं दूर कर सकते हैं और न ही साधना में आगे बढ़ सकते हैं। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता पा सकना उनके लिए कठिन होता है। ऐसे लोगों के आगे बढ़ने का एक उपाय तब यह है कि वे योगनिद्रा में किसी दूसरे की संकल्प-शक्ति की सहायता लेवें।

जिनकी संकल्प-शक्ति दुर्बल और आत्म-विश्वास क्षीण रहता है, प्राय: ऐसे ही लोग रोग एवं शोक से ग्रस्त पाये जाते हैं। जिन्हें अपने व्यक्तित्व में अपूर्व विश्वास और अदम्य शक्ति के होने का दृढ़ निश्चय रहता है वे रोगी, चिन्तित या मानसिक बीमारियों के शिकार कभी नहीं होते। यह शक्ति कहीं बाहर से नहीं ग्रहण की जाती। यह अपने अन्दर स्थित शक्ति को कार्य-रूप में प्रकट कर अपने विश्वास को प्रमाणित कर देना है। शक्ति तो अन्दर ही रहती है किन्तु उसे प्रकट करने के लिए हममें विश्वास का अभाव रहता है। अनेक ऐसी घटनाएँ घट चुकी हैं जिनसे यह सिद्ध हो चुका है कि मनुष्य के अन्दर अद्भुत शक्ति है, जो सर्वसमर्थ है।

उसी आत्म-शक्ति को कार्यकारी करने के लिए हिप्नौटिज्म एक साधना है। जैसा पहले भी कहा गया है कि हिप्नौटिज्म या योगनिद्रा self-discipline का एक तरीका है, जिसमें किसी दूसरी एजेन्सी की मदद से अपनी आत्मशक्ति व will power को जगाया जाता है। योगनिद्रा की अवस्था उत्पन्न कर मनुष्य को जो भी स्वास्थ्यप्रद आदेश या निर्देश दिये जाते हैं, उन्हें व्यक्ति का अवचेतन मन तुरंत ग्रहण करता है तथा वह पीछे व्यवहार में प्रकट होता है।

योगनिद्रा में मनुष्य की चेतना पाँच स्तरों पर निरन्तर कार्य करती रहती है। पहली अवस्था है जागृति की जिसमें मनुष्य बराबर जगा रहता है और अपनी

दसों इन्द्रियों के द्वारा जगत् में कार्य करता है। इस अवस्था में जगत् और शरीर का ज्ञान रहता है। मनुष्य बाहर तो जगा रहता है पर अन्दर सोया रहता है। अपने अन्दर की आत्मा का ज्ञान उसे नहीं रहता।

दूसरी अवस्था जो योगनिद्रा के प्रयोग के समय आती है वह है 'तन्द्रा की अवस्था', जिसमें न तो मनुष्य पूर्णत: जगा ही रहता है और न पूर्णत: सोया ही। उसकी चेतना न तो पूर्णत: अन्तर्मुख रहती है और न पूर्णत: बहिर्मुख। यह तन्द्रा की अवस्था है जिसमें मनुष्य को न तो बाहर का ही पूरा पता रहता है और न अपने अन्दर का, बल्कि दोनों ही जगहों का थोड़ा-थोड़ा पता रहता है।

योगनिद्रा की तीसरी अवस्था है सुषुप्ति की। सुषुप्ति में मनुष्य बाहर तो सो ही जाता है, अन्दर में भी सो जाता है। उसका बाह्य इन्द्रिय-ज्ञान पूर्णत: समाप्त हो जाता है। सुषुप्ति में मनुष्य को स्वप्न भी नहीं दिखते। गम्भीर निद्रा में बिल्कुल बेखबरी रहती है, न बाहर की चेतना, न अन्दर की; न बाहर का पता और न अन्दर का।

चौथी अवस्था वह है जिसमें मनुष्य बाहर के जगत् में सोया और अन्दर के जगत् में जगा रहता है। दुनिया में बेहोश रहता है, पर अन्दर में वह जागता है और स्वप्नों तथा संस्कारों के दर्शन करता है।

इसके भी परे योगनिद्रा की पाँचवीं अवस्था है, जिसमें मनुष्य बाहर में पूर्णत: बेहोश और अन्दर में पूर्णत: होश में रहता है। अन्दर में उसे पूर्ण ज्ञान रहता है। यह बड़ी उच्च अवस्था है। बाहर की नींद और अन्दर की 'जाग'। यह है समाधि की अवस्था। कुछ संत-महात्मा ऐसे भी होते हैं जो बाहर और अन्दर, दोनों में जगे रहते हैं। उन्हें अपने अन्दर का भी पता रहता है और बाहर का भी। इसे कहते हैं 'सहज समाधि'।

योगनिद्रा में कृत्रिम नींद की अवस्था लायी जाती है, जिसे 'तन्द्रा' कहते हैं। यह अवस्था वह है, जिसमें अवचेतन मन सक्रिय रहता है किन्तु शरीर अलसाया। अर्द्धनिद्रा की अवस्था में मन बड़ा impressionable रहता है। Memory vivid हो जाती है। बुद्धि का अल्पकालीन लोप हो जाता है। तर्क-वितर्क और कुतर्क करनेवाली बौद्धिक चेतना निष्क्रिय रहती है। अर्द्धचेतन मन केवल निर्देश को सुनता और ग्रहण करता है।

योगनिद्रित करना एक व्यावहारिक विद्या है जिसमें प्रयोक्ता को सफलता और असफलता की परवाह किये बिना दिनों, हफ्तों, महीनों और वर्षों तक लगातार अभ्यास करते जाना चाहिये। कभी सफलता भी मिल जाती है और

कभी असफलता भी। योगनिद्रा सीखने के लिए जो उत्सुक हैं, उन्हें पहले तो स्वयं अपने को discipline करना पड़ेगा। अपनी संकल्प-शक्ति को बढ़ाने के लिए कुछ साधनाएँ करनी पड़ेगीं। प्रयोक्ता को अपनी शक्ति में अदम्य विश्वास और at will अपने mind को एकाग्र कर लेने की शक्ति होनी चाहिये। मुँह से बोलना अथवा बतलायी विधि करते जाना, पर मन में यह अव्यक्त भय हमेशा छिपाये रखना कि 'कहीं ऐसा न हुआ तो', ऐसे व्यक्ति कभी भी योगनिद्रा नहीं सीख सकते। इसके विपरीत जो व्यक्ति ऐसा सोचता है कि मैं जो कुछ कहूँगा केवल वही प्रयुक्त करेगा और जो कुछ मैं सोचता हूँ वह अवश्य घटना चाहिये, वही योगनिद्रा की कला में पारंगत हो सकता है। हमेशा डरनेवाले और compromising स्वभाव के व्यक्ति इस ओर कदम न उठावें तो अच्छा। यदि वे अपने व्यक्तित्व को पूरे-का-पूरा बदल डालने के लिए तैयार नहीं हैं, तो उन्हें इसमें सफलता कदापि नहीं मिल सकती।

योगनिद्रा की विद्या से किस प्रकार जन-सेवा की जा सकती है यह आगे बतलाया जायेगा। जीवन के किन-किन क्षेत्रों में इसकी मदद से व्यक्तित्व का विकास कराने में सहायता दी जा सकती है, इसे योग्य अधिकारी व्यक्तियों को गुरु से सीखना चाहिये। पश्चिम में पहले इसका बहुत प्रयोग हुआ किन्तु कभी-कभी यह भी पाया गया कि हिप्नौटिक अवस्था में 'तुम अब चल नहीं सकते' या 'तुम अब अपना हाथ उठा नहीं सकते' जैसे temporary suggestions दिये गये, वे permanent बन गये। किन्तु भारत में जब गुरु इन चीजों को अपने चेले के अधिकारत्व की परीक्षा लेकर यौगिक पद्धति से सिखलाता है तो उससे न तो कभी प्रयुक्त को हानि पहुँचती है और न प्रयोक्ता को। इसका कारण है कि चेले और गुरु, दोनों को अहं भाव नहीं रहता। योगनिद्रा में वे यह नहीं समझते कि मैं ही शक्ति का मालिक हूँ। बल्कि वे समझते हैं कि उस परम शक्ति की ही इच्छा मेरे मन, शरीर और इन्द्रियों द्वारा प्रकट हो रही है। वे केवल बुद्धि से इस सत्य को समझते ही नहीं वरन् साधना द्वारा इस सत्य का अनुभव भी करते हैं।

योगनिद्रा के प्रयोग के विभिन्न तरीके कौन-कौन से हैं? प्रयोक्ता को कैसे तैयार किया जाय? प्रयुक्त को किस पद्धति से योगनिद्रित किया जाय? योगनिद्रा का प्रभाव कब तक रहता है? दैनिक जीवन में इसका उपयोग क्या है? क्या टेलीफोन, तार और चिट्ठियों के द्वारा भी योगनिद्रा के प्रयोग सफल हो सकते हैं? हजारों मील दूर के व्यक्ति को बिना किसी physical contact के सूचनाएँ और निर्देश कैसे दिये जाएँ? ऐसी अनेक बातें हैं जो क्रमशः बतलायी जायेंगी।

योगनिद्रा के सिद्धान्त

हिप्नौटिज्म यदि कोई चीज है तो उसे यौगिक शक्ति को प्रकट करने वाली एक हल्की किरण ही कह सकते हैं। हमारे अन्दर शक्ति नाम की एक चीज है, और वह ऐसी छिपी याने ढकी हुई है कि प्रकट नहीं हो पाती। प्रकट होती भी है तो उस रूप-रंग में, जिस रंग का हमारा विचार, व्यवहार और स्वभाव होता है। इसलिए यदि हम अपने जीवन, मन और चित्त को साधना के द्वारा निर्मल एवं दोषरहित कर लें तो यौगिक शक्ति अपेक्षाकृत अधिक प्रस्फुटित होगी।

इसलिये योगनिद्रा का विषय हाथ में लेने के पूर्व साधक और पाठक, विचारक एवं समालोचक सब को अपने पूर्वमानित भ्रमपूर्ण विश्वास, जो उन्होंने आत्मविद्या और गुप्तविद्या के विषय में बना रखे हैं, मस्तिष्क से बिल्कुल ही निकाल देने चाहिये। योगनिद्रा एक स्वतन्त्र विज्ञान है। योगनिद्रा में प्रयोक्ता अपनी यौगिक-शक्ति (will power या personal magnetism) को प्रयुक्त में प्रवाहित करता है। इसे 'शक्ति-संचार' भी कहते हैं। गुरु जब शिष्य को दीक्षा देता है तो अपनी will power से अपनी शक्ति को शिष्य में transmit भी करता है।

साधक को चाहिये कि किसी एक विषय को लेकर दत्तचित्त होकर उसी के शोध व अभ्यास में लग जाय। साथ-साथ अपना व्यावहारिक जीवन, मन और मस्तिष्क भी हमेशा सन्तुलित रखे। नैतिक जीवन शुद्ध रखकर अपने शोध की योग्यता को बढ़ावे। यदि पूरे विश्वास और उत्साह से कोई इस साधना में लग जाए तो उसे निश्चय ही सफलता प्राप्त होगी। इस साधना में धैर्य ही सफलता की सीढ़ी है। असफलताओं को जो 'सीढ़ियों के कदम' समझ कर आगे बढ़ेगा वह निश्चय ही ऊपर पहुँचेगा, इसमें सन्देह नहीं।

साधना से एक विशाल ज्ञान-समुद्र तक पहुँचने का मार्ग मिलता है। थोड़ी भी साधना और अभ्यास करने से साधक को यह स्वयं पता चल जाता है कि आगे भी कुछ है। हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा का विषय नया और आकर्षक

होने पर भी इतना पुराना है कि उसके जन्म और विकास का हम अन्दाज नहीं लगा सकते। यह हमारे ऋषि और मुनियों की देन है, जिन्होंने अपना सारा जीवन ही इस विद्या के रिसर्च में लगा दिया था।

इस विद्या के अध्ययन का मतलब है मनुष्य के विचित्र मस्तिष्क, उसके स्वभाव और अनोखी शक्ति के रहस्यों की जानकारी प्राप्त करना। आत्मशक्ति का सर्वांगीण और सामंजस्यपूर्ण सुन्दर विकास ही हमारा लक्ष्य होना चाहिए किन्तु जो भौतिक स्वार्थ से प्रेरित होकर इस ओर आना चाहते हैं, उन्हें भी यह विद्या मदद करती है, क्योंकि योगनिद्रा का आधार है अपने अन्दर की आकर्षण-शक्ति को विकसित करना। आकर्षण-शक्ति हर एक में होती है, किसी में कम, किसी में ज्यादा। किन्तु जो अधिकांश लोगों को अपनी ओर खींचने की क्षमता रखता है, वही समाज का उपकार और उसका नेतृत्व करने में सफल होता है। इसलिए हर तरह से अपनी इस शक्ति को विकसित करना वाँछनीय है। ऐसे व्यक्ति ही कुशल नेता होते हैं, जो दूसरों को आकृष्ट या प्रभावित कर उनसे कार्य करा सकते हैं, आदेश दे सकते हैं।

मनुष्य भगवान की एक अद्भुत रचना है। भगवान ने उसे बड़ा-छोटा, ऊँचा-नीचा, मालिक या नौकर नहीं बनाया बल्कि यह मनुष्य की अपनी शक्ति पर निर्भर है कि वह अपने को जैसा चाहे वैसा बना ले। सच पूछिये तो मनुष्य अपना शिल्पी स्वयं है। जन्म और मरण वह अपनी इच्छा से प्राप्त करता है। पर अज्ञान के कारण उसे सत्य के इस नियम पर विश्वास नहीं है। जिस दिन विश्वास दृढ़ हो जाता है उसी दिन वह मनुष्य कुछ का कुछ हो जाता है। मनुष्य अपने भाग्य का भी निर्माता स्वयं है। मनुष्य के अंदर अद्भुत शक्ति है पर उसे कार्यकारी करने के लिए कुछ अभ्यास करना पड़ता है। शक्ति बन्द है, उसे खोलना और उसका उपयोग सीखना हमारे हाथ में है।

हमारे पूर्वज जो गुप्त विद्या को जानते थे, वे आधुनिक occultism या psychic powers के आविष्कारक थे। आज भी जो योगी और फकीर कभी-कभी इन शक्तियों को इस्तेमाल करते हुए पाये जाते हैं, वह आत्मविद्या का ही एक निम्न स्वरूप है। आत्मविद्या के आविष्कार की ऐतिहासिक तिथि नहीं बतलायी जा सकती। इन विद्याओं का पूर्ण ज्ञान किसी मनुष्य को किसी एक ही जन्म में प्राप्त नहीं होता। जिन्हें इन विद्याओं में स्वाभाविक रुचि और सफलता बचपन से ही प्राप्त होने लगती है, उनकी कमाई केवल

इसी जन्म की अर्जित की हुई नहीं होती। कई जन्मों से उनका साधन और अभ्यास चला आता है, जो वर्त्तमान जन्म में मूर्त होता है। इस महान् विद्या को लुप्त होने से बचाना हमारा कर्त्तव्य हो जाता है। इसलिए समय-समय पर जन-मानस के कुछ लोगों को इस ज्ञान परम्परा के क्रम में सम्मिलित और दीक्षित होना पड़ता है। यह practical mysticism है, जो वास्तव में है हमारे ऋषि-मुनियों की देन। आधुनिक मनोविज्ञान भी धीरे-धीरे भौतिकवाद से आगे बढ़ सूक्ष्म तत्त्वों की खोज में लग रहा है। यह अध्यात्मवाद की ओर पहला कदम है।

हिप्नौटिज्म के विषय में प्राय: लोगों की ऐसी धारणा बन गयी है कि यह कोई ऐसी विद्या है जिसके द्वारा प्रयोक्ता किसी को सम्मोहित कर अपना मतलब सिद्ध करता है। कमजोर दिमागवाले व्यक्ति बड़े दिमागवाले व्यक्ति से इस प्रकार प्रभावित हो जाते हैं कि स्वयं अपनी बुद्धि से फिर कुछ सोच-विचार नहीं कर पाते। किन्तु वास्तविकता क्या है, यह किसी को नहीं मालूम। यह एक निरापद एवं अत्यन्त उपयोगी विज्ञान है। यह मुझे अच्छी तरह मालूम हो चुका है और आप मुझसे सुनिये।

हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा केवल सुषुप्ति की पूर्वावस्था है। योगनिद्रा में प्रयोक्ता कृत्रिम नींद में प्रयुक्त को सुला देता है। सुलाने की चेष्टा वह 'सुझावों' के द्वारा करता है। जब मनुष्य स्वाभाविक निद्रा में सोता है तो धीरे-धीरे शरीर-चेतना से विमुख होकर उसका मन अन्दर चला जाता है। यह मन ही निद्रा में अपने संस्कारों और स्वभावानुरूप चित्र बनाकर स्वप्नों का द्रष्टा बन जाता है। किन्तु योगनिद्रा में निद्रा की अवस्था लाने के साथ-साथ प्रयोक्ता प्रयुक्त के मन की पकड़ अपने हाथ में रखता है। प्रयुक्त को एक ओर तो सोने की सलाह देता रहता है, किन्तु दूसरी ओर उसके मन को अपनी बातों में उलझा कर पकड़े भी रहता है।

मन एक अदृश्य और सूक्ष्म वस्तु है। इसे हम देख नहीं सकते, फिर भी जान तो सकते हैं। मन को उसके स्वभाव, कर्म और गुणों के द्वारा जाना जाता है। मन तक पहुँचा भी जा सकता है। प्रयोक्ता प्रयुक्त के मन को श्रोत-इन्द्रिय और वाक्-इन्द्रिय के द्वारा पकड़ता है। प्रयुक्त से लगातार बातें करते रहकर प्रयोक्ता उसकी श्रवण-शक्ति को सचेत रखता है। हर एक विवेकी व्यक्ति और साधक इस बात को अच्छी तरह जानता है कि मनुष्य की कोई इन्द्रिय बिना मन के संयोग के कार्य नहीं कर सकती। श्रवण-इन्द्रिय द्वारा

मन को पूर्ण निद्रा में ले जाकर और फिर भी स्वप्न न देखने देकर, प्रारम्भिक साधनाओं में मन को कर्णेन्द्रिय से बाह्य ज्ञान ग्रहण करते रहने की ट्रेनिंग दी जाती है। कुछ दिनों में मन इस कार्य का अभ्यस्त हो जाता है और दो-चार सिटिंग के बाद प्रयुक्त सोता रहकर भी प्रयोक्ता की आवाज सुनता रहता है। यह क्रिया स्वयं अपने आप भी की जा सकती है पर स्वयं करना अपेक्षाकृत कठिन होता है।

यदि इस principle को आप अच्छी तरह समझ कर उत्साहपूर्वक परिश्रम करने के लिए तैयार हों तो यह विद्या कठिन नहीं। पहली स्टेज का कार्य प्रयुक्त को सुलाना, साथ-साथ उसकी श्रवण-शक्ति को समाप्त होने से रोक रखना, याने सचेत और सक्रिय रखना है। दूसरी स्टेज में प्रयुक्त की वाक्-इन्द्रिय और मन को भी पकड़ रखना है। वाक्-इन्द्रिय मन के प्रकट होने का प्लेटफार्म है। वाणी के द्वारा मन अपने आप को प्रकट करता है। प्रयुक्त आगे की अवस्था में पूछे हुए प्रश्नों का उत्तर भी दे सके, ऐसी कोशिश करनी चाहिए।

किन्तु इन प्रयोगों को हाथ में लेने के पूर्व सबसे जरूरी होता है प्रयोक्ता की अपनी तैयारी। प्रयुक्त को treat करने के पहले प्रयोक्ता के लिए स्वयं कुछ साधनाएँ करना आवश्यक है। प्रयोक्ता अपने अन्दर की आत्मशक्ति को जगाये बिना दूसरे की आत्मशक्ति पर नियंत्रण नहीं पा सकता। तप ही बल है, 'तप आधार सब सृष्टि भवानी।' जिसने स्वयं तप नहीं किया वह दूसरों को प्रभावित करने में असमर्थ है। जिसने स्वयं विद्या नहीं पढ़ी वह दूसरों को विद्या-दान देने में असमर्थ है। जिसने स्वयं यंत्र-कला को नहीं जाना, वह दूसरों को यंत्र-ज्ञान नहीं दे सकता।

ठीक इसी तरह प्रयोक्ता को भी अपनी आत्मशक्ति जागृत करने के लिए कुछ साधना अवश्य करनी पड़ेगी। यह आत्मशक्ति ही योगशक्ति है, जो सब मनुष्यों के अन्दर है, किन्तु हमारी वासनाओं और संस्कारों के भार से आच्छादित है। कुछ लोग कहते हैं कि यह शक्ति मनुष्य में सोई हुई है। जाग्रत करने पर मनुष्य में अद्‌भुत शक्ति का विकास हो जाता है। कुछ इसे ग्रंथि रूप मानते हैं, जो आज के मनुष्यों के शरीर में सक्रिय नहीं है, अविकसित अवस्था में है।

योग-मार्ग इस शक्ति को जगाने का साधन भी बतलाता है, और वे साधन हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम तथा प्रत्याहार की साधनाएँ।

योगशक्ति के जागने पर मनुष्य में स्वाभाविक ही अनजानी आकर्षण शक्ति आ जाती है। इस आकर्षण शक्ति को प्रत्येक मनुष्य को अपने में इस प्रकार विकसित करना चाहिए कि पास आनेवाले हर एक व्यक्ति को उसकी उपस्थिति में पहले अभय प्राप्त हो। आनेवाला व्यक्ति उसे अपना हितैषी और मित्र समझे, ऐसी शक्ति विकसित करने के लिए क्या अभ्यास किया जाय?

वास्तव में योग-मार्ग में बतलाये हुए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि ही अन्तिम सत्य और पूर्णरूपेण आजमाये हुए वे साधन हैं। किन्तु जिस तरह मनुष्य के हमेशा से एक-सा ही प्राणी होने पर भी हर युग में उसके व्यवहार, बोल-चाल और रहन-सहन में परिवर्तन आ जाता है, उसी तरह योग के पुराने टेकनिकल नामों को भी आज बदलकर आधुनिक मनुष्यों की भाषा में ही बतलाने से साधारण जन उसे समझ पायेंगे और ग्रहण कर सकेंगे। यही कारण है कि हर एक संस्कृति-संस्थापक या धर्म-प्रवर्त्तक को हमेशा जन-साधारण की ही भाषा को अपनाना पड़ा। बुद्ध ने पाली अपनायी, नानक ने गुरुमुखी, तुलसी ने अवधी, सूर ने ब्रज। योग-संस्कृति का पुनरुत्थान तभी हो सकता है, जब उसे आज की प्रचलित भाषाओं में बतलाया जाय।



योगनिद्रा में पास देना

इसके पूर्व योगनिद्रा के विज्ञान और सिद्धान्त से आपको परिचित कराया गया। अब प्रैक्टिकल पक्ष बतलाया जायेगा। पास देना, नजर मिलाना, आज्ञा देना तथा दूर देश से भी योगनिद्रा के प्रयोग आदि के तरीके अब सिखलाये जायेंगे।

आपको मालूम है कि योगनिद्रा है क्या? केवलमात्र देहातियों की झाड़-फूँक विद्या, जिसका प्रचलन रोग हटाने, विष उतारने इत्यादि में किया जाता है! आपके मेस्मर और ब्रेड क्या थे? ओझा! और आप हिप्नौटिज्म सीखेंगे या मेस्मर और ब्रेड की ओझागिरी?

झाड़-फूँक द्वारा सूक्ष्म शरीर की बीमारी की जड़ को मैग्नेटिक करेन्ट द्वारा दूर किया जाता है; उस समय रोगी अचेत नहीं बल्कि अन्दर में रहता है।

अब भी देहात में झाड़-फूँक चलता है और अज्ञानी लोग उसे पाखण्ड समझते हैं, सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। पर नहीं, उस झाड़-फूँक का आधुनिक मनोविज्ञान से घना सम्बन्ध है। यह बात दूसरी है कि देहात की ओझागिरी, चैम्बर के बदले किसी छोटे देव-स्थल में चलती है और प्रयोक्ता सूट-बूट के बदले धोती, अंग्रेजी के बदले देहाती बोलता हो।

योगनिद्रा में चार चीजों—दृष्टि, वाणी, मीडियम और हथेलियों का उपयोग होता है। प्रयोक्ता किसी एक या दो या तीन या चारों तकनीकों को मिलाकर अपने लिए एक पद्धति बना सकता है। साधारणत: चारों का प्रयोग एक साथ होता है, किन्तु मुख्यत: हथेलियों का।

हथेलियों की क्रिया का नाम 'पास देना' है। पास के द्वारा प्रयोक्ता अपनी प्राण-शक्ति और आकर्षण-शक्ति से प्रयुक्त के रक्त-संचार और प्राण-संचार को कन्ट्रोल करता है। मनुष्य के अन्दर की शक्ति संकल्प के द्वारा कार्य करती है। त्राटक, पास, मीडियम और आज्ञा प्रयोक्ता के संकल्प के चार वाहन हैं।

पास देने के दो विधान हैं—स्पर्श पास (पास में शरीर छूना) और आकर्षण-पास (शरीर न छूना तब पास देना) याने contact pass तथा distant pass. स्पर्श-पास में उँगलियों से शरीर छूकर पास दिया जाता है। आकर्षण पास में

बिना छुए, दो इंच तक की दूरी पर से पास देकर प्रयोक्ता अपनी प्राणशक्ति और आकर्षण शक्ति का उपयोग करता है।

अवरोहण पास और आरोहण-पास

ऊपर से नीचे की ओर झाड़ना अवरोहण पास (hypnotic pass) है, इससे रोगी को अन्दर ले जाते हैं। आरोहण पास ऊपर की ओर झाड़ना याने उतारना है। इससे रोगी को बाहर लाया जाता है (de-hypnotic pass).

जब पास दिये जाते हैं तब प्रयुक्त में चार बातें होनी चाहिये। इन्हीं चारों को ध्यान में रखकर प्रयोक्ता को यह निश्चित करना चाहिये कि आगे क्या किया जाय?

1. आप कुछ रहस्यमय क्रिया करने जा रहे हैं—यह इम्प्रेशन प्रयुक्त के मन में डालिये (idea of wonder).
2. प्रयुक्त की उत्कट उत्कण्ठा हो जाय यह जानने की, कि अब आगे आप क्या करेंगे? इस तरह प्रयुक्त के अन्तर्ध्यान को अपनी ओर खींचिये (undivided attention).
3. प्रयुक्त का मन और मस्तिष्क दृष्टि-नाड़ियों के माध्यम से शिथिल हो जाय (relax the mind through optic nerves).
4. प्रयुक्त का आप में विश्वास हो जाय कि आप उसकी सच्ची मदद करना चाहते हैं (create confidence).

ये चार स्वर्ण-नियम मानकर प्रयोक्ता को आगे बढ़ना चाहिए। ये चार चीजें प्रयोक्ता की बातचीत और आचार-व्यवहार में प्रकट होकर, प्रयुक्त के मन के द्वारा सूक्ष्म शरीर को अपनी ओर आकर्षित करती हैं।

अब पास देने के कुछ प्रयोग भी जान लीजिये।

- 'आधा पास' शरीर के कुछ भागों पर दिया जाता है।
- 'पूरा पास' पूरे शरीर पर दिया जाता है।
- 'वाम पास' वाम भाग में देते हैं।
- 'दाहिना पास' दाहिने भाग में देते हैं।
- 'केन्द्रित पास' किसी एक अंग पर देते हैं।
- 'वृत्त पास' किसी एक प्रणाली पर उँगलियों से वृत्त बनाते हुए देते हैं।

पहली चार क्रियाएँ झाड़ने की हैं और शेष दो फूँकने की। स्पर्श-पास और आकर्षण-पास में इन छहों के प्रयोग किये जाते हैं।

योगनिद्रा और पास देने का तरीका

योगनिद्रा में पास का उपचारात्मक मूल्य है

प्रयोक्ता पास देने में एक हाथ भी काम में ला सकता है और दोनों हाथ भी। 'आधे पास' में दोनों हाथों को प्रयुक्त के सिर के ऊपर से झाड़ते हुए लाकर नाभि के पास से ही हाथों को दाहिनी ओर ले जाकर झाड़ दिया जाता है। आधे पास में सिर से पैर तक झाड़ने की क्रिया नहीं है। यह क्रिया तब की जाती है, जब शरीर के एक भाग में किसी प्रकार की पीड़ा हो तथा दूसरा भाग ठीक हो। पूरे पास में शिखा से लेकर पैरों के नख तक झाड़ने की क्रिया की जाती है।

'वाम पास' में प्रयुक्त के केवल बाएँ अंग को ही झाड़ा जाता है।

'दाहिने पास' में दाहिना अंग झाड़ा जाता है।

शरीर के किसी एक अंग का ही उपचार करना हो तो 'केन्द्रित-पास' की पद्धति उपयोग में लायी जाती है। भभूत लगाना, माथे को दबाना, शरीर के किसी एक केन्द्र पर त्राटक करना—ये सभी केन्द्रित-पास की ही विभिन्न पद्धतियाँ हैं।

'वृत्त पास' में उँगलियों की गोल-गोल घुमाकर क्रिया की जाती है, जैसा आपने कभी ओझाओं को गोल-गोल वृत्त हाथ से बनाकर मुँह से फूँक देते हुए देखा होगा। जादूगरों को गोलाकार डंडा घुमाते भी देखा होगा।

पास देते समय चार उँगलियों को (कनिष्ठा छोड़कर) काम में लाइये। हथेली को हमेशा इस प्रकार सामने रखिये कि आपकी उँगलियों के सिरों से आत्म-शक्ति प्रवाहित होकर प्रयुक्त के शरीर पर ही पड़ती रहे। हथेली औंधे प्याले की तरह प्रयुक्त के शरीर की ओर रहे। इसी प्रकार से हाथों की पोजीशन लेकर प्रयुक्त की शिखा से लेकर नीचे पैरों तक (जिस प्रकार का पास देना हो) हाथों को ले जाइये। इसी प्रकार हाथों को यदि प्रयुक्त के शरीर पर छूते हुए फेरेंगे तो वह 'स्पर्श पास' होगा और यदि शरीर से दो इंच ऊपर ही हाथ रखेंगे तो 'आकर्षण पास' होगा।

जब ऊपर से नीचे की ओर पास दिये जाते हैं तो प्रत्येक बार हाथों को नीचे ले जाकर झटक देना चाहिए। झटकने से ही रोग दूर होता है। इस तरह आत्मशक्ति द्वारा पीड़ा को खींचकर उतारा जाता है।

'वृत्त पास' में हाथों से आत्मशक्ति को शरीर के किसी एक स्थान पर कई बार विषम संख्या में देकर मुँह से फूँक दे दी जाती है।

'केन्द्रित पास' में सिर्फ अँगूठे का ही प्रयोग करते हैं। पर कुछ लोग अनामिका का प्रयोग भी करते हैं और कई मध्यमा और तर्जनी का। प्रयोक्ता को अपने लिए केवल एक तरीका अपनाना चाहिए। तभी वह अपनी संकल्प-शक्ति को प्रवाहित कर सकेगा। रोज-रोज तरीकों में परिवर्तन नहीं लाना चाहिये।

योगनिद्रित किन-किन चीजों से किया जाता है और दृष्टि-हिप्नौटिज्म, वाक्-हिप्नौटिज्म, अदृश्य-हिप्नौटिज्म इत्यादि अनेक अंग-उपांगों पर भी आगे बतलाया जायेगा।



योगनिद्रा में आज्ञाओं का स्वरूप

योगनिद्रित करने के तरीकों में झाड़-फूँक एवं पास देने की चर्चा पहले की गयी है। योगनिद्रित करने का दूसरा तरीका है आज्ञा देने (suggestions) का। प्रयोक्ता की वाक्-इन्द्रिय के द्वारा प्रयुक्त को अन्दर ले जाना। आज्ञा-पद्धति में और कुछ नहीं केवल प्रयोक्ता बोलता जाता है और प्रयुक्त को अपने संकल्पानुसार कार्य करने को कहता जाता है। प्रयोक्ता प्रयुक्त को लगातार कुछ-न-कुछ 'आज्ञा' देकर उसके सूक्ष्म शरीर से अपना सम्बन्ध कायम किये रहता है।

'आज्ञा' से भी वही प्रभाव होता है, जो पास देने से होता है। आज्ञा भी प्रयुक्त में एकाग्र-निष्ठा, ध्यान, विश्वास, मस्तिष्क की शिथिलता और चमत्कार के प्रति आकर्षण पैदा करती है, जिसे पूर्व में कहा जा चुका है।

'आज्ञा-पद्धति' में प्रयुक्त को आँखें बन्द करके बैठा या सुला दिया जाता है। उसे एकदम चिन्तारहित और उद्वेगहीन बनाने का प्रयत्न करना पड़ता है, क्योंकि अन्दर जाने के लिए प्रयुक्त का पहले शांत और स्थिर हो जाना आवश्यक है। उसके बाद प्रयुक्त को कुछ देर तक श्वास पर ध्यान व प्राणायाम कराये जाते हैं। प्राणायाम करने से प्रयुक्त प्राण के सहारे अन्दर जाता है।

प्रयोक्ता जब प्रयुक्त को आज्ञा दे, तब उसकी वाणी स्पष्ट होनी चाहिए। वाणी में मधुरता और अपनापन होना चाहिए, उच्चारण दृढ़ होना चाहिए और प्रयुक्त की विशेषता के अनुसार स्नेहादेश, वात्सल्यानुरोध और अनुशासन तथा हितैषिता के मिश्रित स्वरूप में होना चाहिए। आदेश और आज्ञाएँ ऐसी दी जाएँ, जो उसकी भावनाओं को ऊँचे से ऊँचा उठाने में समर्थ हों।

आज्ञा देते समय प्रारम्भ में बहुत सावधानी रखनी पड़ती है। प्रयुक्त के मन, विश्वासों और सिद्धान्तों को टटोलना पड़ता है। कोई भी ऐसा आदेश प्रयुक्त को न दिया जावे जो उसके विश्वास और विचार के प्रतिकूल हो। भावनाओं को ठेस लगने से प्रयुक्त में उल्टी प्रतिक्रिया होती है। जैसे, यदि प्रयुक्त में किसी प्रकार की बुरी आदत है तो प्रयोक्ता को कठोर आदेश और निन्दा से बचना होगा। उसके बदले प्रयुक्त की कमजोरियों के प्रति सहानुभूति और अपनी

सहायता की सच्ची इच्छा के प्रति प्रयुक्त को आश्वस्त कराया जाय। प्रयुक्त का एक पूर्ण चेतन अन्तस्तल होता है, जो किसी भी शब्द, विचार और सांकेतिक घटना से हिल जाता है। इस अन्तस्तल का मार्मिक बिन्दु कहाँ है, यह प्रयोक्ता को विचार-विनिमय और वाणी-विनिमय से खोजना होगा। कुछ देर प्रयुक्त के अन्तस्तल को टटोलने के बाद उसे अपनी बातों में रस लेने को प्रेरित कीजिये।

इतनी तैयारी करने के बाद साधारणत: प्रयुक्त प्रयोक्ता के प्रति अनुकूल भाव मन में जमा लेता है। इसके बाद प्रयोक्ता को धीरे-धीरे अपने विषय पर आना चाहिए। वह विषय क्या है? विषय वही होगा, जिस उद्देश्य से उसने प्रयुक्त को योगनिद्रित किया है। जैसे बीमारियों का उपचार, दोषों का निराकरण, सूक्ष्म-शरीर के संचित मल को बाहर निकालना, दिव्यादेश प्राप्ति, सूचना प्राप्ति का माध्यम, सूचना प्रसारण का आधार, कोषों का अतिक्रमण, इत्यादि।

प्रयोक्ता को विभिन्न उद्देश्यों के लिए आज्ञाओं के अलग-अलग तरीके निकालने होंगे। हर प्रकार के उद्देश्य की आज्ञाओं का ढंग अलग होगा। कुछ उदाहरण बाद में क्रमानुसार यथा-प्रसंग दिये जायेंगे।

आज्ञा-पद्धति में प्रयोक्ता के सामने चार मुख्य कार्य रहते हैं, (1) प्रयुक्त के चेतन-मन को पकड़ना, (2) प्रयुक्त को 'अन्दर' ले जाना, (3) उद्देश्य पूर्ति की आज्ञाएँ निद्रित-प्रयुक्त को देना और (4) प्रयुक्त को बाहर ले आना।

एक दिन में ही आप योगनिद्रा सीख लेंगे, यदि आपका यह अनुमान है तो ठीक नहीं। पहले दिन ही आप सिद्ध नहीं बन जायेंगे। शुरू में आपको 99% असफलता भी मिले तो भी प्रयोग करते जाना है। धीरे-धीरे असफलता का परसेन्टेज घटता जायेगा और सफलता का बढ़ता जायेगा।

आज्ञाएँ जब दूसरे से ली जाती हैं तो प्रयोक्ता और प्रयुक्त दो व्यक्ति होते हैं, परन्तु आशाएँ स्वयं अपने आपको भी दी जाती हैं और इसमें किसी दूसरी एजेंसी या प्रयोक्ता की भी जरूरत नहीं पड़ती। इस तरह की आशा को संकल्प (auto-suggestion) कहते हैं। आज्ञा-पद्धति का यह दूसरा स्वरूप है।

अपने संकल्प के द्वारा स्वयं अपने को योगनिद्रित करके अपना उपचार स्वयं करना conditioned reflex therapy कहलाता है। इसके लिए अलग conditioned reflex formulae होते हैं और हर प्रकार के रोगों व त्रुटियों का उपचार इसमें भी कर सकते हैं। इस प्रकार आज्ञा के दो स्वरूप हुए, एक बाहरी एजेन्सी द्वारा (suggestion), दूसरा स्व-एजेन्सी के द्वारा (auto-suggestion)। योगनिद्रा में आज्ञा कैसे दी जाती है, अब आगे सीखिये।

योगनिद्रा में आज्ञाएँ कैसे दी जाती हैं

योगनिद्रा का प्रयोग केवल उपचार के लिए किया जाता है। इस दृष्टि से इसे उपयोगी विज्ञान समझकर ये बातें यहाँ लिखी जा रही हैं, जो वास्तव में गुप्त विद्या ही रहनी चाहिए।

योगनिद्रा में आज्ञा का प्रयोग वाणी के द्वारा कैसे किया जाता है, इसका एक उदाहरण यहाँ लीजिये।

मान लें कि प्रयुक्त आपके पास उपचार के लिए आया है। पहले उसे अपने चैम्बर में ले जाकर कुछ 'आज्ञाएँ' देकर प्रयुक्त में उसकी प्रतिक्रिया को देखो। यदि प्रयुक्त आपकी आज्ञाओं को तुरन्त ग्रहण कर ले और आज्ञानुसार ही प्रतिक्रिया के लक्षण प्रकट हों तो समझिये कि प्रयुक्त योगनिद्रा के प्रयोग के लिए तैयार है।

प्रयुक्त को चैम्बर के ठीक बीचो-बीच में दोनों पैर मिलाकर खड़े होने के लिए कहो। सिर और पीठ एक सीधी लाइन में रखने का आदेश दो। दोनों हाथों को शरीर के दानों बगल में आराम से लटका लेने की आज्ञा दो।

अब प्रयक्त से कहो, 'अपनी दोनों आँखें बन्द कर लो और अपनी सभी मांसपेशियों को एकदम ढीली कर दो।'

प्रयुक्त ने अपने शरीर को एकदम ढीला कर दिया है या नहीं, इसकी परीक्षा इस प्रकार लो। प्रयुक्त को धीरे से धक्का देकर देखो। यदि वह गिर पड़े तो समझो कि वास्तव में उसने अपनी पेशियों को ढीला कर दिया था। प्रयुक्त को गिरने मत दो और उसका शरीर स्वयं संभाल लो।

अब प्रयुक्त के पीछे खड़े हो जाओ। अपने दोनों हाथ प्रयुक्त के दोनों कन्धों के पीछे रखो। प्रयुक्त के आज्ञाचक्र पर त्राटक करो। मन में एक, दो, तीन कहते हुए 60 तक की गिनती तक त्राटक करो। विशुद्धिचक्र पर भी त्राटक किया जा सकता है। फिर धीरे-धीरे अपने हाथों से प्रयुक्त की पीठ पर छूते हुए 'अवरोहण पास' दो। मन में दृढ़ संकल्प करो कि इस क्रिया द्वारा प्रयुक्त का आकर्षण तुम्हारी तरफ हो। एक मिनट ऐसा करो।

इसके बाद अपने हाथ को इस प्रकार प्रयुक्त के कन्धों पर रखो कि उँगलियों का प्रत्येक सिरा प्रयुक्त को छूता रहे और उँगलियों में से आत्मशक्ति प्रवाहित होकर प्रयुक्त के शरीर में जा सके। इसी तरह प्रयुक्त को तेरह बार छूते हुए 'अवरोहण पास' दो।

प्रयुक्त से कहना पड़ेगा, 'मैं तुम्हारे अन्दर अपने हाथों से शक्ति प्रविष्ट करा रहा हूँ। जब तक मेरे हाथ का स्पर्श तुम्हें प्राप्त है तुम ठीक हो, पर स्पर्श के हटते ही तुम गिर सकते हो। तुम्हारे न चाहने पर भी शरीर गिर जायेगा पर मैं तुम्हें संभाल लूँगा।'

ऐसा कहकर तुम धीरे से अपना हाथ ऐसे हटाओ कि प्रयुक्त भाँप न सके कि तुम हाथ हटा रहे हो। प्रयुक्त जरूर गिर पड़ेगा, परन्तु उसे पकड़ लेने के लिए सावधान रहो।

यदि प्रयुक्त न गिरे तो फिर एक बार प्रयास करो। इसी प्रकार अनेक बार अनेक ढंग से प्रयत्न करो, जब तक प्रयोग की कुछ टेकनिक, अनुभव से तुम्हारे हाथ न लग जाएँ।

ये तरीके पश्चिमी तरीके हैं जिनका हमेशा उपयोग नहीं हो सकता। सबसे निर्दोष और सुन्दर तरीका ऋषियों के ध्यान की पद्धति है।

उपर्युक्त प्रकार की कई सरल क्रियाएँ स्वत: भी निर्मित की जा सकती हैं। जैसे गाना, हँसना, घुटने टेकना, निद्रा लाना, पसीना लाना, सिर दर्द पैदा करना और हटाना इत्यादि के आदेश देना।

ये सब अभ्यास करते-करते आपको प्रयुक्त को कन्ट्रोल में करना आ जायेगा। किन्तु ये सब, ध्यान रखें, अभ्यास मात्र हैं, जिनसे प्रयोक्ता ट्रेनिंग देना सीखता है।

वास्तविक योगनिद्रा का प्रयोग उसके उपयोग (application) में है। कहाँ, कब, कैसे, किस पर और क्यों प्रयोग किया जाय, यह जानना और सीखना बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि तभी तो जन कल्याण किया जा सकता है। ऊपर प्रयोक्ता किस प्रकार आज्ञा दे, यह बतलाया है। किन्तु अपने-आप अपने को कैसे योगनिद्रित किया जाय, यह भी बड़ा रोचक और उपयोगी ढंग है 'स्वामी' (self master) बनने का। इसका भी तरीका सुनिये।

प्रयुक्त को स्वयं अपने चैम्बर में आराम की पोजीशन में बैठ जाना चाहिये। अपने शरीर और मांसपेशियों को शिथिल कर देना चाहिये और अपनी नासिका के अग्रभाग को पाँच मिनट तक लगातार देखते रहना चाहिये।

उसके बाद आँखें बन्द करके एकदम 'अन्दर' चले जाएँ। अन्दर जाने में निद्रा भी नहीं आनी चाहिये और न बाहरी जगत् की चेतना रहनी चाहिये।

जागृति और स्वप्न की देहरी पर पहुँचकर अपने संकल्प याने conditioned reflex formula को कई बार मन में दृढ़ता के साथ कहना चाहिए। यह है संकल्प-हिप्नौटिज्म या संकल्प-योगनिद्रा। इसमें आज्ञा स्वयं अपने आपको दी जाती है। इसे स्वयंसिद्ध योगनिद्रा कहते हैं।

स्वयंसिद्ध योगनिद्रा के लिए अपनी किसी आदत, बीमारी और कार्य का क्षेत्र अछूता नहीं रहता परन्तु संकल्प-योगनिद्रा में निम्न बातों का ध्यान रखना जरूरी है।

1. संकल्प के वाक्य निश्चित कर लिये जाएँ,
2. वाक्य छोटे हों,
3. एक ही प्रकार के वाक्यों को नित्य दुहराया जाय, अर्थात् वाक्यों की शब्द-रचना किसी हालत में बदल कर प्रयुक्त न हो, और
4. निश्चित समय पर प्रतिदिन दो बार संकल्प-योगनिद्रा का अभ्यास किया जाय।

'संकल्प-योगनिद्रा' का अच्छा समय है प्रातःकाल स्नान करने के बाद और रात्रि में सोने से पूर्व।

'संकल्प-योगनिद्रा' का एक तरीका आपको यहाँ मैंने बतलाया। और भी अनेक तरीकों से 'संकल्प योगनिद्रा' की जाती है, जिसे यथा-प्रसंग स्पष्ट किया जायेगा।



त्राटक द्वारा योगनिद्रा

यह बतलाया जा चुका है कि योगनिद्रा में पास कैसे दिये जाते हैं और आज्ञाएँ कैसे दी जाती हैं। अब यहाँ पर यह बतलाने की जरूरत है कि त्राटक के द्वारा हिप्नौटाइज किया जा सकता है तो कैसे।

त्राटक के द्वारा किसी अंग को मूर्छित किया जा सकता है, किसी व्यक्ति की निद्रित किया जा सकता है, किसी को कोई कार्य करने का आदेश दिया जा सकता है और किसी व्यक्ति को अपने प्रति आकर्षित भी किया जा सकता है। यहाँ तक कि दूर के व्यक्ति को भी योगनिद्रित किया जा सकता है किन्तु इस तरह की पोस्ट-योगनिद्रा की चर्चा आगे होगी।

योगनिद्रित करने के लिए प्रयोक्ता को त्राटक का अच्छी तरह अभ्यास होना चाहिए। त्राटक का अभ्यास करने के अनेक तरीके हैं और हर एक तरीके का अभ्यास अलग-अलग उद्देश्य से किया जाता है।

हिप्नौटिक शक्ति पाने के लिए काले बिन्दु पर ध्यान करना चाहिए। काले बिन्दु पर ध्यान करने से नेत्रों की आकर्षण-शक्ति एवं आदेश-पालन करने की शक्ति बढ़ती है।

काले बिन्दु पर ध्यान करने का तरीका यह है। पान के पत्ते पर काजल का एक बिन्दु बना लो। उस पत्ते को दीवाल पर अपनी दृष्टि की ऊँचाई पर रख लो। रोज दस मिनट प्रात:काल बिस्तर से उठते ही उस पर त्राटक का अभ्यास करो।

शाम को भी दिन रहते उस पर पाँच-सात मिनट त्राटक का अभ्यास करो। जिस तरह काले बिन्दु पर त्राटक से वशीकरण सिद्ध होता है, उसी तरह ज्योति पर त्राटक से प्रेत-पुरुष सिद्ध होता है। क्रिस्टल पर त्राटक करने से क्लेयरवायन्स होता है। काया पर त्राटक से कृष्ण-पुरुष सिद्ध होता है।

हठयोग की क्रियाओं में यही एक क्रिया है जिससे मनुष्य की यौगिक और आध्यात्मिक शक्तियों का चरम सीमा तक विकास किया जा सकता है।

वास्तव में त्राटक के द्वारा प्रयुक्त की चेतना प्रयोक्ता से संयुक्त हो जाती है। इसीलिए प्रयुक्त प्रयोक्ता के कहे अनुसार चलने लगता है।

त्राटक के द्वारा प्रयोक्ता अपनी संकल्प-शक्ति को प्रयुक्त में हस्तान्तरित करता है।

त्राटक करने से प्रयोक्ता की ओर प्रयुक्त अनजाने में आकर्षित होता है। त्राटक के प्रयोग के बिना हिप्नौटिज्म कभी सफल नहीं हो सकता।

हिप्नौटिज्म में प्रयुक्त को कृत्रिम निद्रा में सुलाना होता है। इस कृत्रिम निद्रा को त्राटक के द्वारा प्रयुक्त में प्रविष्ट कराया जाता है। प्रयुक्त को सबसे पहले तो प्रयोक्ता अपने प्रयोग-कक्ष में ले जाकर आराम के साथ बैठा देता है। उसके बाद वह अपनी अन्य तैयारियों के साथ-साथ त्राटक का भी प्रयुक्त के ऊपर प्रयोग करता है।

प्रयुक्त के ऊपर त्राटक करने के दो प्रभावशाली केन्द्र-स्थल होते हैं, जहाँ त्राटक करने से प्रयुक्त पर बहुत जल्दी प्रभाव पड़ता है। एक स्थान है भृकुटी के मध्य का जिसे भ्रूमध्य कहते हैं और दूसरा प्रभावशाली स्थान भ्रूमध्य के ठीक पीछे का स्थान है, जहाँ शिखा रखी जाती है। यह आज्ञा-चक्र का स्थान है।

प्रयोक्ता को पहले प्रयुक्त के सिर के पीछे आज्ञा-चक्र के स्थल पर पाँच-सात मिनट लगातार त्राटक करना चाहिए।

इसके बाद आज्ञाएँ देते समय भी प्रयोक्ता को अपनी दृष्टि बराबर प्रयुक्त के भ्रूमध्य पर टिकाकर रखनी चाहिए। सामने से त्राटक करते समय प्रयोक्ता को प्रयुक्त की आँखों में तेज निगाह से अपनी आज्ञा को मानसिक वाणी में दुहराते हुए देखना चाहिए।

यदि प्रयुक्त ने आँखें बन्द कर ली हों तो भ्रूमध्य पर त्राटक करना चाहिए। त्राटक करते समय अपनी संकल्प-शक्ति के साथ आज्ञाओं को मुँह से बोलकर या मन में तीन-चार बार दुहराना चाहिए।

प्रयुक्त को योगनिद्रित करने में पास और आज्ञा से भी अधिक शक्तिशाली होता है त्राटक, परन्तु त्राटक की शक्ति अभ्यास और विकास की मात्रा पर निर्भर करती है। त्राटक का प्रभाव तत्काल होता है। आप किसी को पाँच मिनट लगातार देखकर गिरा दे सकते हैं, बीमार कर सकते हैं या चंगा कर सकते हैं, किन्तु यह आत्मशक्ति के विकास पर निर्भर है। त्राटक एक ऐसी साधना है जो है तो बड़ी उपयोगी और प्रभावशाली, पर बिना गुरु के कदापि सिद्ध नहीं होगी।

यहाँ पर केवल विषय का उल्लेख मात्र काफी है। इसके प्रयोग और अभ्यास धीरे-धीरे आगे बतलाये जायेंगे।

योगनिद्रावतरण

साधारणत: निद्रा में मनुष्य को बाह्य ज्ञान नहीं रहता। कौन बोल रहा है, क्या बोल रहा है, कौन आया, कौन गया, ये सब बातें बिल्कुल पता नहीं रहतीं। इससे हम यह समझ लेते हैं कि व्यक्ति अचेत है, परन्तु निद्रावस्था में भी हमारी आत्मशक्ति चेतन रहती है, भले ही दूसरी दुनिया के स्तर पर। उस स्तर पर भी मन जगा रहता है पर स्थूल शरीर के द्वारा क्रियाशील नहीं रहता। शोधों से ऐसा पता चला है कि मनुष्य जब निद्रित रहता है उस समय उसका मन बहुत ग्रहणशील रहता है। इसके अतिरिक्त उसकी श्रवण, दृष्टि और ज्ञान की शक्ति बहुत ज्यादा बढ़ जाती है, क्योंकि स्थूल इन्द्रियों का बन्धन नहीं रहता।

सोए हुए आदमी का अवचेतन मन अनेक व्यक्तियों के अवचेतन मन के साथ सम्बद्ध रहता है। वास्तव में हमारे मस्तिष्क में इतनी क्षमता है कि वह दूसरों के मस्तिष्क से अपने को सम्बद्ध कर ले। प्राय: सभी मनुष्य न केवल अपने मस्तिष्क से ही विचारों की रचना करते रहते हैं, वरन् दूसरों के मस्तिष्क से निकले हुए विचारों से भी हमेशा परिचित होते रहते हैं और यथानुकूल उन्हें ग्रहण भी करते रहते हैं। इसी सत्य को योगनिद्रा के प्रयोग सिद्ध करते हैं। योगनिद्रक मनुष्य को निद्रित करके उसकी निर्बन्ध, मुक्त शक्ति से अनेक उपयोगी कार्यों को करने में मदद लेता है।

इसीलिए योगनिद्रित व्यक्ति से प्रश्न करने पर वह बहुत-सी ऐसी बातें बतला देता है, जिसे वह स्वयं जगे रहने पर नहीं जानता। प्राय: यह शक्ति अवचेतन मन को दूसरों के अवचेतन मन से प्राप्त हो जाती है। इसी बात को हिन्दू धर्म में इस प्रकार सामने रखते हैं कि आत्मा सर्वव्यापक है। एक मस्तिष्क को दूसरे मस्तिष्क से जोड़ा जा सकना सम्भव है। यही टेलिपैथी का साइन्स सिद्ध करने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु इन्हीं सत्यों के अन्तिम सत्य को ऋषि-मुनियों ने बहुत पहले ही स्पष्ट वाणी में वेदों की वाणी द्वारा निरन्तर प्रकट किया है।

अब भौतिकवाद की सीढ़ी से मानव सभ्यता पुनः अध्यात्मवाद, रहस्यवाद, मनोविज्ञान और परा विज्ञान की ओर बढ़ रही है। जब रेडियो से दूर-दूर की आवाजें सब जगह सुनी जा रही हैं तो दूर देशों की बातें या अदृश्य और अप्रकट को जानना भी सम्भव है।

योगनिद्रा में प्रयोक्ता का सर्वप्रथम कार्य है निद्रित करना। इसके लिए मुख्यतः चार उपाय होते हैं।

निद्रा आने के चार प्रमुख कारण हैं। उनमें पहला है थकान। जब मनुष्य के अंग या इन्द्रियाँ थक जाती हैं तो उसे निद्रा आ जाती है।

जब मनुष्य के अंग शारीरिक श्रम करते-करते थक जाते हैं तो उसे निद्रा आ जाती है, जैसे मजदूर आदि।

जब मनुष्य की आँखें थक जाती हैं तो निद्रा आ जाती है, जैसे पढ़ते-पढ़ते सोना।

जब मनुष्य के कान सुनते-सुनते थक जाने लगते हैं तो उसे नींद आ जाती है। जैसे संगीत सुनते-सुनते निद्रा आ जाना। रामायण या कथा या भाषण इत्यादि सुनते समय निद्रा का आ जाना।

इसका अर्थ यह निकलता है कि मनुष्य की पेशियों में जब तनाव आता है तो प्रकृति उसे शिथिल और विश्रांत करने के लिए निद्रा का स्वरूप ले लेती है। पढ़ते समय दृष्टि-नाड़ियों पर दबाव पड़ता है, इसलिए निद्रा जल्दी आ जाती है। श्रवण के समय श्रवण-नाड़ियों तथा पेशियों में तनाव पैदा होता है इसलिए निद्रा आ जाती है। इससे यह सिद्ध होता है कि थकान से निद्रा आती है।

निद्रा आने का दूसरा कारण होता है एकाग्रता। चित्त या मन के एकाग्र होते ही निद्रा का अवतरण होता है। निद्रा न आने की बीमारी का कारण होता है चित्त एकाग्र करने की शक्ति की कमी और चित्त की चंचलता। जिन्हें चित्त एकाग्र करना आता है उन्हें अनिद्रा या insomnia का रोग हो नहीं सकता। चित्त की एकाग्रता मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। यह कला बाहर से नहीं आती। यह तो मनुष्य के स्वभाव में निहित है।

इसलिए निद्रित करने के लिये चित्त को एकाग्र करने का कोई तरीका निकालना होता है।

निद्रा आने का तीसरा कारण है शून्यता। जब मन तथा चित्त शून्य होता है, किसी काम के प्रति रुचि नहीं होती है, मन में सूनापन रहता है तो मनुष्य सोता है। मन की शून्यता, इच्छाशक्ति और क्रियाशक्ति की कमी से निद्रा आती है।

इसलिए कमजोरी में मनुष्य सोता है। किसी काम को करने में अनिच्छा हो तो निद्रा आती है। मन शून्य हो, उदास हो, निष्प्रयोजन हो तो मनुष्य सोता है। इसलिए प्राय: अवकाश का समय मिलते ही लोग एक नींद ले लेने के आदी होते हैं, चाहे एक मजदूर हो या एक पेशेवर।

निद्रा का चौथा कारण शिथिलीकरण है। यदि शरीर में थकान न हो, एकाग्रता भी न हो और शून्यता का भाव भी न हो तो एक कृत्रिम उपचार याने शिथिलीकरण की क्रिया करने से निद्रा आ जाती है। शिथिलीकरण क्रिया में शरीर के अंगों में थकान या तनाव न होने पर भी उन्हें धीरे-धीरे शिथिल कराते हैं। अंगों, मांसपेशियों, नसों और स्नायुओं को औपचारिक रीति से शिथिल करने से भी निद्रा आ जाती है।

योगनिद्रा का मतलब है प्रयुक्त को subconscious stage में ले जाना। सुलाया क्यों जाता है इसकी आवश्यकता पहले बतलाई जा चुकी है और आगे भी प्रकाश डाला जायेगा। प्रयोक्ता का पहला काम है प्रयुक्त को योगनिद्रित करना। प्रयुक्त को सुलाने के लिए प्रयोक्ता सुलाने की चार प्रक्रियाओं में से एक का, या दो-तीन का, या चारों का उपयोग कर सकता है। यहाँ पर कई तरीके बतलाए जायेंगे, जिनमें से किसी एक तरीके को तुम अपने लिये चुन सकते हो। प्राय: एक तरीके में ऊपर बतलाई गई चारों प्रक्रियाओं का मिश्रण रहता है।

अब आगे प्रयुक्त को तन्द्रा में ले जाने के कई अनुभूत प्रयोग बतलाये जाएँगे।



योगनिद्रित करने के तरीके

पहला तरीका

1. अपने प्रयोग के कमरे में प्रयुक्त को बैठा दो। कमरे को शान्त, विस्मय और आनन्दजनक बनाकर रखो। मनुष्य के अवचेतन और अचेतन को पकड़ने के लिये ऐसा होना जरूरी है। मनुष्य के मन पर असाधारण चीजों की छाप जल्दी पड़ती है।
2. प्रयोक्ता को स्वयं अपनी तैयारी कैसे करनी होगी, इसे बाद में उपयुक्त प्रसंग पर बतलाया जायेगा, किन्तु यहाँ यह ध्यान में रखो कि प्रयोक्ता में स्वच्छता, स्निग्धता, शान्तता और असाधारणता (uncommonness) होनी चाहिये।
3. इसलिये प्रयोक्ता के वस्त्र विशेष हों पर साथ ही सरल वेशभूषा और स्वच्छता भी हो। मेस्मर स्वयं हाथ में एक छोटा डंडा जैसा लेकर अपने मरीजों के कक्ष में प्रवेश करता था तथा वह एक-एक कर मरीजों के पास जाता एवं उन्हें डंडे से छूकर, डंडे के द्वारा या हाथों के द्वारा 'पास' दिया करता था। इसी प्रकार हमारे यहाँ ओझा लोग भी झाड़-फूँक करते हुए पाए जाते हैं। मेस्मर इसी यौगिक शक्ति को 'एनीमल मैगनेटिज्म' कहा करता था।
4. प्रयुक्त के पास आकर इस प्रकार का हावभाव रखो जिससे उसे यह प्रतीक्षा हो कि तुम उस पर उपचार हेतु कुछ प्रयोग करने जा रहे हो। वास्तव में यह सब विस्तार और विशेष कार्यप्रणाली का अनुसरण केवल नये-नये सीखने वालों के लिये ही है। अनेकों-सैकड़ों बार प्रयोग करने के बाद तुम अपने लिये हिप्नौटाइज करने की एक विशेष पद्धति अपनाओ। फिर सहज और स्वाभाविक ढंग से, बिना किसी विशेष आडम्बर के ही प्रयुक्त को हिप्नौटाइज करने की कला अपने अन्दर विकसित करो।
5. प्रयुक्त के सामने खड़े होकर उसे सिर से लेकर पैरों तक असंस्पर्श-पास धीरे-धीरे दस बार दो। पास देते समय उँगलियाँ शरीर से छूने न पायें।

उँगलियों के पोरों से विद्युत धारा बहाते हुए पूरे शरीर को अपने शरीर से निकलती हुई प्राण-शक्ति से भरो। प्रयुक्त के शरीर की आकर्षण शक्ति तुम्हारी उँगलियों से विद्युतधारा-सी निकलती हुई प्राण-शक्ति को आत्मसात् कर लेगी।

6. अपनी दृष्टि प्रयुक्त की दृष्टि से बराबर मिलाये हुये रखो। या प्रयुक्त को अपने पास देते हुये हाथों को देखने दो। नेत्रों से भी हीलिंग करेन्ट उसके अन्दर प्रवेश करेगी। प्रयुक्त को सो जाने का मानसिक आदेश बराबर देते रहो।
7. प्रयुक्त यदि रोगी है तो पीड़ित अंग के ऊपर अवरोहण पास सात, नौ या ग्यारह बार दो। पास की संख्या हमेशा विषम रखो।
8. प्रयुक्त की आँखों में आँखें गड़ाकर या उसकी भृकुटी पर त्राटक करके दृढ़, निश्चयात्मक, गम्भीर, स्पष्ट और विनम्र स्वर में कहो–'अब तुम्हें नींद आ रही है। मैं गिनती गिन रहा हूँ। और सौ की गिनती तक आते ही तुम्हें निद्रा आ जायेगी। तुम निश्चय ही सो जाओगे।' या उससे ध्यान की क्रिया कराओ।
9. प्रयुक्त से आँखें बन्द कर लेने को बोलो और अपने साथ मन में गिनती दुहराते जाने को कहो। अब खूब स्पष्ट आवाज में तथा एक-एक गिनती में काफी टाइम लगाते हुये तुम गिनती गिनते जाओ। प्रयुक्त को निद्रा आवे तो आने दो।
10. इस प्रकार एक हफ्ते तक बराबर एक निश्चित समय पर प्रयुक्त पर प्रयोग करो जब तक तुम्हारी आज्ञाओं को उसका अवचेतन मन तत्क्षण ही न मानने लगे। तुम्हारे 'सो जाओ' कहते ही उसे सो जाना चाहिये।

दूसरा तरीका

प्रयुक्त को आराम से बैठा दो। या आराम से लिटा दो। कमरा अन्धेरा कर लो। उसके बाद प्रयुक्त को इस प्रकार आदेश दो–

1. दाहिना पैर मोड़ो, अब सीधा कर लो।
2. बायाँ पैर मोड़ो, सीधा कर लो।
3. बाएँ हाथ का अँगूठा हिलाओ एक बार।
4. बाएँ हाथ की प्रथम उँगली हिलाओ।
5. क्रमश: सब उँगलियाँ हिलाओ।

6. मुट्ठी बाँधो। खोल लो।
7. बायाँ हाथ ऊपर उठाओ, नीचे करो।
8. दाहिना हाथ उठाओ और गिराओ।
9. गहरी साँस लो और निकालो।
10. प्रयुक्त को चार सौ तक गिनती गिनने को बोलो।

गिनती गिनते-गिनते प्रयुक्त को नींद आवे तो आने दो। परन्तु उसकी आवाज को सुनते रहो। उसकी आवाज यदि रुक-रुक कर आने लगे या कभी अस्फुट हो जाये तो उस पर ध्यान दो और समझो कि वह अन्दर जा रहा है। जब आवाज अस्फुट होने लगे तो समझो तुम्हें प्रयास में सफलता मिल रही है। और आगे इस प्रकार करो।

प्रयुक्त से धीरे-धीरे परन्तु स्पष्ट और दृढ़ आवाज में बात करना शुरू कर दो। तुम्हारी आवाज धीमी होनी चाहिये। कमरे में किसी प्रकार का शब्द या खटका या ध्वनि या अन्य कोई आवाज नहीं होनी चाहिये।

तीसरा तरीका

प्रयुक्त को अंधेरे कमरे में आराम कुर्सी में बैठा दो या चित् लिटा दो। आँखें बन्द करके प्रयुक्त को कुछ देर अकेले कमरे में रहने दो। पाँच-सात मिनट। फिर बगल के कमरे में संगीत का रेकार्ड बजा दो जिसे प्रयुक्त सुनता रहे। धीरे-धीरे संगीत की आवाज कम करते जाओ। प्रयुक्त जब अर्द्धनिद्रित होने लगे तब धीरे-धीरे कमरे में प्रवेश करो।

प्रयुक्त के पास निःशब्द बैठ जाओ। प्रयुक्त के शरीर का स्पर्श न होने पावे। प्रयुक्त के कान के पास धीरे-धीरे बोलो। धीरज के साथ बराबर उससे बोलते जाओ जब तक वह उसका उत्तर न देने लग जाये। हो सकता है तुम्हें बहुत समय तक बैठना पड़ जाये और सफलता के लक्षण न दिखें। परन्तु धीरज के साथ अपना प्रयास करते चलो। इस बात की सावधानी रखो कि तुम्हारी आवाज बहुत जोर की न हो। तुम्हारी आवाज से कहीं प्रयुक्त की नींद न खुल जाये। प्रयुक्त को निद्रा में रहने दो परन्तु उसके अवचेतन मन को पकड़ो।

दीर्घ प्रयास के बाद यदि तुम प्रयुक्त के होंठों में फड़फड़ाहट देखो तो समझो कि सफलता के निकट हो। प्रयुक्त के कान के पास बराबर बोलते रहो। उससे प्रश्न करो, बातें करो, जवाब माँगो, बोलने को कहो। प्रयुक्त से

क्या कहना, क्या पूछना चाहिये यह अगले अध्याय में बतलाया जायेगा। यहाँ केवल निद्रान्वित करने का तरीका बतलाया जा रहा है।

चौथा तरीका

प्रयुक्त को प्रयोग कक्ष में बैठा दो। अपने हाथ में एक gazing crystal ले लो। प्रयुक्त से उसकी सूई पर लगातार देखने को कहो। देखते-देखते उसकी आँखें झपकने लगेंगी तब उसे अपनी आज्ञाएँ धीमे-धीमे स्वर से दो। उससे कहो कि 'अब तुम्हारी पलकें भारी हो रही हैं। फूल रही हैं। तुम्हें नींद आ रही है, नींद आ रही है, नींद आ रही है। तुम्हें थकान लग रही है। अब तुम एक मिनट भी जगे नहीं रह सकोगे। दोनों पलकें चिपक गई हैं। तुम सो रहो हो, तुम सो रहे हो।' इत्यादि।

प्रत्येक आदेश को तीन-तीन बार दुहराओ और प्रत्येक वाक्य धीरे-धीरे, स्पष्ट और लम्बा स्वर बना कर बोलो।

इस प्रकार प्रयुक्त का पहले चित्त एकाग्र कराओ, उसके बाद निद्रा के सुझाव दो।

पाँचवा तरीका

प्रयुक्त को आराम से कुर्सी या सोफे पर बैठा दो। कोई चमकती हुई वस्तु हाथ में लो। कोई चमकती हुई अंगूठी, बटन या फाउन्टेन पेन का गोल्डन कैप ही हाथ में ले लो। उस चमकती हुई वस्तु पर प्रयुक्त को अपनी निगाह स्थिर करने को कहो। धीरे-धीरे उस अंगूठी या बटन को, त्रिकोणाकार या वृत्ताकार या स्वस्तिक आकार में घुमाते जाओ। प्रयुक्त की दृष्टि बराबर उसी वस्तु पर रहनी चाहिये। बराबर ध्यानपूर्वक देखते रहने से उसकी दृष्टि-नाड़ियाँ थकने लगें और वह बिल्कुल गम्भीर निद्रा में सो जाये।

आँखें झप जाने के बाद भी तुम उसे निद्रा के सुझाव याने आज्ञाएँ देते जाओ। वह सो रहा है या सो गया है, इस प्रकार के सुझाव उसके अवचेतन मन में डालते जाओ।

प्रयोक्ता को हमेशा अपना स्थान प्रयुक्त की दाहिनी ओर रखना चाहिए तथा प्रकाश की ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिये कि प्रयुक्त अंधेरे में रहे और प्रकाश प्रयोक्ता के चेहरे पर पड़े।

छठा तरीका

यह तरीका एकदम पूर्ण और वैज्ञानिक है। प्रयुक्त को प्रयोग कक्ष में अंधेरा करके आराम के साथ पीठ के बल लिटा दो। उसकी दाहिनी ओर बैठ जाओ। प्रयुक्त से कुछ देर तक नासिकाग्र दृष्टि कराओ। पाँच मिनट। उसके बाद उसे आँखें बन्द करके लम्बी श्वास लेने को कहो। इसी तरह दीर्घ नि:श्वास छोड़ने को कहो। पन्द्रह-बीस बार उसे बोलकर पूरक और रेचक कराओ। प्रत्येक बार बोलो—साँस अन्दर लो, साँस छोड़ो।

इसके बाद गिनती के साथ उससे तालयुक्त साँस लेने को कहो। चार तक की मात्रा में श्वास अन्दर और चार तक की मात्रा में श्वास बाहर निकालने को कहो। मुँह से तुम गिनती बोलते जाओ और प्रयुक्त को तालयुक्त श्वास लेने और निकालने का आदेश अच्छी तरह समझा दो। एक से लेकर आठ तक की गिनती तुम बारम्बार दुहराते जाओ। 'एक, दो, तीन, चार' की गिनती तक प्रयुक्त को श्वास अन्दर लेना होगा। उसके बाद 'पाँच, छः, सात, आठ' में श्वास बाहर निकालना होगा। यह हो गई प्राणायाम की क्रिया। पहली क्रिया नासिकाग्र त्राटक-क्रिया थी।

प्राणायाम की यह क्रिया करते-करते प्रयुक्त को नींद आने लग जायेगी। तन्द्रा में वह जब प्रवेश करने लगे तो उससे बातें करना, आज्ञाएँ देना प्रारम्भ कर दो।

इसी प्रकार अन्य बहुत-से तरीके होते हैं, जिन्हें प्रयोक्ता धीरे-धीरे अभ्यास करने पर जान जाता है। यहाँ पर इतने नमूने काफी होंगे।



योगनिद्रा मोचन (जगाना)

एक कुशल योगनिद्रक बहुत जल्दी ही अपने प्रयुक्त को गहरी नींद में सुला देता है। जब प्रयुक्त योगनिद्रावतरण की अवस्था में पहुँच जाता है तब उससे बहुत-सी बातें पूछी जा सकती हैं। उसका अवचेतन मन सबका जवाब ठीक-ठीक देता है। यदि इस अवस्था में उसे कहा जाय कि तुम अमुक व्यक्ति को जानते हो और उसे तुम देख सकते हो तो प्रयुक्त ठीक वैसा ही विवरण देगा जैसा कि मानो वह उसे सामने खड़ा हुआ देख रहा है। यह हमारे मन की ही एक शक्ति है। यदि हमारा मन मस्तिष्क के तर्क-वितर्क, पूर्व स्मृति और बुद्धि से सोच-समझकर उत्तर देने की आदत छोड़ दे, तो वह धीरे-धीरे केवल वास्तविक सत्य को ही प्रकट करेगा। निद्रा के समय बुद्धि का कार्य रुक जाता है। बुद्धि calculation के आधार पर निष्कर्ष निकालती है, परन्तु हमारा अवचेतन सत्य को ही जानता है। सत्य क्यों और कैसे है, इसका पता उसे नहीं रहता।

योगनिद्रा में सुलाने के तरीके तो पहले बतलाये जा चुके हैं। अब यहाँ उस निद्रा से प्रयुक्त को जगाया कैसे जाय, यह बतलाया जायेगा।

प्रयुक्त को जगाने का कार्य बहुत ही सावधानी का कार्य है, और बड़ी सतर्कता से होना चाहिए। अन्यथा प्रयुक्त के ऊपर योगनिद्रित अवस्था में दी गई आज्ञाओं का असर रह जाने से नुकसान होता है।

प्रयुक्त को योगनिद्रा-मुक्त करने याने कृत्रिम निद्रा से जगाने के दो उपाय हैं–

- पास के द्वारा जगाना।
- जगने की आज्ञा देना।

पास द्वारा जगाना

सबसे पहले प्रयुक्त को धीरे-धीरे जाग जाने के लिए पहले से तैयार कर देना चाहिए। आज्ञा देते समय उसे कहना चाहिए कि अब मैं तुम्हें तन्द्रा से जगाने

जा रहा हूँ। तुम्हारी निद्रा को दूर करने के लिए मैं तुम्हें अपने हाथों से पास दूँगा। पास के द्वारा तुम्हारी निद्रा का प्रभाव दूर हो जायेगा और तुम स्वाभाविक तरीके से जाग उठोगे।

जगने पर तुम्हें हल्का मालूम होगा। तुम अपने को पूर्णत: स्वस्थ पाओगे। जागने पर तुम अपने को अधिक स्फूर्तिमय अनुभव करोगे। अब जागने का समय आ रहा है। पास समाप्त होने पर मैं तुम्हें संकेत दूँगा–एक, दो, तीन। तीन कहने के साथ तुम आँखें खोल देना।

इसके बाद प्रयुक्त को आरोहण पास नीचे से ऊपर दो। सात बार। पैरों से सिर की ओर पास देने पर प्रयुक्त के शरीर में रक्त संचार ऊपर की ओर दौड़ने लगेगा और धीरे-धीरे सारे शरीर में समान हो जायेगा। पास के बाद एक, दो, तीन बोलकर प्रयुक्त को जगने का संकेत दो।

आँखें खोलने पर धीरे-धीरे प्रयुक्त को अंग हिलाने की कहो और उठकर बैठ जाने को कहो।

कुछ निषेध के भी नियम होते हैं जो बाद में बताये जायेंगे।

आज्ञाओं द्वारा जगाना

पास के बिना केवल सुझाव के द्वारा भी प्रयुक्त को जगाया जा सकता है। यहाँ पर भी प्रयुक्त से कहो–अब तुम्हें जग जाना चाहिए। जगने पर तुम्हें अब तक की बतायी हुई बातों की स्मृति नहीं रहेगी। जगने पर तुम्हें ऐसा मालूम होगा जैसे तुम पूरी नींद से सोकर उठ रहे हो। जगने पर तुम्हें अपना शरीर हल्का और स्वस्थ मालूम होगा। किसी अंग में किसी तरह की पीड़ा नहीं रह जायेगी और जब मैं जगने का संकेत दूँ तो तुम जागकर आँखें खोल लेना। तुम्हें किसी तरह का भय या घबड़ाहट नहीं होगी। जैसे नित्य रात्रि में सोने के बाद सुबह तुम पूर्ण स्वस्थ दशा में उठते हो उसी तरह आज भी स्वाभाविक रूप में मेरा संकेत पाने पर जाग जाओगे।

इस प्रकार पास तथा आज्ञाओं के द्वारा ही प्रयुक्त की योगनिद्रा का मोचन करना चाहिए।

निषेध

- किसी भी हालत में प्रयुक्त को हिलाकर जगाना सख्त मना है।
- किसी भी हालत में प्रयुक्त के ऊपर पंखा इत्यादि झलकर जगाना मना है।

- प्रयुक्त के शरीर या मुख पर पानी के छींटे डालकर कभी भी जगाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।
- प्रयुक्त को कभी भी जोर से पुकारकर या हल्ला, शोर इत्यादि करके नहीं जगाना चाहिए।

प्रयुक्त यदि ऊपर के तरीके से न जगे तो भी पास और आज्ञा के अलावा तीसरा कोई उपाय काम में न लाओ।

सबसे पहले तो अपने मन से इस भाव को बिल्कुल ही हटा दो कि तुम प्रयुक्त को निद्रित अवस्था से वापस लाने में असमर्थ हो। पहले अपनी will power को दुहरा लो। मन में बारम्बार कहो, 'मैं जरूर जगा सकता हूँ और जरूर निद्रामुक्त कर सकता हूँ।'

प्रयुक्त को बराबर जगने का आदेश देते जाओ। यदि प्रयुक्त सोता हुआ जान पड़े और जवाब न दे रहा हो तो दस-पन्द्रह मिनट सो लेने दो। परन्तु याद रखो कि प्रयुक्त को सोता हुआ छोड़कर कहीं मत जाओ; उसके जागने तक वहीं रहो। यदि सोता हुआ छोड़कर कहीं गये और प्रयुक्त को जगाना भूल गये तो भयंकर खतरा हो सकता है।

प्रयुक्त को वही जगा सकता है और उसी को जगाना चाहिए जिसने उसे हिप्नौटाइज किया है। किसी भी हालत में दूसरा कोई उसके निद्रा-मोचन-कार्य को न करे। इस नियम का पालन हर हालत में होना चाहिए।

जिसकी आवाज ने प्रयुक्त को योगनिद्रित किया है, उसी की आवाज प्रयुक्त के कान में जानी चाहिए। दूसरा कोई बीच में न उससे प्रश्न पूछे, न आज्ञाएँ दे।

दस-पन्द्रह मिनट प्रयुक्त को सोने देकर पुन: उसे जगने की आज्ञा दो। पूर्ववत् बीच-बीच में बराबर जग जाने का आदेश तुम दुहराते रहो जब तक प्रयुक्त जग न जाय। यदि प्रयुक्त के जगने में देर हो तो घबराओ नहीं। नींद समाप्त होने पर उसे जगने का आदेश दो। वास्तविक निद्रा में चले जाने से ही प्रयुक्त को निद्रा-विमोचित करने में देर होती है। पर ऐसा केवल प्रारम्भ में ही होता है।



निद्रावस्था में अनुचित आदेश क्यों नहीं

हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा द्वारा मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से सम्बन्ध स्थापित किया जाता है जिसे सब्-कौन्श्यस कहते हैं। सूक्ष्म शरीर मनुष्य के स्थूल शरीर के ऊपर कन्ट्रोल रखता है। सूक्ष्म शरीर को जैसा ज्ञान कराया जाय वैसी ही प्रतिक्रिया स्थूल शरीर में होती है। इस सूक्ष्म शरीर को जागृति में हम नहीं पहचान पाते और न उस तक हमलोगों की पहुँच होती है। परन्तु किसी तरीके से स्थूल शरीर को निद्रित कर सूक्ष्म शरीर की पकड़ याने अवचेतन मन की पकड़ अपने हाथ में रखना, यही योगनिद्रा है।

मनुष्य के सूक्ष्म शरीर और सूक्ष्म मन में ग्रहणशीलता बहुत अधिक होती है। यह बहुत ज्यादा sensitive होता है। इसे जैसा भी आदेश दिया जाय यह वैसा ही अनुकरण करने लगता है। सुझावों को सूक्ष्म मन बहुत जल्दी ग्रहण करता है।

इसी शक्ति का उपयोग अनेक प्रकार से दैनिक जीवन के सुधार के लिए किया जा सकता है। किन्तु एक बात पहले भी बतलाई जा चुकी है और उसे पुनः दुहराया जाता है कि सूक्ष्म शरीर से अनुचित कार्य कभी भी नहीं कराया जा सकता। जिसमें कोई हानि न हो उसी कार्य के आदेश व सुझाव को यह ग्रहण करता है।

योगनिद्रित व्यक्ति के आदर्श, नैतिक भावना और धार्मिक उच्च-विचारों के विरोध में उसका सूक्ष्म शरीर कोई आज्ञा ग्रहण नहीं करेगा। बहुत-से लोगों को यदि इस बात का भय है कि प्रयोक्ता उसे योगनिद्रित करके कुछ अनुचित कार्य करायेगा तो यह भय निकाल देना चाहिए। सब्-कौन्श्यस तो आत्मा का एक छोटा अंश है। प्रयुक्त के अवचेतन मन के अलावा भी उसकी आत्मा होती है, जो ऐसी चीजों का होना पसन्द नहीं करती और साधारण अवस्था में बड़े-से-बड़ा हिप्नौटिस्ट भी किसी प्रयुक्त को अनैतिक, अधार्मिक, अमानुषी कार्य कराने में सफल नहीं होगा। अपनी आत्मा का संरक्षण प्रत्येक सूक्ष्म शरीर को प्राप्त रहता है।

कोई भी अनुचित आदेश पाने पर प्रयुक्त अपनी हिप्नौटिक तन्द्रा को झाड़कर तुरन्त जग जाता है और प्रयोक्ता के प्रति उसके मन में घृणा और अविश्वास का भाव जड़ कर लेता है। यह हिप्नौटिस्ट के रास्ते में एवं उसकी उन्नति में हमेशा के लिए रुकावट पैदा कर देता है। पहले तो योगनिद्रक ऐसा करते ही नहीं, क्योंकि योगनिद्रा और योगविद्या का प्रयोग केवल उपचार और आत्म-सुधार के लिए होता है। इस विद्या का स्वार्थ-साधन के लिए उपयोग सख्त मना है और दूसरा, यह प्रयोक्ता को ही नुकसान पहुँचाने वाला है।

कुछ तांत्रिक भले ही इसका उपयोग करते हों, पर इतना निश्चित है कि प्रकृति और ईश्वरीय विधान विद्या का दुरुपयोग करने नहीं देंगे। कोई प्राकृतिक बाधा उन्हें अवश्य रोकेगी। दुरुपयोग करने वालों को प्राय: शारीरिक कष्ट हो जाता है। प्रयुक्त की आत्मा स्वयं ही ऐसे आदेशों और आज्ञाओं को ग्रहण नहीं करती जो उसके अपने विश्वासों, उच्च भावनाओं का विरोध करते हों। अनधिकारी द्वारा अधिकारों का दुरुपयोग न हो, इसे ईश्वरी विधान रोकते और नियंत्रित करते हैं।

वास्तव में योगविद्या आत्मोपचार का तरीका है। योगी भी आत्मविद्या और आत्मशक्ति का ज्ञाता बनकर लोगों के दु:खों को दूर करने में उनकी मदद वैसे ही करता है जैसे डॉक्टर शरीर-विज्ञान और दवाओं का ज्ञान प्राप्त कर लोगों की सहायता करते हैं। योगविद्या भी आत्मा के साइन्स की खोज करनेवाले ज्ञान की एक शाखा है। इससे भयभीत होने का कारण नहीं, क्योंकि यह मनुष्य को स्वाभाविक रूप से विकास की ओर ही ले जाती है, उसे 'कुछ और अच्छा' बनाने का प्रयास ही करती है।

इसलिए यद्यपि सूक्ष्म शरीर प्रयोक्ता के आदेश ग्रहण करता और वैसा ही व्यवहार करता है तो भी इसमें किसी प्रकार की हानि की आशंका नहीं है।



हैलूसिनेशन या विभ्रम

जब प्रयुक्त गहरी कृत्रिम-निद्रा में सोता है तो उसकी ज्ञानेन्द्रियाँ बुद्धि से परिचालित नहीं होतीं। उनमें कुछ ऐसा परिवर्तन आ जाता है कि अन्तस्तत्त्व में जैसे आदेश पहुँचते हैं वैसा ही भ्रम उन्हें पैदा हो जाता है। प्राय: बहुत-से हिप्नौटिस्ट स्टेज पर सम्मोहन करते हैं और लोगों की ज्ञानेन्द्रियाँ वैसा ही देखने, सुनने और समझने लगती हैं जैसा उन्हें आदेश मिलता है। यह क्यों होता है?

ऐसा होना बिल्कुल स्वाभाविक और वैज्ञानिक है। मनस्तत्त्वों की ठीक-ठीक खोज की जाय तो पता चलेगा कि जाग्रत मन के अतिरिक्त भी प्रत्येक व्यक्ति का एक आन्तरिक व्यक्तित्व (inner-self) होता है, जिसे हम सूक्ष्म शरीर कह सकते हैं। इस सूक्ष्म शरीर तक पहुँच कैसे हो सकती है, यही इस पुस्तक का विषय है। सूक्ष्म शरीर की ग्रहणशीलता, कृत्रिम निद्रावस्था के समय बहुत अधिक बढ़ जाती है। और ऐसे समय में उसे जो भी सुझाव आदेश के रूप में दिए जाते हैं उन्हें वह शीघ्र ग्रहण कर लेता है।

योगनिद्रित व्यक्ति से कहा जाय कि वह एक बकरी देख रहा है तो यदि बकरी वहाँ नहीं भी होगी तो भी उसे वहाँ पर बकरी का होना मालूम पड़ेगा।

योगनिद्रित व्यक्ति से यदि कहा जाए कि घड़ी में बारह बज रहे हैं तो बारह न भी बजे हों, फिर भी उसे बन्द नेत्रों से घड़ी की सूई बारह पर दिखेगी।

योगनिद्रित प्रयुक्त को एक मामूली पेन्सिल को एक पिस्तौल बताया जाय तो उसे वह पेन्सिल पिस्तौल ही प्रतीत होगी।

योगनिद्रित प्रयुक्त को पानी देकर कहा जाय कि वह दूध, चाय या काफी पी रहा है, तो उसे पानी में दूध का ही स्वाद मिलेगा। ये परिणाम प्रयुक्त के impressionability के ऊपर निर्भर करते हैं।

हैलूसिनेशन और इल्यूजन (hallucination and illusion) भी इस प्रकार पैदा किये जा सकते हैं। यही स्टेज हिप्नौटिज्म में किया जाता है। वास्तव में सब्-कौन्श्यस की कल्पना शक्ति बड़ी तेज और स्पष्ट होती है। वह

किसी चीज का रूप तुरन्त तैयार कर लेता है। इसी विशेष गुण का रचनात्मक प्रयोग भी किया जा सकता है। सूक्ष्म शरीर के इस गुण के अनेक सुन्दर प्रयोग किए जा सकते हैं।

किसी खोई वस्तु का पता बताकर उसके रखे हुए स्थान का विवरण प्राप्त किया जा सकता है। बीमारी का कारण और उसकी दवा पूछी जा सकती है। किसी समस्या का समाधान पूछा जा सकता है। किसी विशेष कार्य में दिव्य-आदेश क्या हैं जाने जा सकते हैं।

ये सब बातें अलग-अलग प्रसंग पर बतलाई जाएँगी। यहाँ पर केवल 'विभ्रम' का स्वरूप बतलाया जा रहा है। विभ्रम याने हैलूसिनेशन में स्वाद-इन्द्रिय को धोखा देना, कर्ण-इन्द्रिय और नेत्र-इन्द्रीय को धोखा देने की अपेक्षा आसान है। इसी प्रकार गन्ध की इन्द्रिय को भी जल्दी ही भ्रमित किया जा सकता है, किन्तु कान और नेत्र को जल्दी नहीं।

प्रयुक्त से यदि कहा जाय कि यहाँ गुलाब के फूल की महक आ रही है और तुम एक ऐसे बगीचे में हो जहाँ गुलाब-ही-गुलाब हैं तो दो-चार बार कहने पर उसे गुलाब की गन्ध मिलने लगेगी।

इसी प्रकार के निर्दोष प्रयोग तुम भी प्रयुक्त पर कर सकते हो। प्रयोग सदा उसी सीमा तक होने चाहिए जहाँ तक तुम्हारा आचरण सभ्य, प्रयोजन शुद्ध, व्यवहार भद्र, सच्चाई और ईमानदारी पक्षपात-रहित है। इसके विपरीत होने पर तुम या तो अपना नुकसान कर बैठोगे या प्रयुक्त का। प्रयुक्त से अनुचित व्यवहार या उसके मनोनुकूल भद्र व्यवहार नहीं करने से तुम्हें बहुत बड़ा नुकसान होगा, यह याद रखो।

गन्ध प्रयोग का एक उदाहरण यहाँ पर देने से यह इन्द्रिय-विभ्रम स्पष्ट हो जायेगा। एक बार एक बड़ा पेशेवर हिप्नौटिस्ट एक बड़ी सभा में हिप्नौटिज्म का प्रदर्शन कर रहा था। एक पानी की बोतल उसके धक्के से (जानबूझ कर) उलट गई। उसने सभा को सूचित किया कि एक रासायनिक पदार्थ बोतल के गिरने से गिरकर फैल गया है और उसे आशा है कि जनता को इसकी तेज महक बुरी नहीं मालूम होगी। ऐसा सूचित कर वह अपने टेबल की संभाल में लग गया।

फिर देखा गया कि पहले पहली और दूसरी कतार के लोगों ने, जो स्टेज के निकट थीं, नाक पर रुमाल लगा ली। फिर कुछ पीछे के लोगों ने नाक बन्द की। दस मिनट के अन्दर-अन्दर सबके चेहरे उस कल्पित तेज महक से

सिकुड़ने लगे। यहाँ तक कि कुछ लोग महक को बरदाश्त न कर सकने की वजह से हाल के बाहर चले गये।

यह प्रयोग प्रोफेसर ग्रसेट ने किया था।

चरित्र सुधार, आत्म सुधार, भीषण समस्याओं के समाधान, अनेक दिव्य आदेश इत्यादि के अनुभूत प्रयोगों का, जो हमारी संस्था इन्टरनेशनल योग फैलोशिप द्वारा किए गए हैं, संकलन अलग से समय आने पर प्रकाशित किया जायेगा, केवल आत्मविज्ञान के सत्यों को प्रमाणित करने और उनकी जानकारी देने के लिये। वास्तव में आज के मनुष्य विकास की उस श्रेणी तक आ गए हैं जहाँ यह सब ज्ञान (जो अभी तक चमत्कार के रूप में जाना जाता था) और उसकी जानकारी प्रत्येक विकसित मस्तिष्क को उसी प्रकार उपलब्ध हो सकती है, जिस प्रकार विद्युत-शक्ति का ज्ञान आज उन सब को है, जो थोड़ा भी विकास-पथ पर चल रहे हैं। आज योग का प्रचार और अभ्यास मनुष्य के अन्दर रहने वाले आन्तरिक व्यक्तित्व को उसके बाहरी व्यक्तित्व के साथ जोड़ देने का प्रयास कर रहा है। जो सुप्रामेन्टल फैकल्टी आज कुछ इने-गिने लोगों को प्राप्त है, वह भविष्य में सर्व-साधारण की विशेषता बन जायेगी, इसमें संन्देह नहीं है।



योगनिद्रा की परीक्षा

यदि अब तक बतलाए हुए किसी भी तरीके से तुमने किसी को योगनिद्रित किया है, तो तुम्हें पहले यह परीक्षा कर लेनी चाहिए कि तुम्हारा प्रयोग वस्तुत: सफल हुआ है या नहीं। तभी तुम्हें उस निद्रित व्यक्ति को आगे कोई आदेश देने होंगे। आदेश दो प्रकार के होते हैं—एक तो योगनिद्रित करने के लिए दिए गए आदेश, और दूसरे योगनिद्रित अवस्था में दिए हुए आदेश जिसे पोस्ट-हिप्नौटिज्म भी कहते हैं।

इसलिए आगे बढ़ने के पहले प्रयुक्त की परीक्षा कर लो कि वह पूर्णत: निद्रित हुआ है या नहीं।

प्रयुक्त को योगनिद्रा के सुझाव दे देने के बाद उसकी उँगलियों और उसकी पलकों को ध्यान से देखो। थोड़ा-सा भी ध्यान देने पर लक्षणों से तुम्हें सोए हुए और जगे हुए आदमी के अन्तर का पता चल जाएगा। पलकें निश्चेष्ट रहनी चाहिए, जबकि जगे हुए आदमी की पलकें फड़फड़ाती रहती हैं। पुन: धीरे से अपने बाएँ हाथ के अँगूठे से प्रयुक्त की पलक को खोलकर देखो। यदि प्रयुक्त हिप्नौटाइज हो चुका है तो केवल उसकी पुतलियों का उजला भाग ही तुम्हें दिखेगा। किन्तु यदि वह हिप्नौटाइज नहीं हुआ है तो वह आँखें खोलकर जग उठेगा। यह पहला लक्षण है।

दूसरा लक्षण उसकी हथेलियों और उँगलियों में देखो। निद्रित प्रयुक्त की उँगलियाँ बिल्कुल सीधी नहीं रहेंगी। धीरे-धीरे जैसे-जैसे निद्रा गहरी होगी वे मुड़ती जाएँगी।

तीसरा लक्षण। प्रयुक्त की साँस गहरी और दीर्घ होती जाती है और एक समान तालयुक्त rythm के साथ चलती है। पहले की साँसों और अब की साँस को मिलाकर देखो। तुम्हें अन्तर स्पष्ट मालूम हो जायेगा।

अन्तिम परीक्षा। प्रयुक्त की परीक्षा आज्ञा देकर करो। यही अन्तिम और प्रामाणिक होगी। प्रयुक्त को इस प्रकार आदेश दो और प्रभाव देखो—‘तुम्हारा हाथ भारी हो रहा है। कड़ा हो रहा है। एकदम लकड़ी की जैसी कठोरता आ

रही है। लोहे के समान भारी हो रहा है। भारी हो रहा है, भारी हो रहा है, भारी हो रहा है। अब तुम उसे उठा नहीं सकते, उठा नहीं सकते, उठा नहीं सकते। तुम्हारा हाथ बहुत कड़ा हो गया है। तुम उसे घुमा-फिरा नहीं सकते। बिल्कुल भारी और कठोर हो गया है।'

इसके बाद उसे हाथ उठा कर देखने को कहो। यदि वह हाथ को न उठा सके तो समझो कि वह योगनिद्राभिभूत हो चुका है और तुम्हारा प्रयोग सफल हो गया है।

इसी प्रकार अन्य कोई आदेश देकर भी इसकी परीक्षा की जा सकती है। जैसे तुम यह आदेश दे सकते हो कि तुम्हें सिर दर्द है। दर्द बढ़ रहा है। बायीं तरफ से शुरू होकर दाहिनी तरफ जा रहा है। इसके बाद उसे ठीक हो जाने का आदेश दो। सिर दर्द दूर हो रहा है और दस तक गिनती गिनते-गिनते दर्द समाप्त हो जायेगा। इस प्रकार की आज्ञा दो और यदि वैसा ही असर पाओ तो समझो वह योगनिद्रित है।

प्रयुक्त को यह आदेश दे सकते हो जाड़े के दिनों में—'तुम्हें गर्मी लग रही है। तुम्हें पंखे की जरूरत है। तुमसे गर्मी अब बरदाश्त नहीं हो रही है। मौसम अचानक बहुत गर्म हो गया है। तुम्हें पसीना आने लग गया है।' इत्यादि। इसी प्रकार गर्मी के दिनों में 'ठण्ढक लग रही है, काँप रहे हो, तुम्हारे अंग ठण्ढ से सिकुड़ रहे हैं' इस तरह के आदेश दे सकते हो।

यदि प्रयुक्त इन सब आदेशों और आज्ञाओं के अनुकूल ही लक्षण प्रकट करने लग जाये तो समझो तुम्हें प्रयोग में शत-प्रतिशत सफलता मिल रही है। हिप्नौटिक अवस्था में प्रयुक्त प्रयोक्ता के आदेश को तुरन्त ग्रहण करता है। इसी प्रकार की अनेक परीक्षाएँ तुम स्वयं प्रयोग और अनुभव के आधार पर कर सकते हो।

यदि प्रयुक्त पर एक प्रयोग सफल न हो तो दूसरा प्रयोग करो। एक दिन में सफलता न मिले तो दूसरे दिन करो, तीसरे दिन करो, चौथे दिन करो। यह विज्ञान थ्योरी समझने का नहीं बल्कि प्रैक्टिस का है। केवल अभ्यास और प्रयोग पर ही सिद्ध होता है।



योगनिद्रित करने के विशेष तरीके

कभी-कभी प्रयुक्त को हिप्नौटाइज करना कठिन हो जाता है। साधारण तरीके उन पर सफल नहीं हो पाते। ऐसी स्थिति में कुछ विशेष पद्धति द्वारा उन्हें योगनिद्रित करने की आवश्यकता पड़ती है। यह विशेष पद्धति भी कोई निश्चित पद्धति नहीं होती बल्कि प्रयुक्त को देखकर, समझकर, उसके बौद्धिक विकास, मानसिक बनावट, विचार, सिद्धान्त इत्यादि को ध्यान में रखकर ही निकालनी पड़ती है। एकाध प्रयोग और उसके प्रभाव को देख कर ही अपनायी जाती है। फिर भी योगनिद्रा विज्ञान को सीखने या जानने की इच्छा रखनेवालों के लिये कुछ विशेष तरीकों को यहाँ बतलाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

यदि प्रयुक्त आसानी से योगनिद्रित न हो तो एक गोल्ड कैप की फाउन्टेनपेन ले लो। योगनिद्रा की शुरू में बताई हुई प्रक्रिया करने के बाद कलम के सिरे को प्रयुक्त की नाक पर हल्के-हल्के दौड़ाओ। नाक के सिरे से एक सीधी रेखा में कलम को ऊपर माथे तक ले जाओ। पुन: माथे से नाक के सिरे तक ले आओ। इस प्रकार पाँच-दस बार करो। भौहों के ऊपर भी दाहिने से बाएँ इसी प्रकार घुमाओ।

प्रत्येक मनुष्य के शरीर में नींद के कुछ केन्द्र होते हैं जहाँ पर किसी तरह का दबाव पड़ने से उन्हें नींद आती है। ये स्लीपिंग सेन्टर्स कहे जाते हैं। माताएँ बच्चों की नींद के सेन्टर्स जानती हैं। छोटे बच्चों को भी सिर ठोक कर, कभी पीठ थपथपा कर, कभी कान मलकर वे सुला देती हैं। ये सेन्टर्स वयस्कों में भी कुछेक स्थल पर होते हैं। प्राय: भ्रूमध्य के बीच के बिन्दु पर दबाव डालने से व्यक्ति जल्दी योगनिद्रित होता है। नाक के सिरे पर भी ऐसा ही केन्द्र है। मनुष्य की हथेलियों के मध्य-भाग में या उसकी तरफ दबाव डालने से भी उसको नींद में डाला जा सकता है।

योगनिद्रित करने का मतलब अर्द्धनिद्रित करना है। यह निद्रा स्वाभाविक और रोज की निद्रा नहीं। यह कृत्रिम रूप से लाई जाती है। साथ-साथ मनुष्य

की चेतना, सूक्ष्म शरीर, अन्तस्तल या अवचेतन मन—जिस नाम से भी पुकारा जाय, की पकड़ को प्रयोक्ता श्रवण और वाणी के माध्यम से अपने हाथ में रखता है। साधारण निद्रा में श्रवण और वाक् शक्ति लुप्त हो जाती है।

यदि प्रयुक्त साधारण रीति का अनुसरण करने पर निद्रित न हो तो उसके निद्रा के सेन्टर को खोजना चाहिये और उस पर हाथ के अंगूठे से या किसी अन्य वस्तु से दबाव डालना चाहिये। जहाँ तक हो सके शरीर का स्पर्श नहीं करना चाहिये। परन्तु कुछ प्रयुक्तों को, जो आसानी से योगनिद्रित नहीं होते, उन्हें स्पर्श-पास याने contact pass देना जरूरी हो जाता है।

अस्तु, प्रयोक्ता को अब स्वयं ही प्रयोग और अभ्यास से वह टेकनीक खोज निकालनी होगी जिससे वह प्रयुक्त को आसानी से योगनिद्रा में ले जा सके।



योगनिद्रा में संज्ञाशून्यता और जड़ता

योगनिद्रित अवस्था के द्वारा और भी कई प्रदर्शन किये जा सकते हैं। जिस प्रकार विभ्रम या हैलूसिनेशन पैदा किया जा सकता है, उसी प्रकार किसी भी व्यक्ति के शरीर को योगनिद्रा द्वारा एकदम कठोर, जड़वत् एवं मजबूत बनाया जा सकता है एवं उस शरीर का प्रयोग एक लकड़ी के तख्ते की भाँति करके दिखाया जा सकता है। प्राय: योगनिद्रक किसी व्यक्ति को योगनिद्रित करके, दो कुर्सियों को ढाई-तीन फुट के फासले पर रखकर, प्रयुक्त को उस पर सुला दे सकता है। प्रयुक्त की गर्दन के नीचे और एड़ियों के नीचे कुर्सी रहती है। बाकी बदन बिना किसी सहारे के वायु में रहता है। परन्तु प्रयुक्त का बदन इतना कड़ा रहता है कि वह झूलता नहीं और न गिरता है। जैसे किसी तख्ते या डंडे के दोनों सिरों को किसी आधार पर टिका दिया जाता है उसी प्रकार प्रयुक्त का शरीर भी दो कुर्सियों पर टिका रहता है।

ऐसी अवस्था में प्रयुक्त के शरीर पर यदि मनों बोझ भी रख दिया जाय तो उसे कोई नुकसान नहीं होगा और वह उस बोझे को सम्भाल सकेगा। सरकसों में प्राय: इस प्रकार के प्रदर्शन दिखाये जाते हैं। यह किस प्रकार सम्भव है? साधारणत: प्रत्येक व्यक्ति यही सोचता है कि ये सब असाधारण चीजें हैं जो हर किसी से नहीं हो सकतीं। परन्तु ऐसी बात नहीं। योगनिद्रा की ऊँची अवस्था में डालकर किसी भी व्यक्ति से ऐसा प्रदर्शन कराया जा सकता है, यदि आपरेटर एक कुशल योगनिद्रक हो। हर एक व्यक्ति में ऐसी शक्ति है परन्तु हर मनुष्य स्वयं उसका प्रयोग नहीं कर सकता। और यही हाल हनुमानजी का भी रहा होगा। उनमें भी शक्ति थी परन्तु उसका प्रयोग वे स्वयं नहीं कर पाते थे और सजेशन्स से ही उनकी शक्ति जागृत होती थी। याद दिलाने पर ही उन्हें शक्ति का ज्ञान होता था। योगशास्त्र हनुमानजी को जीव की बुद्धि का प्रतीक मानते हैं। बुद्धि का अर्थ है मानसिक शक्ति और विचार शक्ति। हर एक मनुष्य की बुद्धि को यदि एक निश्चित दिशा में सोचने को बाध्य किया जाय तो वह बुद्धि या विचार शक्ति उसी विचार के

अनुसार ही शरीर को प्रभावित करेगी, यह निश्चित है। जैसा विचार होता है उसी के अनुसार कार्य भी होता है। योगनिद्रा में प्रयुक्त अपने आपरेटर के आदेशानुसार ही अपनी बुद्धि या चेतना को चलने देता है। मनुष्य चाहे तो स्वयं भी बिना किसी दूसरे की मदद के इस तरह के कार्य को सम्पन्न कर सकता है। वहाँ जो आदेश वह प्रयोक्ता से ग्रहण करता है उसे स्वयं ही अपने मन या सूक्ष्म शरीर को देता जाता है। यह 'संकल्प योगनिद्रा' कहलाता है। इस पर आगे प्रकाश डाला जायेगा।

क्या तुम भी ऊपर बतलाये हुए प्रदर्शन का प्रयोग स्वयं करना चाहते हो? ये सब चीजें दीर्घ अभ्यास की हैं, फिर भी उनका तरीका जान लो। इन चीजों को जानना जरूरी और अच्छा है, क्योंकि भविष्य में यह सब ज्ञान जो आज अलभ्य है, वह आगे की सभ्यता वालों के लिये साधारण-ज्ञान का विषय हो जायेगा। पश्चिमी देशों में आज, जिसे पूर्वीय देश 'योग' के नाम से जानते हैं, उसे 'मेन्टल साइन्स' के नाम से प्रचारित किया जा रहा है। जिसे हम 'काया-प्रवेश' कहते हैं, उसे स्प्लिट परसनैलिटी के नाम से व्याख्या करने की कोशिश की जा रही है। बहुत-सी ऐसी चीजें हैं जिन पर प्रकाश डालने की जरूरत है, परन्तु यहाँ प्रसंग से अलग हट जाने का भय है। इन्टरनेशनल योग फैलोशिप के द्वारा इन विषयों पर शोध और इनके ऊपर साहित्य प्रकाशित करने की चेष्टा बराबर होती रहेगी। बहुत-सा साहित्य प्रकाशित भी हो चुका है।

अब, किस प्रकार किसी प्रयुक्त के ऊपर यह प्रयोग किया जायेगा, यह सुन लो।

किसी व्यक्ति को, जो प्रयुक्त बनने को तैयार हो, ले लो। उसे खड़े होने के लिए कहो। उसकी दोनों एड़ियाँ सटी रहें। प्रयुक्त के सामने खड़े हो जाओ। हाथ में एक स्फटिक पत्थर ले लो। यदि स्फटिक न मिले तो कोई काला, गोल पत्थर ले लो। पाँच मिनट प्रयुक्त को उस पत्थर पर देखने को कहो। उसके बाद प्रयुक्त को यह समझा दो कि अब जैसा-जैसा आदेश तुम उसे देते जाओगे वैसा ही वह करता जाएगा। प्रयुक्त को आँखें बन्द कर देने का आदेश दो।

अब अपने बाएँ हाथ को तुम प्रयुक्त की गर्दन पर पीछे की ओर रखो। दाहिनी हथेली, अंगूठा व उँगलियाँ प्रयुक्त के माथे पर रखो। अब पुनः उसे इस प्रकार आदेश दो।

'अब तुम सो जाओ, सो जाओ। तुम्हें नींद आ रही है, गहरी नींद आ रही है। सो जाओ, एकदम सो जाओ, बिल्कुल सो जाओ। तुम गिरोगे नहीं। मैं तुम्हें सम्हालता रहूँगा। तुम कुछ चिन्ता मत करो। मैं तुम्हें गिरने कदापि नहीं दूँगा। तुम निर्भय होकर सो जाओ। देखो, तुम्हें नींद आ रही है, तुम सोना पसन्द करोगे। सो जाओ। और गहरी नींद में, और गहरी नींद में, एकदम गम्भीर निद्रा में। हाँ, सोते जाओ, और गहरी नींद में जाओ, और, और गहरी नींद में' इत्यादि।

इस प्रकार का आदेश ग्रहण करते-करते प्रयुक्त योगनिद्रा में प्रवेश करेगा। अब पहले यह इतमीनान कर लो कि प्रयुक्त बिल्कुल सो गया है और पूर्णरूप से योगनिद्रित अवस्था में है, तब उसे दूसरा आदेश इस तरह दो।

'अब तुम अपने बदन को कड़ा करो, और कड़ा करो। हाँ ठीक। इसी प्रकार बदन को कड़ा करते जाओ, लकड़ी की तरह, लोहे की तरह। एकदम लोहे की तरह अपने शरीर को कड़ा बना लो। हाँ, और कड़ा, थोड़ा और कड़ा। कड़ा, कड़ा, एकदम कड़ा।'

प्रयुक्त को ठीक इसी प्रकार आदेशानुसार शरीर को कड़ा बनाने दो। उसके बाद किसी और आदमी की सहायता लेकर उसे उठा लो जिस तरह किसी बच्चे या आदमी को दोनों हाथों पर उठाया जाता है। दो कुर्सियाँ दूर के फासले पर रख कर प्रयुक्त की गर्दन और पैर कुर्सियों पर रखो तथा मध्य भाग को अपने दोनों हाथों से सहारा दिये रहो। प्रयुक्त की गर्दन के नीचे तकिया रख कर तब कुर्सी पर रखो। इस बात का भी सतर्कता से ध्यान रखो कि कुर्सियाँ खिसकने न पाएँ और प्रयुक्त गिरने न पाए। यह प्रयोग केवल सिद्ध योगनिद्रक के द्वारा ही किया जाना चाहिए, सबके द्वारा नहीं, क्योंकि इसमें खतरे की सम्भावना ज्यादा है।

अब प्रयुक्त को पुनः आदेश दो। 'हाँ, अपने शरीर को कड़ा करो, और कड़ा, और कड़ा। बिल्कुल ठीक। थोड़ा और कड़ा करो। इत्मीनान के साथ, निर्भयता के साथ। मैं तुमको सम्हाल रहा हूँ। तुम बदन कड़ा करते जाओ। तुम्हें कोई नुकसान नहीं हो सकता। तुम्हारी नब्ज की चाल एकदम ठीक रहेगी। तुम्हारा दिल मजबूत रहेग। तुम्हें कोई भय नहीं। तुम्हारा दिल बहुत मजबूत है और बहुत अच्छी तरह बराबर काम कर रहा है। तुम शरीर को कड़ा करो।'

इसके बाद प्रयुक्त के शरीर की परीक्षा करो कि यह एकदम कड़ा और मजबूत पुल की तरह है या नहीं। उसके दिल की धड़कन की चाल और नब्ज

की भी परीक्षा करो। अब तुम उसके ऊपर भारी वजन रख सकते हो। पहले एक आदमी का वजन रखो। फिर प्रतिदिन के प्रयोग और अभ्यास में धीरे-धीरे वजन बढ़ाते जाओ।

किन्तु दो बातें याद रखो। प्रयुक्त को इस अवस्था में देर तक हर्गिज न रखा जाय। दूसरा, केवल कौतूहल और निम्नकोटि की उत्सुकता की प्रवृत्ति को शान्त करने के लिए यह प्रयोग कदापि न किया जाय। ये दो चेतावनियाँ हैं। अन्य नियमों के साथ इनका पालन होना आवश्यक है।

प्रयुक्त को अब धीरे-धीरे योगनिद्रा-विमोचन की पद्धति के द्वारा जगाना चाहिए। सबसे पहले उसे उठाकर फर्श पर लिटा दो। फिर उसे सात बार 'आरोहण पास' पैरों से लेकर सिर तक, नीचे से ऊपर दो। इसके बाद उसे आदेश दो।

'अब अपने शरीर को थोड़ा ढीला कर दो। धीरे-धीरे ढीला करो, ढीला करते जाओ। अपनी पेशियों को ढीला करो। उन्हें तनावरहित करो। धीरे-धीरे शिथिल करते जाओ। अब तुम्हें जागना है, एकदम स्वाभाविक तरीके से। जागने पर तुम्हें हल्कापन और स्फूर्ति मालूम होगी। तुम्हारा शरीर एकदम स्वस्थ दशा में रहेगा। पहले से भी ज्यादा स्वस्थ, एकदम स्वस्थ। अब जागने का समय निकट आ गया है। जब मैं संकेत दूँ तो तुम जाग जाना। मैं एक, दो, तीन कहूँगा। तीन की गिनती पर जाग जाना।' इत्यादि।

इस प्रकार प्रयुक्त को पुन: जागृत करना चाहिए।

यह प्रयोग केवल उन्हीं को करना चाहिए जो अनुभवी हों। सर्वसाधारण के लिए यह ठीक नहीं।



योगनिद्रित अवस्था के आदेश क्या हों

पहले यह बतलाया जा चुका है कि योगनिद्रा में आज्ञाओं का क्या स्वरूप होता है। साथ ही यह भी बतलाया जा चुका है कि हिप्नौटाइज करने के लिए किस प्रकार के आदेश, सुझाव या आज्ञाएँ तुम्हें देनी पड़ेंगी। अब यहाँ योगनिद्रित अवस्था की आज्ञाएँ बतलाई जाएँगी।

वास्तव में योगनिद्रित अवस्था की आज्ञाओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है। पहले भाग में तो प्रयुक्त को निद्रित करने के आदेश दिये जाते हैं व निद्रावतरण की परीक्षा की जाती है। किन्तु दूसरे भाग में प्रयुक्त को वे आज्ञाएँ दी जाती हैं जिस उद्देश्य या संकल्प की पूर्ति के लिए योगनिद्रा द्वारा उपचार का रास्ता अपनाया जाता है, याने जिस कार्य की पूर्ति के लिए अपने को योगनिद्रित कराने के लिए प्रयुक्त तैयार हुआ रहता है। ये उद्देश्य इस प्रकार के हो सकते हैं—जैसे रोगों से मुक्ति पाना, बच्चों की बुरी आदतें छुड़ाना, शुभ संकल्पों का आरोपण करना, सूक्ष्म शरीरों की शोध करना, गुस्सा छुड़ाना, अच्छी आदतें लगाना इत्यादि।

रोगों का उपचार एक बहुत बड़ा उद्देश्य है योगनिद्रा का। रोग का कारण क्या होता है? क्या वे केवल शारीरिक ही होते हैं? इस पर यहाँ थोड़ा विचार करें।

प्राय: परिवार में आपसी कलह, द्वेष, मनमुटाव, तनाव, रोना-धोना सभी जगह होते रहते हैं। Suppressed emotions याने अच्छी-बुरी सभी भावनाओं को जबरन दबाकर या छिपाकर रखने से मनुष्य के व्यक्तित्व में अनेक दोष आ जाते हैं। वे दोष हमारे अटपटे व्यवहारों में व्यक्त होने लगते हैं। हर एक आदमी के व्यवहारों का तनिक नजदीकी से निरीक्षण करने पर तुम उसके अटपटे व्यवहार (unconscious behaviour) को जान सकते हो। पाँच मिनट के पर्यवेक्षण से वे अजीब व्यवहार अलग से पहचान में आ जाते हैं। बोली में दोष, मुद्रा में दोष, भावभंगिमा में दोष, ये सब मनुष्य के मानसिक उलझनों, अन्तर्द्वन्द्वों या भावनात्मक तनावों के लक्षण हैं। इसके अनेक उदाहरण हैं।

कोई व्यक्ति हर एक वाक्य के बाद गला साफ करने लगता है। कोई हमेशा नाक छूता रहता है। कोई दाढ़ी पर बिना जरूरत हाथ फेरते हैं। कोई उँगलियों को चटकाते रहते हैं। कोई पैर हिलाते रहते हैं। कोई बात-बात में किसी एक मुहावरे या शब्द का सम्पुट देकर बोलते हैं। इस प्रकार बहुतों में अनेक प्रकार के असाधारण व्यवहार पाए जाते हैं। इसकी छान-बीन से यही पता चलता है कि उन्होंने अपनी इच्छाओं को दबाकर रखा है।

जिनका मानसिक जीवन सुलझा, शान्त और स्पष्ट रहता है उनका व्यवहार सरल, स्पष्ट और सीधा रहता है। और ऐसे लोगों का स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है। जिन्हें परिस्थितिवश या लोक भय से या साधनहीनता के कारण अपनी इच्छाओं को दबाना पड़ता है, उन्हें जीवन में शारीरिक व्याधियों और मानसिक क्लेशों का सामना करना पड़ता है। इन सब का परिणाम कुछ काल पीछे शरीर पर पड़ता है। प्राय: रोगों का कारण अतृप्त इच्छाओं को दीर्घकाल तक मन में संजोकर रखना होता है। यदि विवेक और ज्ञान से इच्छाओं का त्याग किया जाय तो अच्छा है। पर ऐसा हमेशा हर कोई नहीं कर सकता। इच्छाएँ पैदा होना स्वाभाविक मानसिक कर्म है।

अवचेतन मन में इकट्ठे हुए इन suppressed विचारों और भावों के परिणामस्वरूप अनेक रोग, सिर दर्द, हरारत, साधारण सर्दी, बुखार, घुटनों में दर्द इत्यादि प्रारम्भ में होते हैं, जो निरन्तर बीमारी के चिन्तन और विचारों से पोषण प्राप्त कर कुछ दिन बाद कठिन रोगों का रूप धारण करते हैं।

बीमारी का एक और जबरदस्त कारण होता है। प्रत्येक के मन में दूसरों को अपनी ओर आकर्षित करने की एक अव्यक्त चाह होती है। आकर्षण की यही चाह दूसरे शब्दों में recognition की चाह, attention पाने की चाह भी कही जा सकती है। सम्मान, ध्यान, सेवा और प्यार पाने की इच्छाएँ एक ही इच्छा के अनेक रूप हैं। इसी इच्छा की पूर्ति के लिए कोई विद्या, धन या पद पाना चाहता है तो कोई अशक्त व बीमार बनना चाहता है। है तो अप्रिय, किन्तु फिर भी सत्य ही है। इसी प्रकार रोगों की शुरुआत हुआ करती है। ऐसे में रोगी को कृत्रिम निद्रा में सुला कर उससे रोग का कारण पूछा जा सकता है। उसके अवचेतन मन को यथार्थ परिस्थिति समझा कर उसे ज्ञान और विवेक दिया जा सकता है। उसके सूक्ष्म मन को स्वास्थ्यप्रद सुझाव और स्वास्थ्य व आरोग्य के आदेश देकर स्वस्थ बनाया जा सकता है। कौन-से आदेश और वे किस प्रकार से दिए जाएँगे, इसके प्रयोगात्मक उदाहरण के कुछ नमूने आगे बतलाए जाएँगे।

प्राय: ऐसा भी होता है कि जब व्यक्ति की इच्छाएँ परिवार, समाज और परिस्थितियों के कारण पूरी नहीं हो पातीं तो उससे उसको मानसिक तनाव उत्पन्न होते हैं। इन तनावों को जब वह स्वयं अच्छे ढंग से दूर नहीं कर पाता तो उन्हें वह दूसरे व्यवहारों द्वारा प्रकट करने लगता है। जैसे गुस्सा करना, झुंझलाना, बकबक करना, मार बैठना, बात-बात पर रोने लगना, अपना दुखड़ा हर किसी के सामने कहते रहना, दूसरों की निन्दा करना। ताश की लत, सिनेमा की लत, नशे की आदत—ये सब आदतें मानसिक और भावनात्मक तनावों को दूर करने के रास्ते हैं।

तनावों को दूर करने का स्वस्थ तरीका है सृजनात्मक कार्यों द्वारा, किन्तु वह विषय दूसरा है। यहाँ हम यही विचार कर रहे हैं कि रोगों के कारण केवल शारीरिक ही नहीं वरन् मानसिक भी होते हैं। मन से ही वे पुष्टि भी प्राप्त करते हैं। इस तरह के रोग योगनिद्रा के द्वारा दूर किए जा सकते हैं। रोगी को योगनिद्रा में सुलाकर उसे स्वास्थ्य के, अच्छी बातों के सुन्दर आदेश देकर उसका उपचार किया जा सकता है। योगनिद्रा का उपचारात्मक मूल्य बहुत अधिक है।

स्मृति का विकास करना, शैतान और बदमाश लड़कों को काबू में लाना, उन्हें पढ़ने में रुचि लेने की प्रेरणा देना, चोरी या अन्य बुरी आदतें छुड़ाना, इत्यादि कार्य भी योगनिद्रा के द्वारा आसानी से किए जा सकते हैं।

वयस्क जन भी योगनिद्रा की मदद से अपने चरित्र के सुधार व आत्मसुधार का काम कर सकते हैं।

अब यह कैसे किया जायेगा यह जानो। पहले तुम्हें प्रयुक्त को योगनिद्रा के आदेश के कोर्स को याने निद्रित करने के पूरे तरीके को अपनाना होगा। जब प्रयुक्त निद्रित हो जाय तो निद्रा की परीक्षा कर लो कि वह योगनिद्रा अवस्था में पहुँच गया है या नहीं। तदुपरान्त उसे जो कुछ समझाना या कहना चाहते हो, वह कहो। इसे 'योगनिद्रित अवस्था के आदेश' कहेंगे।

उदाहरण के लिए, मान लो कोई सात-आठ साल या इससे भी बड़ा बच्चा रात्रि में बिस्तर गीला कर देता है, तो उसके लिए पहले बताये हुए किसी एक तरीके से उसे पहले योगनिद्रित करना चाहिए। उससे कुछ देर त्राटक कराने के बाद, कुछ देर प्राणायाम कराओ। सिर्फ दीर्घ-पूरक और दीर्घ-रेचक। उसके बाद मन में गिनती करने को कहो। एक से पाँच सौ तक। साथ-साथ 'तुम्हें निद्रा आ रही है, तुम अब सो जाओगे, तुम्हें गहरी निद्रा आ रही है, अब सो जाओ, सो जाओ' इत्यादि आदेश देते जाना चाहिए।

ऐसा करने से वह पूर्ण रूप से योगनिद्रा याने कृत्रिम निद्रा में चला जाएगा। इसके बाद उसे कुछ और आदेश दो, जैसे तुम्हारी पलकें भारी हो गई हैं, चिपक गई हैं, अब तुम उन्हें खोल नहीं सकते, खोल नहीं सकते। या तुम्हारा पैर कड़ा हो गया है, अब तुम उसे मोड़ नहीं सकते, इत्यादि।

जब इतना हो जाय और तुम्हें अच्छी तरह इत्मीनान हो जाय कि प्रयुक्त योगनिद्रित अवस्था में आ गया है तब उसे इस प्रकार आदेश दो–

'तुम एक अच्छे लड़के हो, बहुत अच्छे लड़के। तुम आज्ञाकारी हो, विनम्र हो, सुशील हो। तुम्हें रात में बिस्तर गीला नहीं करना चाहिए। तुम्हें रात में बिस्तर में पेशाब नहीं करना चाहिए। तुम अच्छे लड़के हो, तुम मेरा कहना जरूर मानोगे, क्योंकि मैं तुम्हारी भलाई के लिए कहता हूँ। तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, स्वस्थ है। इसलिए रात्रि में पेशाब मत करो। तुम्हारी यह आदत छूट जायेगी, छूट जायेगी, छूट जायेगी। तुम यह निश्चय करो कि अब से मैं बिस्तर में पेशाब नहीं करूँगा। जो तुम सोचोगे वह तुम जरूर करोगे।' इत्यादि।

प्रत्येक महत्त्वपूर्ण आदेश को तीन बार दुहराना चाहिए। एक ही वाक्य को स्पष्ट और सुदृढ़ शब्दों में तीन बार दुहराओ। पन्द्रह दिन तक योगनिद्रित करने के बाद ऐसा आदेश दो। उस बच्चे की आदत जरूर छूट जायेगी।

योगनिद्रित करने का समय हमेशा एक रखो। योगनिद्रित करने का तरीका हमेशा एक रखो। अपनी सफलता में शंका मत करो। परिणाम में शंका मत करो। प्रयुक्त के साथ मानसिक सद्भाव रखो। प्रयुक्त के तुम परम हितैषी हो, यह भाव एक क्षण के लिए भी कम न हो।

ये सब कुछ ऐसे नियम हैं जिनका पालन सफलता की जरूरी शर्तें हैं। इनके बिना तुम सफलता की इच्छा मत करो।

एक बात की चेतावनी मैं बराबर तुम्हें दूँगी। कभी भी प्रयुक्त को किसी अनैतिक कार्य या उसके धार्मिक विश्वास के विरुद्ध आदेश मत दो। कभी भी उसे किसी अमानुषिक, हिंसक कार्य का आदेश मत दो, नहीं तो खतरा तुम्हारे ही सिर पर आवेगा। किसी की भी आत्मा, चाहे वह अनपढ़-गँवार, नीच-पतित या मूर्ख ही क्यों न हो, इन बातों की अनुमति नहीं देती। जैसे ही तुम ऐसे आदेश दोगे, प्रयुक्त की आत्मा विरोध करेगी। प्रयुक्त जग पड़ेगा और उसमें तुम्हारे प्रति अविश्वास और घृणा के भाव का प्राधान्य होगा। फिर तुम कोई भी कार्य नहीं करा सकोगे और तुम्हारी उन्नति का रास्ता हमेशा के लिए बन्द हो जायेगा। सभी तुम्हें संदेह की दृष्टि से देखने लगेंगे।

संकल्प-योगनिद्रा का एक और उदाहरण तुम्हें सिखलाऊँ। यदि किसी को असाध्य रोग हो, बीमारी बेइलाज हो तो इस प्रकार उपाय करो।

पहले रोगी को किसी तरीके से योगनिद्रा में सुलाओ। फिर निद्रा की परीक्षा कर लो। उसके बाद यह आदेश दो–

'तुम्हें आज रात्रि में एक स्वप्न आएगा। तुम देखोगे कि तुम बीमार हो, अनेक दिनों से बीमार हो और बीमारी से बहुत ज्यादा कष्ट उठा रहे हो। तुम्हें अपनी बीमारी की एक-एक बात की पूर्ण स्मृति स्वप्न में रहेगी और तुम्हारे अचेतन मन में केवल एक ही भाव, एक ही चिन्ता रहेगी। अपनी बीमारी की चिन्ता। तुम्हारी बीमारी कैसे छूटेगी, कैसे दूर होगी बस सिर्फ यही एक विचार स्वप्न में तुम्हारे अन्तस्तल में छाए रहेगा। और मैं तुमसे कहता हूँ, निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि आज स्वप्न में ही तुम्हें तुम्हारी बीमारी का निदान बतला दूँगा। तुम्हें स्वप्न में यह सब सिखलाया और बताया जायेगा कि तुम्हारी बीमारी किस प्रकार अच्छी होगी। उपचार का तरीका सविस्तार जब तुम्हें स्वप्न में बतलाया जाय तो स्वप्न की हर एक बात को तुम अच्छी तरह से नोट करते जाना। एक भी बात भूलना नहीं और मैं तुम्हें कहता हूँ कि निद्रा से जगने पर तुम्हें स्वप्न की पूरी स्मृति रहेगी। और जगने पर जब भी तुम मुझे देखोगे तो तुम्हें स्वप्न की पूरी घटना विस्तार के साथ याद आ जायेगी। फिर तुम मुझे स्वप्न की सारी बातें विस्तारपूर्वक बोलना। जैसा मैं इस समय कह रहा हूँ, ठीक वैसा ही तुम्हें आज करना होगा। तुम रात को स्वप्न में मुझे जरूर देखोगे। यह बिल्कुल निश्चय है।'

यह आदेश देने के बाद प्रयुक्त को योगनिद्रा से उसी प्रकार जगाओ जैसे पहले बतलाया जा चुका है। प्रयुक्त से यह भी कहो कि जब वह अभी जगेगा तो उसे शरीर हल्का मालूम होगा। पीड़ा दूर हो गई है, ऐसा मालूम होगा।

इस प्रकार किसी असाध्य रोग के उपचार का तरीका रोगी के ही द्वारा मालूम किया जा सकता है। प्रयुक्त जरूर निद्रा में उपचार का तरीका जानेगा, क्योंकि बीमारी से जितना रोगी प्रभावित रहता है, उतना प्रयोक्ता नहीं होता। इसलिये स्वप्न रोगी को ही आयेगा। कारण, उसके मस्तिष्क में रोग के विचारों की उपस्थिति अधिक तीव्रता से होती है।

स्वयं अपने ऊपर भी कोई रोगी इस प्रकार का प्रयोग कर सकता है। याने इस प्रकार का आदेश रोगी स्वयं भी अपने आपको देकर अपने रोग का इलाज जान सकता है। ऐसा बहुतों के जीवन में हुआ है। स्वप्न में उन्हें दवाइयों के नाम तक मालूम हो गए हैं।

योगनिद्रा द्वारा संज्ञाशून्य कर उपचार करना

पश्चिम में लोगों ने हिप्नौटिज्म का आविष्कार उपचार के लिये ही किया था। अठारहवीं शताब्दी और उसके कुछ काल बाद तक संज्ञाशून्य करने की दवाओं का आविष्कार और प्रयोग बहुत प्रचलित नहीं था। इसलिये चीर-फाड़ और नश्तर के कार्यों के लिये कुछ चिकित्सकों ने कृत्रिम निद्रा का तरीका अपनाना शुरू किया। अब तो अमोनिया, ईथर और इन्जेक्शन इत्यादि अनेक तरीके आविष्कृत हो गये हैं, जिससे रोगी को संज्ञाशून्य कर सर्जरी की जाती है। हिप्नौटिज्म का प्रयोग बाद में वर्जित हो गया, क्योंकि कई मरीजों में ऐसा पाया गया कि हिप्नौटिक अवस्था में जो आज्ञाएँ उन्हें दी गई थीं, उसके प्रभाव स्थायी रह गये। इसका कारण यही है कि उन चिकित्सकों को हिप्नौटिज्म के प्रभाव को दूर करने की विधि याने निद्रा से जगाने की सही-सही विधि मालूम न थी।

यदि प्रयोक्ता साधक, भक्त, योग का अभ्यासी, आत्मा के विज्ञान का जिज्ञासु, सदाचारी और दृढ़ संकल्पों वाला होगा तो इस प्रकार के किसी खतरे की आशंका नहीं होगी। इसलिये भारत में योग और धर्म की शिक्षाओं में सबसे पहले सदाचार, षट्-सम्पत्ति और इन्द्रिय निग्रह की शिक्षा दी जाती है। लोभ, क्रोध, मद, मोह और काम को त्याग देने से प्रयोक्ता की शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। उसकी संकल्प-शक्ति शुभ और कल्याणकारी होती है।

योगनिद्रा द्वारा शरीर को संज्ञाशून्य किया जाता है। आशाओं और सुझावों के द्वारा शरीर के किसी भाग की नाड़ियों की चेतना को वहाँ से हटाकर किसी दूसरे स्थान में केन्द्रित कर सकते हैं।

सबसे पहले प्रयुक्त को प्रयोग कक्ष में बिठा दो। शरीर के किसी भाग को यदि संज्ञाशून्य बनाना हो तो उसे पहले ऐसी पोजीशन में रखो कि वह पूर्ण सुविधाजनक हो। संज्ञाशून्य बनाने के लिये सबसे उत्तम है प्रयुक्त को किसी आरामदायक स्थिति में लिटा देना। इसलिये लिटाकर ही अपना काम शुरू करो।

प्रयुक्त को कुछ देर तक नासिकाग्र पर त्राटक कराओ। उसके बाद आँखें बन्द करके गिनती के साथ दीर्घ श्वास अन्दर लेना और बाहर लेना। चार तक

की गिनती के साथ श्वास अन्दर और चार तक की गिनती में श्वास बाहर। श्वास लेना और निकालना, ये दो मिलाकर एक आवृत्ति समझो। इस तरह पन्द्रह आवृत्तियाँ कराओ।

इसके बाद प्रयुक्त को आज्ञा दो, 'अब चित्त को श्वास पर एकाग्र करते हुए तुम सोते जाओ। तुम्हें नींद आ रही है, तुम्हें नींद आ रही है, तुम्हें नींद आ रही है, तुम सो जाओ। एकदम सो जाओ, खूब गहरी नींद में। तुम्हारी पलकें नींद से भारी होती जा रही हैं।' इत्यादि।

इस प्रकार जब प्रयुक्त योगनिद्रित अवस्था में चला जाये तब उसे दूसरा आदेश संज्ञाशून्यता का दो। प्रयुक्त योगनिद्रा में चला गया है या नहीं, पहले इत्मीनान कर लो, तब आगे बढ़ो।

अब इस प्रकार आदेश दो, 'तुम्हारे दाहिने हाथ की चेतना धीरे-धीरे सिमट रही है। दाहिना हाथ चेतनाशून्य हो रहा है। वहाँ का रक्त संचार एकदम रुक रहा है। दाहिने हाथ में तुम्हें किसी तरह की अनुभूति नहीं हो रही है। वहाँ से सारी चेतना हटकर ऊपर की ओर जा रही है। हाथ निर्जीव हो गया है। उसमें दर्द, ठण्ढक, गर्मी, किसी का भी तुम्हें अनुभव नहीं होता। तुम्हें अपने दाहिने हाथ का एकदम ज्ञान नहीं है। हाथ कहाँ है, किस तरह है, यह भी तुम्हें पता नहीं चल रहा है। तुमने अपनी चेतना के प्रवाह को मन के द्वारा हाथ की ओर बढ़ने से रोक दिया है। अभी कुछ देर तुम्हारा हाथ ऐसा ही रहेगा। पिन चुभाने पर भी तुम्हें हाथ का ज्ञान नहीं होगा, न दर्द होगा, न वेदना होगी।'

इस प्रकार हाथ को संज्ञाशून्य करते जाने का आदेश प्रयुक्त को बराबर देते रहो। प्रयुक्त से फिर पूछो कि क्या उसे ऐसा अनुभव हो रहा है। यदि हाँ कहे तो ठीक, और नहीं तो अपनी आज्ञाएँ फिर से दुहराओ। दृढ़ता से बोलो कि उसे वैसा ही अवश्य मालूम होगा। हाथ की ओर जानेवाली सभी नाड़ियाँ निर्जीव हो रही हैं, और पाँच मिनट के अन्दर ही उसका हाथ जरूर संज्ञाशून्य हो जायेगा।

तुम्हें पहली बार में ही सफलता मिलेगी। यदि वैसा न हो तो दुबारा करना चाहिए या दूसरे दिन, तीसरे दिन प्रयोग करो जब तक सफलता न मिल जाय। हाथ संज्ञाशून्य हुआ है कि नहीं, इसकी पहचान इस प्रकार करो। कोई नुकीली चीज या ऑलपिन उँगलियों के पोरों में चुभाकर देखो। यदि हाथ संज्ञाशून्य होगा तो प्रयुक्त कोई हलचल नहीं करेगा और यदि नहीं हुआ तो उँगलियों में हरकत होगी।

तत्क्षण योगनिद्रित करना

किसी व्यक्ति को तुम तत्क्षण योगनिद्रित तभी कर सकते हो जब तुम उसी प्रयुक्त को पहले भी योगनिद्रित कर चुके होगे। जिन्हें पहले योगनिद्रा कराई जा चुकी है, उन्हें दुबारा योगनिद्रित करना आसान हो जाता है। प्रयुक्त की योगनिद्रित होने की योग्यता बढ़ जाती है यदि उसने पहले भी योगनिद्रा का अभ्यास किया है। इसलिए प्रयुक्त को पहली बार ही यह आदेश दे दो कि भविष्य में जब कभी तुम उसे योगनिद्रित करना चाहोगे तो वह तत्क्षण निद्रा में चला जाएगा।

योगनिद्रित करने का परिणाम कभी भी बुरा या हानिकारक नहीं होता। जो ऐसा समझते हैं वे भूल करते हैं। हिप्नौटिज्म भी 'हिप्नौसिस' शब्द से बना है जिसका सीधा-सादा अर्थ to induce sleep याने artificial sleep (कृत्रिम, बनावटी निद्रा) होता है। वशीकरण विद्या एकदम दूसरी चीज है, जिसका मंत्र और सिद्धि से सम्बन्ध है। देवी सिद्धि, मंत्र सिद्धि इत्यादि तो गम्भीर साधना की चीजें हैं जो बीस वर्ष या बारह वर्ष तक साधना करने पर आती हैं।

योगनिद्रा द्वारा मनुष्य की मामूली शक्तियों का विकास सम्भव है जो थोड़ा-सा अभ्यास और साधना करने पर हर कोई कर सकता है। इसका प्रयोग मनुष्य के दु:खों, कमजोरियों और चिन्ताओं को दूर करने के लिए होना चाहिए। इसी को यदि बहुत ज्यादा विकसित किया जाय तो दिव्य दृष्टि, दिव्य श्रवण और दिव्य गन्ध इत्यादि की शक्तियाँ भी प्राप्त की जा सकती हैं।

योगनिद्रा के द्वारा व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर को ट्रेनिंग दी जाती है। जिस तरह बालकों को पढ़ाया जाता है, अक्षर, चित्रकला, संगीत, इत्यादि का ज्ञान कराया जाता है, उसी तरह व्यक्ति के सूक्ष्म शरीर को भी योगनिद्रित अवस्था में शिक्षा दी जाती है। जैसे, 'ऐसा मत करो, या तुम्हें वैसा करना चाहिए,' इस तरह से व्यक्ति को अच्छे कार्य को करने या बुरे कार्य को छोड़ देने की शिक्षा दी जाती है।

यहाँ पर इन बातों को इसी प्रसंग में बतलाया कि प्रयुक्त को तत्क्षण योगनिद्रित करने के लिए उसे इसी बात का आदेश योगनिद्रित अवस्था में पहले ही दे देना चाहिए। निद्रित प्रयुक्त को इस प्रकार आदेश देना चाहिए– 'आगे जब भी तुम्हें हिप्नौटाइज करूँ तो तुम मेरे आदेश का तत्क्षण पालन करना। जैसे ही मैं तुमको सो जाने को कहूँ, तुम तुरन्त सो जाना। एकदम उसी क्षण निद्रा में चले जाना। तुम ऐसा करोगे तो तुम्हारे रोग को दूर करने में मुझे बहुत सहूलियत होगी। यह आवश्यक है। मेरे आदेश का तुम्हें तत्क्षण पालन करना चाहिए। तुम्हारे आदेश पालन करने पर ही मैं तुम्हारी सहायता कर सकूँगा।'

निद्रावेश के समय दिए हुए आदेशों का गहरा प्रभाव पड़ता है। और यदि प्रयुक्त को प्रयुक्ता में विश्वास और श्रद्धा हो तो और जल्दी एवं गहरा प्रभाव पड़ेगा।

तत्क्षण योगनिद्रित होने से प्रयोक्ता का बहुत समय बच जाता है और प्रयुक्त को फिर योगनिद्रित करने के लम्बे विस्तार में जाने की जरूरत नहीं पड़ती। कम समय में अधिक कार्य और सफलता प्राप्त होती है, इसलिए तत्क्षण योगनिद्रित करने की विधि का महत्त्व अधिक है।

यदि ऐसा प्रयुक्त हो जिसे पहले कभी योगनिद्रा नहीं कराई गई है तो उसे तत्क्षण योगनिद्रित करने के लिए यह तरीका अपना सकते हो।

सबसे पहले तो नए प्रयुक्त को तुममें तुम्हारी योगनिद्रित करने की योग्यता का विश्वास होना चाहिए। इसलिए तुम पहले एकाध प्रयोग प्रयुक्त पर करो।

1. प्रयुक्त को एक कुर्सी पर बिठा दो। प्रयुक्त की आँखों पर कुछ देर त्राटक करो। प्रयुक्त को अपनी आँखों में देखने के लिए कहो। उसके बाद तुम पहले अपने मन में संकल्प लो कि मैं जैसा सोचूँगा प्रयुक्त वैसा ही करेगा। इसके बाद प्रयुक्त को अपना दाहिना हाथ सामने फैलाने को कहो। प्रयुक्त से कहो कि वह आँखें बन्द कर ले और अपना सारा ध्यान अपने हाथ की ओर ले जाए। फिर उससे कहो, 'तुम्हारा हाथ हल्का हो रहा है, हल्का हो रहा है, हल्का हो रहा है। वह इतना हल्का हो गया है कि तुम उसे हल्के कागज की तरह हवा में चारों तरफ आगे-पीछे घुमा सकते हो। हाथों में रूई की तरह हल्कापन, फूल की तरह हल्कापन तुम्हें महसूस होगा।' उसके बाद उसे हाथ को चारों ओर घुमाने को कहो। जब प्रयुक्त घुमा ले, तब दूसरा आदेश भारीपन का दो।

'तुम्हारा हाथ भारी हो गया है, कड़ा हो गया है। अब वह हिल नहीं सकता, हिल नहीं सकता, हिल नहीं सकता,' इत्यादि। फिर हाथ हिलाने को बोलो। प्रयुक्त को हाथ हिलाने में तुम असमर्थ पाओगे।

इसके बाद उसे कहो, 'अब मैं तुम्हें सो जाने के लिए कहूँगा। तुम तुरन्त सो जाना, तुरन्त सो जाना, तुरन्त सो जाना। आदेश पाते ही तुम तुरन्त अन्दर चले जाना, सो जाना। मैं दस तक की गिनती गिनूँगा और दस की गिनती के अन्दर ही अन्दर तुम जरूर गम्भीर निद्रा में सो जाओगे। तुम जरूर सो जाओगे। तुम सो जाओगे, मुझे विश्वास है।'

एक ही आदेश को बारम्बार दुहराने से प्रयुक्त के सूक्ष्म शरीर पर गहरा असर पड़ता है।

2. एक दूसरा तरीका भी इस प्रकार अपना सकते हो। प्रयुक्त को आराम से कुर्सी में बिठा दो। याद रखो, इन सब प्रयोगों के लिए तुम्हारा एक विशेष कमरा होना चाहिए और नित्य उसी स्थान पर तुम्हें अपने प्रयोग करने चाहिए। एक स्थान पर करने से उस स्थान का और वहाँ के वातावरण की मैग्नेटिक शक्ति बढ़ती है। इसलिए सभी महत्त्वपूर्ण कार्य हमेशा एक स्थल पर किए जाते हैं। भौतिक सुविधा के अलावा वातावरण में भी परिवर्तन आता है। एक सुन्दर बगीचे के पास और एक श्मशान के पास, दोनों के वातावरण में एक अदृश्य अन्तर रहता है।

अब प्रयुक्त के अत्यन्त निकट से तुम कई बार गुजरो। उसके एकदम नजदीक से बिल्कुल लापरवाह बन कर तीन-चार चक्कर लगाओ। उसके बाद एक झटके से एकाएक घूम कर प्रयुक्त की आँखों पर अपनी दृष्टि गड़ा दो। और त्राटक करते हुये बोलो–'तुम्हारे सिर में दर्द हो रहा है, बहुत तेज दर्द। दर्द बढ़ रहा है। तुम अभी धूप से चलकर आये हो। तुम्हारे सिर में धूप लग गई है। तुम्हारे सिर में दर्द है, दर्द है, दर्द है।' तीन बार कहो। (मौसम के अनुकूल तुम कोई और बात भी कह सकते हो)। एक बार हिप्नौटाइज कर लेने के बाद तो तुम जैसा कहोगे, चाहे वह तर्कसंगत या बुद्धिसंगत हो या न हो, प्रयुक्त वैसा ही अनुसरण करेगा। जाड़े के दिनों में तुम उसे गर्मी महसूस करने का आदेश दोगे तो वह गर्मी का अनुभव करेगा। गर्मी में ठण्ढक का अनुभव कर सकता है। पेट दर्द, दाँत दर्द भी अनुभव कर सकता है। यह इस बात का प्रमाण है कि केवल संकल्प एवं दृढ़ इच्छा में बहुत सृजनात्मक शक्ति होती है।

स्टेज हिप्नौटिज्म में भी तत्क्षण हिप्नौटाइज करने की जरूरत पड़ती है। इसके लिये दर्शकों के बीच से किसी भी चौदह से बीस वर्ष तक की उम्र के किसी बच्चे या युवक को बुलाकर लगातार suggestion देना शुरू किया जाता है। उसे बराबर आज्ञाएँ और सुझाव इस प्रकार दिये जाते हैं कि उसका मस्तिष्क तुम्हारी बातों में निरन्तर उलझा रहता है और प्रतिक्रियाएँ करता जाता है। उसे स्व-चिन्तन और अपनी बुद्धि से सोचने का समय नहीं मिलता। स्टेज प्रदर्शन में यह तरीका बहुत ही प्रभावशाली होता है।

लड़के को जो भी आज्ञाएँ दी जाती हैं उसकी प्लैनिंग पहले ही कर लेनी चाहिए। हिप्नौटिज्म का यह फार्मूला है कि प्रयोक्ता को 'क्या करना है' इसका ज्ञान अच्छी तरह और एकदम स्पष्ट होना चाहिए। उसकी विचार श्रृंखला एकदम सुनिश्चित और पूर्व विचारित होनी जरूरी है। वह Well thought out और well planned होनी चाहिए। साथ-साथ तीसरी शर्त है full confidence याने पूर्ण आत्मविश्वास की। सफलता की यही आवश्यक शर्तें हैं।

इसलिये यदि दर्शकों के बीच से प्रयुक्त चुनना हो तो बीस वर्ष के अन्दर के उम्र के व्यक्तियों को और जो बुद्धिमान एवं तेज मालूम पड़ता हो, उसे चुनो और स्टेज पर आने पर योगनिद्रा के आदेश या अन्य जो भी तरीका तुमने चुना हो, उसी तरह से अपना कार्य शुरू करो।



संकल्प योगनिद्रा

जिस प्रकार एक बाहरी एजेन्सी की मदद से प्रयुक्त अपनी आत्म चेतना को क्रियाशील बनाता है, अपने शरीर और मन की बीमारियों को दूर करता है, अपनी बुरी आदतों को छोड़ता और अच्छे विचारों एवं संकल्पों को ग्रहण करता है, उसी प्रकार वह स्वयं भी योगनिद्रा की पूरी क्रियाएँ अपने आप कर सकता है। यदि उसमें इसकी चाह हो। संकल्प योगनिद्रा का मतलब अपने को अन्तर्मुख कर सत्संकल्पों को जागृत करना है।

साधारण व्यक्ति स्वयं अपने को योगनिद्रित याने अन्तर्मुख नहीं कर पाते, क्योंकि यदि दूसरा व्यक्ति प्रयुक्त को बराबर जगाए न रखे तो प्रयुक्त को नींद आ जायेगी। साधारणत: यही होता है। योगनिद्रा की प्रक्रिया का स्वयं पालन कर यद्यपि अपने को कोई भी योगनिद्रित कर सकता है, किन्तु साधारणत: योगनिद्रित अवस्था में किसी दूसरे आदमी की मदद की जरूरत पड़ती है जो प्रयुक्त की चेतना को कन्ट्रोल में रख सके, साधारण निद्रा को आने से रोके और सूक्ष्म शरीर को निश्चित आदेश दे।

जिन्हें स्वयं अपने ऊपर इतना विश्वास है कि वे इस क्रिया को कर सकेंगे, उन्हें ही संकल्प योगनिद्रा का तरीका अपनाना चाहिए।

अपने को योगनिद्रित करने का मतलब कल्पना, विभ्रम, स्वप्न या हैलूसिनेशन नहीं है। इसको यूँ समझिये कि यह मानसिक तनावों को कम करता है, जिससे सोचने, समझने, देखने, सूँघने तथा सुनने की दिव्य और शक्तिशाली शक्ति के रास्ते के रोड़े हट जाते हैं।

संकल्प योगनिद्रा दिमाग की तनी हुई नसों को शिथिल करती है। दिमाग की अनेक विचार तरंगों को शान्त कर किसी एक वाईब्रेशन को पकड़ने में सहायता देती है। संकल्प योगनिद्रा शरीर के अन्य सब अंगों को शिथिल करती है, जिससे वे विश्राम लेने लगते हैं। पूरे शरीर को विश्राम कराके संकल्प योगनिद्रा उस 'चेतना' को पकड़ती है, जिससे सारा शरीर चेतनशील होता है, जिस चेतना या शक्ति से ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ जागृति में अपना-अपना काम करती हैं।

संकल्प योगनिद्रा को एक मेन्टल प्रोसेस और ट्रेनिंग मान कर ग्रहण करने में हर्ज क्या यदि उससे हमारा ब्रेन-पॉवर बढ़ सकता है। संकल्प योगनिद्रा यदि काल्पनिक प्रक्रिया भी हो तो भी उसके अनुसरण में कोई हानि नहीं है। उससे हमारा दिमाग जरूर शान्त होता है, उलझनें कम होती हैं, चिन्ताएँ दूर होती हैं और रचनात्मक शक्ति बढ़ती है। कल्पना शक्ति को यदि ठीक मार्ग से ऊँचा उठाया जाए तो यही सृजनात्मक शक्ति होती है। किसी भी कार्य को करने से पहले उसकी कल्पना की जाती है, याने एक मानसिक चित्र, एक सपना तैयार किया जाता है और तब वही सपना या चित्र क्रियात्मक रूप धारण करता है।

संकल्प योगनिद्रा द्वारा अपनी विल-पॉवर को बढ़ाया जाता है। यदि संकल्प शक्ति मजबूत हो और उसका ठीक-ठीक प्रयोग करना आ जाए तो मनुष्य नामक जीव के लिए कुछ भी असम्भव नहीं। यही राजयोग है।

यह आत्मसुधार का एक तरीका है। अपने अन्तःकरण को स्वयं ट्रेनिंग देना और उसकी गड़बड़ी को स्वयं दूर करना, यही है संकल्प योगनिद्रा।

जिन शुभ संकल्पों का आरोपण योगनिद्रा में कोई दूसरा व्यक्ति या गुरु करता है, उनका आरोपण व्यक्ति संकल्प योगनिद्रा में अपने आप करता है।

जाग्रत मस्तिष्क में, जब मन अनेक वृत्तियों में बँटा रहता है, दिए गए सुझाव व उपदेश हमारे अन्तःकरण में प्रवेश नहीं कर पाते। इसलिए ऊपरी मन और शरीर को कृत्रिम निद्रा में ले जाकर अपने आप को जो आदेश दिया जायेगा, उसका अन्तर्मन पर गहरा असर होगा।

अतएव संकल्प योगनिद्रा को अपने व्यक्तित्व के विकास, आत्मसुधार, आत्मनिर्माण और आत्मज्ञान का एक सुन्दर तरीका मानना चाहिए।

संकल्प योगनिद्रा कैसे?

पहला तरीका

किसी शान्त स्थान में स्थिर आसन में बैठ जाओ। आँखें बन्द करके कुछ देर श्वास को अन्दर जाते और बाहर आते देखो। पाँच मिनट करने के बाद आँखें खोलकर अपनी नासिका के अग्र भाग को देखो। पाँच-दस मिनट बिना दृष्टि हटाए, लगातार देखते रहो। धीरे-धीरे तुम पर स्वनिद्रा का असर होने लगेगा।

दूसरा तरीका

एकान्त कमरे में चले जाओ। आँखें बन्द कर पीठ के बल लेट जाओ। तकिया मत लगाओ। दोनों हाथ अपनी दोनों बगल में रखो। दोनों पैरों को एक-दूसरे से अलग रखो। हथेली ऊपर की ओर रहे। धीरे-धीरे शरीर के एक-एक अंग को शिथिल करो और उसमें मानस संचरण करो। दाहिने अंग के पैरों की ओर से मानस संचरण प्रारम्भ करके ऊपर की ओर चलते हुए दाहिने मत्थे तक जाओ। फिर सब बाएँ अंगों को उसी क्रम में किन्तु ऊपर से नीचे की ओर मानस संचरण करते-करते नीचे बाएँ अँगूठे में आकर समाप्ति करो।

इतना करने के पहले ही या करते-करते ही तुम पर स्वयंसिद्ध योगनिद्रा का असर हो जायेगा। तुम बीच में ही ऐसा अनुभव करोगे कि तुम पर कुछ नशा-सा छा रहा है।

तीसरा तरीका

प्रतिदिन पूजा व ध्यान के बाद आसन में बैठकर ही यह क्रिया करो। ध्यान के द्वारा यह अनुभव करो कि तुम्हारे सारे शरीर में बिजली का प्रवाह फैल रहा है। विद्युत् का करेंट सिर के अग्र भाग से, उँगलियों के पोरों से और शरीर में पैरों के सिरे से तुम्हारे अन्दर प्रवेश कर रहा है। धीरे-धीरे विद्युत्-प्रवाह की गति तेज होती जायेगी। ध्यान में जितनी तीव्रता होगी उतनी तेजी से करेंट भी दौड़ेगा, और तुम्हें वास्तव में अपनी उँगलियों में झुनझुनाहट उत्पन्न होती हुई मालूम पड़ेगी। प्रारम्भ में यह झुनझुनाहट हल्की होती है किन्तु बाद में धीरे-धीरे ध्यान की एकाग्रता के साथ-साथ तीव्र होती जाती है। इसी करेंट का स्पिरिचुअल हीलिंग में प्रयोग करना सिखलाया जाता है।

चौथा तरीका

कमरे में सुन्दर सुगन्ध की अगरबत्ती जलाओ। कमरा शान्त और सामान रहित हो। केवल पूजा की सामग्री उसमें होनी चाहिए। ऐसे कामों के लिये कमरा धुला और स्वच्छ होना भी जरूरी है।

अगरबत्ती जलाकर आँखें बन्द करके आसन में बैठ जाओ। कमरे में फैलती हुई सुगन्ध पर ध्यान करो और प्रत्येक श्वास के साथ उस सुगन्ध को अन्दर जाते और बाहर आते हुए ध्यान करो। सारा ध्यान सुगन्धमय प्राण पर लगाओ। गन्धेन्द्रिय की पकड़ मजबूती से रखो। इन्द्रियों से जो संवेदना,

अनुभूति या ज्ञान प्राप्त होता है उसके ऊपर मन को लगा देने से वह उस गन्ध या अनुभूति की खोज करते-करते अन्तर्मुख हो जाता है। अन्तर्मुखता एक ऐसी शारीरिक और मानसिक स्थिति है जिसमें व्यक्ति को अपनी awareness तो पूरी रहती है, परन्तु ध्यान किसी एक विषय के चिन्तन और मनन में लगकर बाहरी वस्तुओं व अन्य इन्द्रियों से आने वाली संवेदना की सूचनाओं के प्रति निरपेक्ष ही रहता है।

घ्राणेन्द्रिय के द्वार से संकल्प योगनिद्रा याने अपने को अन्तर्मुख करने का यह सरल तरीका है।

पाँचवा तरीका

गन्ध की भाँति शब्द के माध्यम से भी अन्तर्मुख अवस्था में जल्दी पहुँच हो सकती है। इस प्रयोग के लिए भी पहले आसन में शान्तचित्त होकर बैठ जाओ। यदि टेप-रेकार्डर हो तो उसमें सिर्फ ॐ की ध्वनि को रेकार्ड कर लो। टेप-रेकार्डर चलाकर उसकी ॐ की ध्वनि पर चित्त अटकाओ। ॐ की ध्वनि के कम्पन को अपनी श्रवण शक्ति से वैसे ही पकड़ने की चेष्टा करो जैसे कोई छोटा बच्चा गेंद को दोनों हाथों में पकड़ने की चेष्टा करता है। ध्वनि को पकड़ो, अच्छी तरह पकड़ो। मन को ध्वनि के निकट, और निकट ले जाओ। खूब अच्छी तरह से ध्वनि की तरंगों को अपनी चेतना से छू लेने का प्रयास करो। जैसा मेरे कहने का मतलब है ठीक वैसा ही यदि तुम समझ लोगे और प्रयास भी करोगे तो देखोगे कि कुछ देर में तुमको वैसा ही नशा-सा आने लगेगा जैसा अक्सर तुमने देहातों में औरतों को भूत खेलाते देखा होगा। गाँवों के कितने किस्से झूठे होते हैं और कितनों में सत्यांश होता है, कहा नहीं जा सकता। परन्तु इतना जरूर है कि मन की शक्तियाँ बड़ी गुप्त और साधारण surface level को देखने वाले भौतिकवादियों की समझ के परे हैं। जो अभ्यास करेगा वही समझेगा और समझने पर भी दूसरों को समझाने में अपने को असमर्थ पायेगा।

अब ऊपर बताए हुए पाँच तरीकों में से किसी एक तरीके को चुनकर पहले अपने को योगनिद्रित या अन्तर्मुख करो। पुनः अन्तर्मुख अवस्था में पहुँच कर अपने को स्वयं आदेश या suggestion उसी प्रकार दो जैसे दूसरों को योगनिद्रित अवस्था के बाद के suggestion दिये जाते हैं। इसका अर्थ यही है कि जब तुम अपने सूक्ष्म शरीर में पहुँच जाओ तो अपने मन में सत्संकल्पों को धारण करो।

आत्म-संकल्प के प्रयोग

आत्म-संकल्प के अन्तर्गत एक बहुत effective क्रिया यहाँ तुम्हें बतलाई जा रही है। यह क्रिया दिलचस्प है और सरल भी। अपने अन्दर की संकल्प शक्ति को जगाकर कैसे उसे अपनी इच्छित दिशा की ओर मोड़ना चाहिए, यह यहाँ सीखें।

कागज के तीन टुकड़े लेकर उस पर अपने तीन संकल्प लिखो। लिखावट साफ-साफ और बड़े-बड़े अक्षरों में होनी चाहिए। अपने एकान्त कमरे में टेबुल-कुर्सी पर बैठ जाओ, संकल्प लिखा हुआ एक कागज लो और अपने सामने टेबल पर रख लो। रीढ़ की हड्डी एकदम सीधी करके बैठो। कागज को टेबल पर छाती से एक बित्ते के फासले पर रखो।

अब दो मिनट तक नासिकाग्र दृष्टि करो। नाक के अगले सिरे को देखो। उसके बाद संकल्प लिखे हुए कागज को लो। अपने मन में उस संकल्प को बारम्बार पढ़ते रहो और तालयुक्त श्वास लेते रहो। यदि सम्भव हो तो प्रत्येक श्वास और प्रश्वास में इस संकल्प को मानसिक रूप से पढ़ो। पन्द्रह मिनट तक इसी प्रकार संकल्प सामने रखकर पहले नासिकाग्र दृष्टि और तब संकल्प-धारण करो।

दिन में तीन बार, तीन दिन तक ऐसा करो। चौथे दिन दूसरा संकल्प लो और उसे भी ठीक इसी प्रकार दिन में तीन बार प्रातः, दोपहर और शाम को करो और तीन दिन तक करो। संकल्प दुहराओ।

सातवें दिन तीसरा संकल्प लो। उसे भी इसी प्रकार तीन दिन तक दिन में तीन बार करो। इस प्रकार नौ दिन हो जायेंगे।

दसवें दिन तीनों संकल्पों को लो और बारी-बारी से दस-दस मिनट तक एक-एक संकल्प दुहराओ व धारणा करो। पाँच मिनट नासिकाग्र और दस-दस मिनट प्रति संकल्प पर मनन, पठन व धारणा करो। दिन में तीन बार दुहराओ तीन दिन तक। कुछ दिन बाद तुम देखोगे कि तुम्हारे अन्दर आशातीत परिवर्तन आ रहा है। पहले एक प्रकार का संकल्प लेकर इसकी

परीक्षा करो। जैसे यदि तुम अस्वस्थ रहते हो तो अपने तीन संकल्प इस प्रकार बनाओ–

1. मैं स्वस्थ हो रहा हूँ।
2. मैं अपनी बीमारी को स्वयं ठीक कर सकता हूँ।
3. मेरी संकल्प-शक्ति मुझे निरोग कर रही है।

इसी प्रकार अपनी संकल्प-शक्ति (will-power) को दृढ़ बनाने के लिए ऐसा संकल्प सूत्र बनाओ–

1. मेरी संकल्प-शक्ति बड़ी बलवान् है।
2. मैं जो सोचूँगा वैसा कर सकूँगा।
3. मेरी संकल्पशक्ति के सामने सब बाधाएँ झुकेंगी।

इसी प्रकार के संकल्प बनाकर तुम अपने अन्दर सद्‌गुणों का विकास तथा दुर्गुणों की धीरे-धीरे उखाड़ फेंक सकते हो। यहाँ पर कुछ संकल्पों के और नमूने भी तैयार करके दिए जाते हैं। इसमें आवश्यकतानुसार हेर-फेर भी लाया जा सकता है। परन्तु संकल्पों के शब्द हमेशा एक ही रहने चाहिए।

बहुत से लोग प्रातःकाल उठना चाहते हैं पर विल-पॉवर की कमी से नहीं उठ पाते। विद्यार्थियों की भी यही समस्या है। इसलिए अध्ययन व साधना के लिए प्रातःकाल चार बजे उठने का नियम बनाओ। संकल्प लो–

1. मैं प्रातः चार बजे जरूर उठूँगा।
2. मुझे चार बजे उठकर साधना करनी चाहिए।
3. चार बजे उठने से मेरी स्मृति और आध्यात्मिक शक्ति का विकास होगा।

यदि तुममें क्रोध है तो उसके लिए भी तीन संकल्प बनाओ और ऊपर के फार्मूले के अनुसार बारह दिनों तक अभ्यास करो। एक नमूना लो–

1. मैं गुस्सा नहीं करूँगा।
2. कोई कारण होने पर भी मैं गुस्से को कन्ट्रोल में रखूँगा।
3. मैं गुस्से में अपनी शक्ति का अपव्यय न होने देकर उसे दूसरे अच्छे कामों में उपयोग करूँगा।

कुछ व्यक्ति नित्य किसी-न-किसी से लड़ पड़ते हैं। चाहे घर में या घर के बाहर। और शाम को उन्हें स्वयं अफसोस होता है। पर अपनी वृत्ति पर परिस्थिति आने पर नियंत्रण रखने में असमर्थ होते हैं। पति-पत्नी झगड़ते हैं, पड़ोसी झगड़ते हैं, ऑफिस में कहा-सुनी हो जाती है। इसलिये इस तरह का संकल्प बनाओ और अभ्यास करो–

1. मैं किसी से लड़ाई नहीं करूँगा।
2. लड़ना भी दुर्व्यसन और अशोभन कर्म है।
3. मैं सहयोग से काम करना सीखूँगा।

विद्यार्थियों को ब्रह्मचर्य पालन के लिये कुछ संकल्प बनाकर प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिये। उनकी सब समस्याएँ इस प्रकार आसानी से सुलझाई जा सकती हैं।

1. मैं विद्यार्थी जीवन तक ब्रह्मचर्य से रहूँगा।
2. अध्ययन और चरित्र-विकास – मेरे केवल यही दो काम हैं।
3. विद्याध्ययन समाप्त करने के बाद ही मैं अन्य विचार मन में लाऊँगा।

अपनी आध्यात्मिक उन्नति और आनन्दवर्धन के लिए निम्न संकल्प कर सकते हैं।

1. मैं आत्मा हूँ, मन और शरीर नहीं।
2. सुख-दु:ख, हानि-लाभ मुझे छू नहीं सकते।
3. मैं ईश्वरीय शक्ति का अंश हूँ।

अथवा

1. मैं सत्, चित् और आनन्द हूँ।
2. मेरा चित्त ही आनन्द का धाम है।
3. आनन्द बाहर नहीं, मेरे अन्दर में है। मैं उस अव्यय आनन्द को अवश्य प्राप्त करूँगा।

इस प्रकार सिगरेट, बीड़ी, सिनेमा, पान, घूमना, चाट खाना इत्यादि छोटी-बड़ी सभी बुरी आदतों को तुम स्वयमेव दूर कर सकते हो। पान की आदत इस प्रकार छोड़ो–

1. मैं पान की आदत छोड़ दूँगा।
2. पान खाना सुन्दर बात नहीं है।
3. पान की आदत खर्चीली, गन्दी और विल-पॉवर को कमजोर करनेवाली है। मैं इसे छोड़ूँगा।

सिगरेट की आदत ऐसे छोड़ो–

1. मैं सिगरेट पीना छोड़ दूँगा।
2. सिगरेट का धुआँ (निकोटिन) दिनों-दिन मेरे गले और फेफड़े में नुकसान पहुँचायेगा। मैं पहले ही सचेत होकर यह आदत छोड़ दूँगा।

इस प्रकार से तुम अपने अन्दर की किसी भी बुरी आदत को दूर कर सकोगे। अपने अन्दर के भय, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लोभ इत्यादि को भी दूर कर सकते हो।

एक ही चेतावनी इसमें मुझे देनी है कि सृष्टि के नियम के प्रतिकूल और किसी का जान-बूझ कर अनिष्ट करने का संकल्प नहीं करना चाहिये। किसी के प्रति यदि घृणा का भाव रखोगे तो वह लौटकर तुम्हारा ही अनिष्ट करेगा। विचार और संकल्प कैरम के स्ट्राइकर की तरह rebound भी होते हैं। दूसरे के लिए अनिष्ट का विचार यदि तुमने पैदा किया तो मान लो यदि किसी कारण से वह विचार तुम्हारे लक्ष्य पर नहीं लगा तो वह अपनी शक्ति व्यर्थ नहीं जाने देगा। वह तुम पर ही आक्रमण करेगा। यदि लक्ष्य पर लगा भी तो तुम्हें अपने बुरे कर्म का फल भोगना पड़ेगा। तुम्हारे विचार तुम्हीं से पैदा हुए पर वे तुम्हारा ही अनिष्ट करेंगे, जैसे मधु-कैटभ विष्णु से ही पैदा हुए और विष्णु पर ही उन्होंने आक्रमण कर दिया।



प्रयोक्ता की साधना

हिप्नौटिज्म अथवा योगनिद्रा सीखने के लिये सर्वप्रथम तुम्हें याने प्रयोक्ता को अपने व्यक्तित्व पर ध्यान देना होगा। हर स्त्री और पुरुष में शक्ति तो पूर्व से ही है। इस शक्ति का विकास और प्रकटीकरण मनुष्य के हर कर्म, स्वभाव और आचरण के द्वारा होता है। तुम्हारे अन्दर जो क्रोध या शान्ति की शक्ति है, उन दोनों का तत्त्व एक है पर जिस रूप में तुम उसका प्रयोग करते हो, वह रूप ही उसे बुरी शक्ति बना देता है। इसलिये शक्तिस्वरूपा माँ दुर्गा कहती हैं – 'मैं ही ब्रह्म हूँ और मैं ही अब्रह्म हूँ। मैं ही विज्ञान हूँ और मैं ही अविज्ञान हूँ।' क्षुधा, तृष्णा, क्षान्ति, कान्ति, तुष्टि, स्मृति सब माँ दुर्गा याने शक्तिरूपिणी परमेश्वरी के ही रूप हैं जो सबके अन्दर स्थित हैं। किन्तु हर एक मनुष्य के अन्दर की योगशक्ति अज्ञान के कारण हमेशा गलत रूप और गलत मार्ग से प्रवाहित होती रहती है। इसीलिए दुनिया में सभी राम, कृष्ण, बुद्ध, नेपोलियन या लिंकन नहीं बन पाते।

उदाहरण लीजिये। किसी आदमी का यदि हरदम चिन्ता करते रहने का स्वभाव है तो उसकी शक्ति का अधिकांश हिस्सा उसी चिन्ता कर्म में खर्च हो जाता है। किसी का यदि हरदम चंचल रहने और अशान्त रहने का स्वभाव है तो उसकी योगशक्ति अशान्ति और चंचलता में ही यदि समाप्त नहीं तो खर्च तो हो ही जाती है। किसी-किसी में मूढ़ावस्था होती है, जिसमें योगशक्ति के विकसित और प्रकट होने का अवसर और द्वार ही बन्द रहता है। कुछ लोग हमेशा दु:खी और निराश रहते हैं। उनकी शक्ति उसी में व्यय हो जाती है। इसलिये इस शक्ति को अपव्यय से बचाकर रचनात्मक सत्य की प्राप्ति के लिये उपयोग करना चाहिए।

योगशक्ति का यदि आप विकास चाहते हैं तो जीवन में कुछ नियम बनाओ। कुछ सिद्धान्त बनाकर उनका पालन और अभ्यास बराबर करो। कुछ लोगों की स्वभावत: या अनजाने में कुछ ऐसी आदतें बन जाती हैं जो उनके व्यक्तित्व को गिराती या आकर्षक बना देती हैं। परन्तु अभ्यास के द्वारा अपने व्यक्तित्व

का विकास किया जाना भी सम्भव है। इसलिये योगनिद्रा विज्ञान के विद्यार्थी पहले यम-नियम के इन सिद्धान्तों को जीवन में अपनाएँ और फिर आगे बढ़ें।

अखण्ड शान्ति—सबसे पहले मनुष्य को अशान्त रहना एकदम छोड़ देना चाहिये। अशान्ति का प्रभाव मनुष्य के बाहरी व्यक्तित्व पर तुरन्त परिलक्षित होता है। जो स्वयं अशान्त रहते हैं वे दूसरों को कभी भी प्रभावित नहीं कर सकेंगे। जिनका अपने व्यक्तित्व पर पूर्ण नियन्त्रण रहता है वही दूसरों के विश्वास को जीत सकते हैं। अशान्त होने का मतलब है आत्मनियंत्रण का अभाव। जिनमें आत्मनियंत्रण नहीं, वे दूसरों पर नियंत्रण कैसे प्राप्त कर सकेंगे? अशान्ति असफलता का पहला कारण है। प्रयोक्ता को इससे दूर रहना पड़ेगा। इसलिये आत्मनियंत्रण (self-possession) के द्वारा अपने में पूरी शान्ति ले आओ, यह है पहला नियम।

साहस और अदम्य विश्वास—यह दूसरी चीज है जिसका प्रयोक्ता के अन्दर सतत् रहना जरूरी है। किसी क्षण, किसी परिस्थिति, किसी घटना से यह भाव तनिक भी कुण्ठित नहीं होवे। चाहे ठीक हो या गलत, प्रयोक्ता को अपने में अविश्वास कभी नहीं होना चाहिये। यह विश्वास प्रयोक्ता के व्यवहार, मुख के भाव और चलने के ढंग के द्वारा प्रकट होना चाहिये। जिनमें साहस और विश्वास का स्वभावत: अभाव रहता है, उनका तौर-तरीका और ढंग ऐसा होता है जो उनके आचरण से ही परिलक्षित हो जाता है।

शारीरिक स्वास्थ्य—यह भी योगशक्ति के विकास और प्रसार में बहुत बड़ा भाग रखता है। अच्छा स्वास्थ्य, सीधा तना हुआ शरीर, मानसिक और शारीरिक सन्तुलन और पूर्ण शान्ति एवं कान्तिपूर्ण चेहरा जिनका है, वे ही कुशल प्रयोक्ता बन सकते हैं, क्योंकि योगशक्ति के प्रसार में अस्वास्थ्य, स्नायविक दुर्बलता, झुका हुआ शरीर, सिकुड़ा हुआ मत्था, निस्तेज आँखें, खाँसने की आदत या अन्य किसी प्रकार की आदतें, जैसे पैर हिलाना, उँगलियाँ तोड़ना, नाक छूना, मुँह खोलकर जंभाई लेना इत्यादि बाधक हैं। प्रयोक्ता के शरीर और व्यवहार, दोनों का ही स्वस्थ और सभ्य समाज के अनुकूल होना आवश्यक है। सभ्य व्यवहार का मतलब कृत्रिम व्यवहार नहीं होता, बल्कि इसका तात्पर्य स्वाभाविक और सुरुचिपूर्ण व्यवहार से है।

भावशुद्धि—योगनिद्रा का प्रयोग करने के लिये भावशुद्धि होनी आवश्यक है। सदाचार से रहने व नैतिक और धार्मिक नियमों के पालन से आचरण तो पवित्र होता ही है, उससे अधिक भावशुद्धि होती है। विचार और

भाव शुद्ध हो जाते हैं। बाहर के आचार-विचार का प्रभाव हृदय के भाव पर पड़ता है। नैतिक नियम और षट्-सम्पत्ति का पालन इसीलिये किया जाता है। अतएव प्रयोक्ता की भावशुद्धि अवश्य होनी चाहिये। और भावशुद्धि के लिए उसे सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह इत्यादि नियमों का अपने व्यक्तिगत जीवन में पालन करना चाहिये।

चित्त की एकाग्रता–प्रयोक्ता के लिए चित्त एकाग्र करना बहुत जरूरी है। इसी अभ्यास में पक्का होने पर वह अपनी संकल्प शक्ति गुरु से सीख कर दूसरों में ट्रान्समिट करना जानेगा। इसके लिए जप, ध्यान, प्राण-साधना और त्राटक साधना जरूरी है।

हीलिंग करेन्ट–प्रयोक्ता के हाथ में साधना व अभ्यास से हीलिंग करेन्ट प्रवाहित रहना चाहिये। गुरूपदिष्ट तरीके से ध्यान करने पर साधक व शिष्य के शरीर में यह शक्ति या करेन्ट पूरे शरीर तथा हाथ की उँगलियों के पोरों में प्रवाहित होती है।

वाणी शुद्धि–प्रयोक्ता की वाणी भी उसकी संकल्प शक्ति का परफैक्ट मीडियम होना चाहिए। स्पष्ट, मधुर और निर्भीक वाणी ही प्रयोक्ता के संकल्प को एक से दूसरे तक पहुँचा सकती है। इसलिये लिपटी हुई, लड़खड़ाती या अस्पष्ट वाणी वाला व्यक्ति एक अच्छा आपरेटर नहीं बन सकता। अभ्यास के द्वारा वाणी की शुद्धि की जा सकती है। कुछ ऐसे मंत्र भी हैं जिनके जप से वाणी में मधुरता और आकर्षण शक्ति आती है। मौन व वाणी संयम से भी वाक्शक्ति सिद्धि प्राप्त होती है।

आत्मसंयम–अन्त में प्रयोक्ता में self-control याने स्वसंयम का अभ्यास प्रगाढ़ होना चाहिये। आत्मसंयम का अर्थ बड़ा व्यापक है। इसका अर्थ ब्रह्मचर्य पालन नहीं बल्कि राजयोगी बनना है। मन के ऊपर वैसा ही वश होना चाहिये जैसे कोचवान का घोड़े पर होता है।

अस्तु, अखण्ड शान्ति, साहस और विश्वास, स्वस्थ शरीर, भावशुद्धि, चित्त की एकाग्रता, वाणी की शुद्धि व आत्मसंयम–ये गुण या प्री-रिक्वीजिट क्वालिफिकेशन्स होने जरूरी हैं।



नोट

नोट



SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर बिहार योग परम्परा के मौलिक प्रकाशनों को 'स्वर्णिम संग्रह शृंखला' के नाम से पुनर्प्रकाशित किया गया है।

इस शृंखला के अंतर्गत यह चौथी पुस्तक, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती और उनके शिष्यों की प्रत्याहार, योगनिद्रा, जप योग, स्वर योग, धारणा और ध्यान जैसे योग के अंतरंग आयामों से सम्बन्धित रचनाओं का स्वर्णिम संकलन है।



[bar code here]

ISBN : 978-93-81620-88-5